मध्यप्रदेश शासन

विक्रम पंचांग

विक्रम सम्वत् 2083

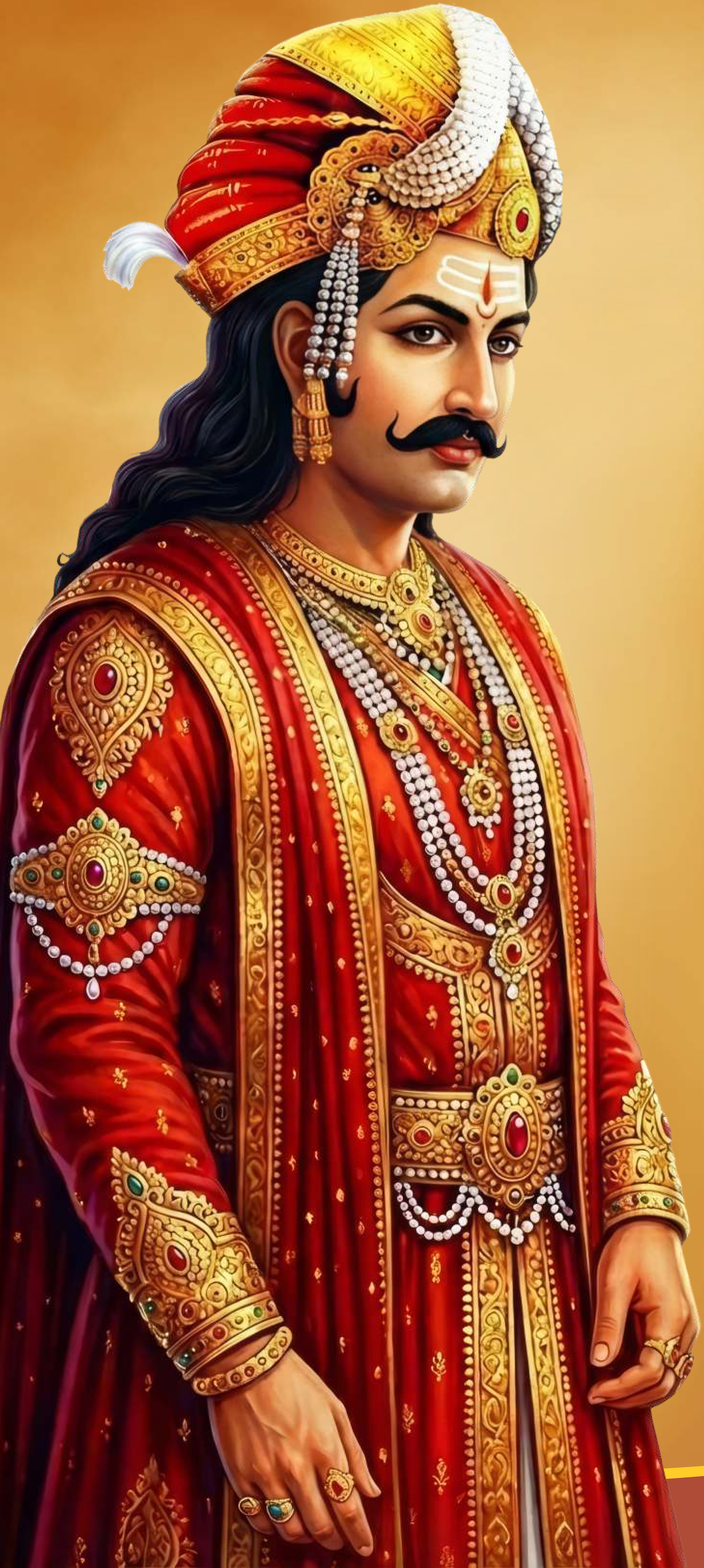

सम्राट विक्रमादित्य

उज्जयिनी के सार्वभौम सम्राट विक्रमादित्य अपने आकर्षक एवं प्रभावशाली व्यक्तित्व तथा उल्लेखनीय कृतित्व के कारण सदैव लोकप्रिय रहे और भारतीय अस्मिता के दीप्तिमान प्रतीक माने जाते हैं। वे ‘शकारि’ तथा ‘साहसांक’ की उपाधियों से अलंकृत थे। शक-विजेता, सम्वत्-प्रवर्तक, वीर, दानी, न्यायप्रिय, प्रजावत्सल और सत्व-संपन्न शासक के रूप में उनकी ख्याति दूर-दूर तक फैली थी। सम्राट विक्रमादित्य साहित्य, संस्कृति और विज्ञान के महान संरक्षक एवं प्रेरक थे। उनकी राजसभा कालिदास, वराहमिहिर, वेतालभट्ट, अमरसिंह, घटखर्पर, धन्वन्तरि, वररुचि, शंकु और क्षपणक जैसे नवरत्नों से सुशोभित थी।अपने गुणगौरव के कारण उनका नाम परवर्ती अनेक राजाओं की उपाधि के रूप में भी प्रचलित हुआ। भारतीय इतिहास में रामराज्य के पश्चात् विक्रमादित्य के सुशासन का ही विशेष स्मरण किया जाता है। वे भारतीय सांस्कृतिक प्रभामंडल के आदर्श प्रतीक एवं लोकमान्य सम्राट के रूप में प्रतिष्ठित हैं।

डॉ. मोहन यादव
मुख्यमंत्री, मध्यप्रदेश

संदेश

अनादि काल की निस्तब्धता में जब सृष्टि का प्रथम स्पंदन प्रकट हुआ, तब उसी दिव्य चेतना ने समय को दिशा दी वह चेतना महाकाल हैं। वे केवल काल के साक्षी नहीं, अपितु उसके स्वामी और नियंता हैं; जीवन, मृत्यु और प्रारब्ध जिनसे उद्भूत होते हैं। सम्वत्सर उसी कालचक्र का प्रतीक है, जिसका प्रवर्तन शिव की संकल्प-शक्ति से होता है। पुराणों में उल्लेख है कि ब्रह्मा ने सृष्टि की रचना महादेव की प्रेरणा से चैत्र शुक्ल प्रतिपदा के पुण्य दिवस पर प्रारंभ की; अतः यही तिथि आदिदिवस मानी गई। भारतीय कालगणना में सूर्य और चंद्र की गतियाँ समय के मापक हैं जहाँ खगोल विज्ञान और आध्यात्मिक दर्शन अद्वितीय समन्वय में दिखाई देते हैं। काल के अविराम प्रवाह में अवंतिका-उज्जयिनी ने भारत की सांस्कृतिक धारा को अमरत्व प्रदान किया। यहीं के सार्वभौम सम्राट विक्रमादित्य ने दुर्जेय शकों पर विजय प्राप्त कर राष्ट्र को आत्मविश्वास और स्वाभिमान से आलोकित किया। उनकी इस ऐतिहासिक विजय की स्मृति में विक्रम सम्वत् का प्रवर्तन हुआ, जो सहस्राब्दियों से भारतीय कालगणना का गौरवशाली आधार है। वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त और भास्कराचार्य जैसे महान आचार्यों ने इसे खगोलीय गणना और गणितीय सिद्धांतों से सुदृढ़ कर वैज्ञानिक विश्वसनीयता प्रदान की। सूर्य सिद्धांत पर आधारित यह परंपरा केवल तिथियों का लेखा-जोखा नहीं, बल्कि भारतीय ज्ञान-विज्ञान की प्राचीनता और प्रामाणिकता का साक्ष्य है।

सम्राट विक्रमादित्य शौर्य, न्याय, विद्वत्ता और उदारता के अद्वितीय प्रतीक हैं। उनकी विरासत में विकसित विक्रम पंचांग सनातन संस्कृति की जीवनदृष्टि को अभिव्यक्त करता है। विक्रम सम्वत् केवल कालगणना नहीं, बल्कि भारतीय आत्मा का कालबद्ध स्वरूप है जहाँ इतिहास, विज्ञान और आध्यात्म एकसूत्र में गुँथे हैं। उज्जयिनी जहाँ महाकालेश्वर की अनन्य नगरी है, वहीं यह भगवान श्रीकृष्ण की विद्या-दीक्षा और साधना की साक्षी भी रही है। चौंसठ कलाओं और चौदह विद्याओं में पारंगत होकर श्रीकृष्ण ने आगे चलकर कुरुक्षेत्र में अर्जुन को श्रीमद्भगवद् गीता का अमर उपदेश दिया। गीता वेदों का सार है- कर्म की निष्काम साधना, भक्ति की अनन्यता और ज्ञान की आत्मदीप्ति का समन्वित संदेश। मेरा अटल विश्वास है कि महाकाल और श्रीकृष्ण की कृपा से विक्रम पंचांग हमारी प्राच्य विद्याओं, सनातन मूल्यों और विश्वकल्याण की भावना को अधिक व्यापक, प्रामाणिक और प्रभावी रूप में विश्वपटल पर प्रतिष्ठित करेगा।

यह पंचांग केवल तिथियों का संकलन नहीं, बल्कि ऋतु, पर्व, व्रत और संस्कारों की जीवंत परंपरा का दर्पण है। यह हमें स्मरण कराता है कि समय का प्रत्येक क्षण साधना और सृजन का अवसर है। भारतीय जीवन-पद्धति में काल को देवत्व प्रदान किया गया है, इसलिए उसका प्रत्येक चक्र मंगलमय माना गया है। विक्रम सम्वत् हमें अपने अतीत से जोड़ते हुए वर्तमान को दिशा और भविष्य को विश्वास देता है। यह राष्ट्र की सांस्कृतिक एकात्मता और आध्यात्मिक निरंतरता का सेतु है। इसके माध्यम से वैदिक गणना और आधुनिक बोध का सुंदर समन्वय संभव होता है। यह भारतीय चिंतन की वैज्ञानिकता और दार्शनिक गहराई का प्रमाण है। महाकाल की कृपा और श्रीकृष्ण की प्रेरणा से यह कालचक्र सदैव कल्याणकारी बना रहे यही मंगलकामना है। इसी विश्वास के साथ विक्रम पंचांग भारतीय संस्कृति के प्रकाश को युगों-युगों तक आलोकित करता रहे।

डॉ. मोहन यादव
मुख्यमंत्री, मध्यप्रदेश शासन

विक्रम
पंचांग
विक्रम सम्वत् 2083

नियामक	**डॉ. मोहन यादव,** मुख्यमंत्री, मध्यप्रदेश **धर्मेन्द्र सिंह लोधी,** राज्यमंत्री (स्वतंत्र प्रभार), संस्कृति, पर्यटन एवं धार्मिक न्यास एवं धर्मस्व, मध्यप्रदेश **शिव शेखर शुक्ला,** अपर मुख्य सचिव, संस्कृति, म.प्र. शासन
सम्पादक	**श्रीराम तिवारी**
सह सम्पादक	**राजेश्वर त्रिवेदी**
सहयोग	**पं. चंदन श्यामनारायण व्यास, डॉ. सर्वेश्वर शर्मा, खुमेन्द्र कावड़े, रितेश वर्मा**
डिजाईनर	**सतीश सुजाने**
मुद्रण	**तनिष्क प्रिंटर्स, भोपाल**

स्वत्वाधिकार प्रकाशकाधीन

विक्रम सम्वत् 2083
ईस्वी 2026-27

महाराजा विक्रमादित्य शोधपीठ
स्वराज संस्थान संचालनालय, संस्कृति विभाग
मध्यप्रदेश शासन का प्रकाशन
बिड़ला भवन, देवास रोड, उज्जैन-456010
दूरभाषः 0734-2521499

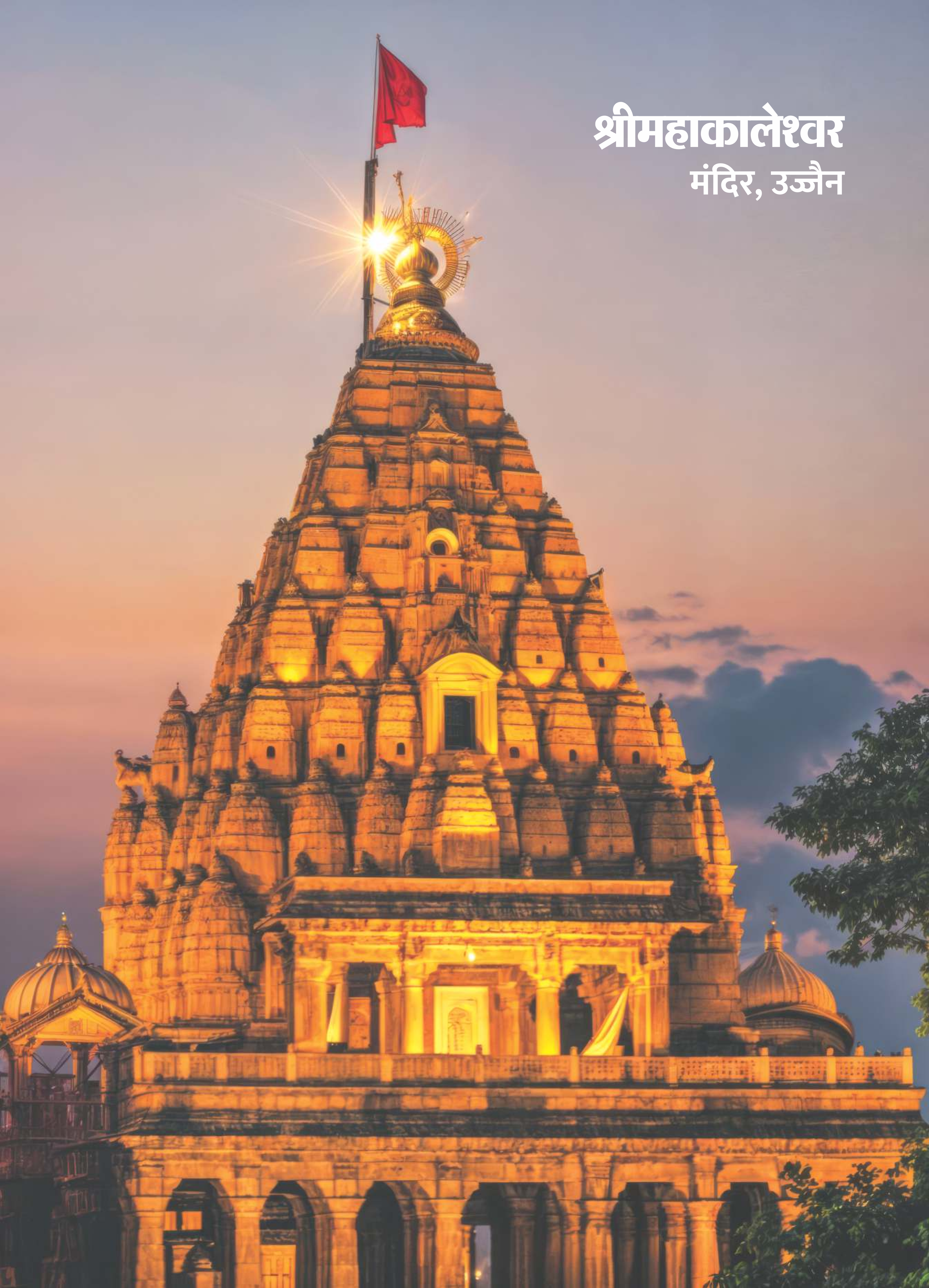

श्रीमहाकालेश्वर
मंदिर, उज्जैन

सृष्टिकर्ता महाकाल

भारतीय सनातन परंपरा में शिव का विशेष महत्व रहा है। जिस प्रकार इस ब्रह्माण्ड का ना कोई आरंभ है, और न ही कोई अंत उसी प्रकार महादेव शिव भी अनादि है। सम्पूर्ण ब्रह्मांड शिव के अंदर समाया हुआ है जब कुछ नहीं था तब भी शिव धे,जब कुछ न होगा तब भी शिव ही होंगे। शिव को महाकाल कहा जाता है, अर्थात कालों का काल। शिव अपने इस स्वरूप द्वारा पूर्ण सृष्टि का भरण-पोषण करते हैं। इसी स्वरूप द्वारा परमात्मा ने अपने ओज व उष्णता की शक्ति से सभी ग्रहों को एकत्र करा है। परमात्मा का यह स्वरूप अत्यंत ही कल्याणकारी माना जाता है क्योंकि पूर्ण सृष्टि का आधार इसी स्वरूप पर टिका हुआ है। महादेव अर्थात् महाकाल को एक बार इस दुनिया को बचाने के लिए विष का पान करना पड़ा था और उस महाविनाशक विष को अपने कंठ में धारण करना पड़ा था। इसी कारण से उन्हें नीलकंठ के नाम से भी जाना जाता है। शिव में परस्पर विरोधी भावों का सामंजस्य देखने को मिलता है। शिव के मस्तक पर एक ओर चंद्र है, तो दूसरी ओर महाविषधर सर्प भी उनके गले का हार है। वे अर्धनारीश्वर होते हुए भी कामजित हैं। गृहस्थ होते हुए भी इमशानवासी, वीतरागी हैं। सौम्य , आशुतोष होते हुए भी भयंकर रुद्र हैं शिव परिवार भी इससे अठूता नहीं हैं। उनके परिवार में भूत-प्रेत, नंदी, सिंह, सर्प, मयूर व मूषक सभी का समभाव देखने को मिलता है। वे स्वयं द्वंद्वों से रहित सह-अस्तित्व के महान् विचार का परिचायक हैं।

महाकाल को काल का नियंत्रक कहा जाता है। वैसे भी जीवन में काल अर्थात् समय की महत्ता निर्विवादित है। संसार में सभी कुछ समय के आधीन है। जो व्यक्ति समय का सदुपयोग करते हुए उसके अनुसार चलता है, वही प्रगति करता है और जो समय को सम्मान नहीं देता, वह जीवन में पिछड़ जाता है। पौराणिक ग्रंथों में अवंतिका (उज्जैन) को काल के देवता भगवान श्रीमहाकालेश्वर की नगरी के रूप में गौरव प्राप्त है। द्वादश ज्योतिर्लिंगों में गिने जाने वाले भगवान श्रीमहाकालेश्वर को शास्त्रों में मृत्युलोक (भूलोक) का अधिपति कहा गया है। शिव की जटाएँ सूर्य केशी कही जाती हैं। शिव मस्तक पर चन्द्रमा अमृतमय सोमात्मक मन है। मन की ज्योतिष्मती समाधि ही अमृत की प्राप्ति है। इन्द्रियों के नवद्वारों की विषयवृत्तियों को जीत लेना ही विषपान है। मृत्यु पर विजय प्राप्त करना ही विजय है। शिव के मस्तक पर चन्द्रमा और कण्ठ में विष चन्द्रमा मनसो जात मन चैतन्य या अमृत का प्रतीक है और कण्ठ-पंचमभूतों का प्रतीक है। मन और कठ-प्राण इन दोनों के बीच में हैं। जब वह मन के साथ जुड़ता है तो अमृतात्मा बन जाता है और जब पंचभूत के साथ मिलता है तो मृत्यु का अनुगामी बन जाता है। शिव का नटराज स्वरूप सृष्टि की स्थिति और संहार का प्रतीक है। सत्य-असत्य दोनों शिव के स्वरूप एक साथ विचमान हैं। शिव का नन्दी आनन्द का प्रतीक है। वेदों में सूर्य को वृष कहा गया है। शिव त्र्यम्बक हैं-जिनकी तीन माताएँ हैं। सूर्य, चन्द्र और अग्नि-ये तीन नेत्र हैं। पृथ्वी, अन्तरिक्ष और चौ-मन, प्राण और वाक, यही तो तीन माताएँ हैं। द्यावापृथ्वी रूप विश्व है, इसमें द्युलोक पिता और पृथ्वी माता है। इसे ही रोदसी ब्रह्माण्ड कहते हैं। यह बाहर भी है और प्रत्येक प्राण केन्द्र में भी है। यही रुद्र की सृष्टि है। शिव, सनातन हिंदू परम्परा के, आध्यात्मिक तथा यौगिक प्रतीक चिन्हों में परमचैतन्य के सम्भवत: सर्वोच्च प्रतीक हैं।

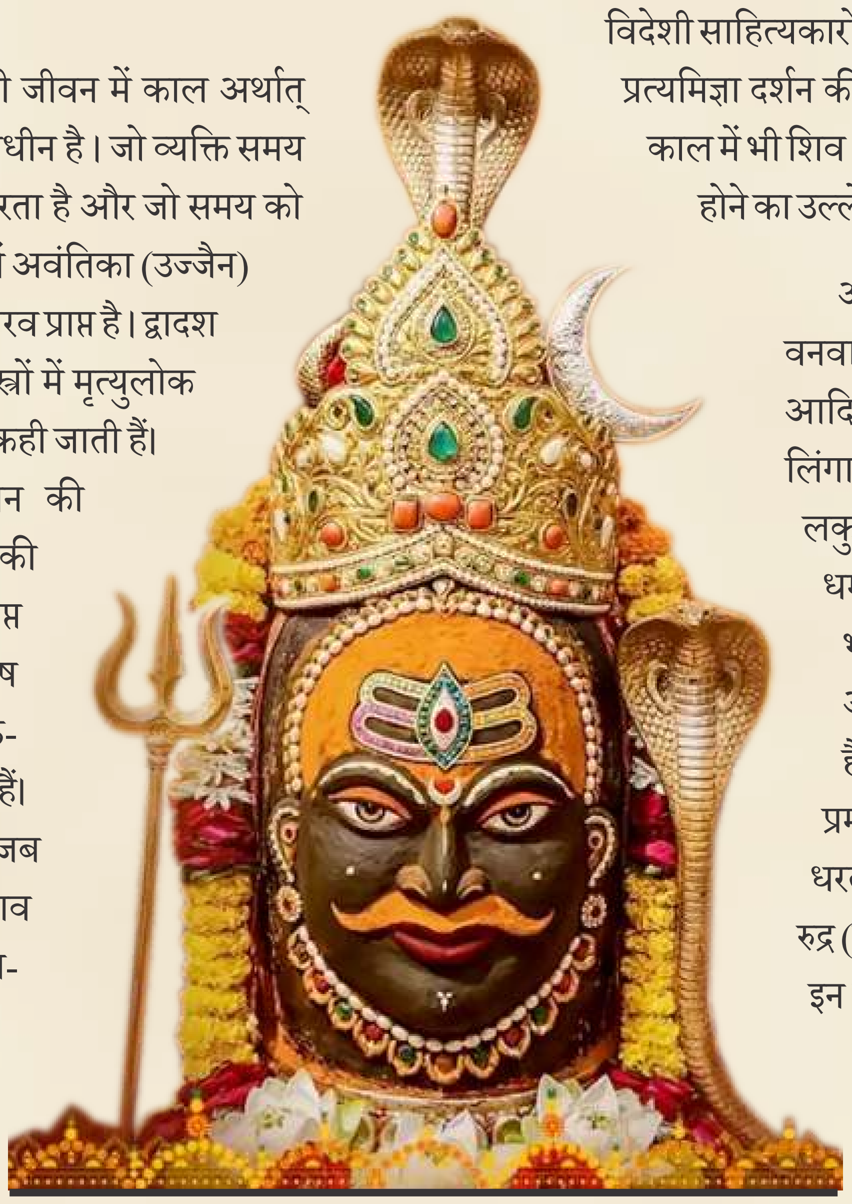

वास्तव में शिव स्वयं परम चैतन्य हैं, वह नित्य अस्तित्व हैं, शिव ही सत्य हैं। शिव अनंत चैतन्य हैं। शिव वह परम शून्य हैं जिससे समस्त सृष्टि जन्म लेती है। शून्यस्वरूपी शिव वह अतिब्रह्माण्डीय गर्भाशय हैं जिसमें से सभी प्राणियों की उत्पत्ति हुई है। समस्त ब्रह्माण्डों के आदि बीज भी शिव हैं। शिव के अंतर में ही शक्ति, प्रकृति की अनंत संभावनाओं के रूप में, विश्रामरत हैं। शिव तब तक अव्यक्त हैं, जब तक शक्ति; प्रकृति को अभिव्यक्त करते हुए, जागृत और गतिशील नहीं होती। प्रकृति में वह सब अंतरभूत है जो भी ब्रह्माण्ड स्वरूप में प्रकट होता है, जगत और जीव, जिसको हम व्यावहारिक भाषा में सृष्टि की संज्ञा देते हैं। यद्यपि शिव समस्त सृष्टि में व्याप्त हैं, फिर भी कोई भी शिव का पूर्ण ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता, क्योंकि शिव स्वयं ही सकल सृष्टि के ज्ञाता हैं, सर्व अस्तित्व के महासाक्षी वह स्वयं हैं। भगवान शिव ने हर काल में लोगों को दर्शन दिए हैं। वे सतयुग में समुद्र मंधन के समय भी थे और त्रेता में राम के समय भी। वेद उपदेश देते हैं कि जो सृष्टि का मूल कारण अगिन है वही रुद्र या शिव है। अग्निवैरुद्र: की घोषणा ब्राह्मण ग्रंथों में वर्णित है। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में रुद्राणां शकराश्चास्मि और श्रीमद्भागवत में रुद्राणां नील लोहितरू कहा है। मन्यु, मनु, महिनस, महान्, शिव ऋतध्वज, उग्ररेता, भव, काल, वामदेव और धृतव्रत ये एकादश रुद्र रूप है। शिव के साथ ही हृदय, इन्द्रिय, प्राण आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र और तप में शिव के ग्यारह स्थान है। धी वृत्ति, उशना, उमा, नियुति, सर्पि, इला, अम्बिका, इरावती, सुधा और दीक्षा ये क्रमशः शिव की पत्नियाँ हैं। इसी प्रकार प्रेत, पिशाच, भैरव, विनायक, यातुधान, डाकिनी, शाकिनी, कूष्माण्ड, बेताल, योगिनी आदि शिव के गण व उनकी रचनाएँ है।

भारतवर्ष में ऐसा कोई ग्राम नहीं, जहाँ शिव का मंदिर न हो | पंचवक्त एकवक्त आदि श्री विग्रह प्राचीन काल से प्रचलित है। अनादि ऋषि परम्परा में प्रतिष्ठित शिव लिंगोपासना श्रुति-स्मृति आगम-निगम पुराणों में अर्चित हैं। लिंगपूजा शक्ति और शक्तिमान का प्रतीक है। भारतीय संस्कृति में प्रतिमा काल्पनिक नहीं हुआ करती। ऋणात्मक इलेक्ट्रान या धनात्मक प्रोटोन दोनों की शक्ति का क्या रूप होता है? शिवशक्ति इसी का प्रतीक है। अत लिंगविग्रह शिव का शक्ति समन्वित प्रतीक है। यह विग्रह साधक को उस परमपुरुष में एकाग्र कर देता है, ऊर्जावान बना देता है। इस प्रकार शिव की बड़ी महिमा है। सम्पूर्ण विद्याओं कलाओं के भगवान शंकर आचार्य है। व्याकरण तो महेश्वर सूत्रों से ही निकला। उनका डमरू नादकाल का प्रतीक है। ताण्डव और लास्य नृत्यों के तो मूल श्रोत हैं। आयुर्वेद, धनुर्वेद समस्त ज्ञान-विज्ञान शिव के द्वारा ही सृजित है। शैव दर्शन भारतीय संस्कृति एवं साहित्य की प्राण ऊर्जा है। कश्मीर के शैव दर्शन ने विदेशी साहित्यकारों को आकृष्ट किया। कालिदास के सम्पूर्ण साहित्य में शैवदर्शन, प्रत्यमिज्ञा दर्शन की अप्रतिम उद्धावना देवी जा सकती है द्वापर युग के महाभारत काल में भी शिव थे और कलिकाल में विक्रमादित्य के काल में भी शिव के दर्शन होने का उल्लेख मिलता है।

असुर, दानव, राक्षस, गंधर्व, यक्ष, आदिवासी और सभी वनवासियों के आराध्य देव शिव ही हैं। शैव धर्म भारत के आदिवासियों का धर्म है। सभी दसनामी, शाक्त, सिद्ध, दिगंबर, नाथ, लिंगायत, तमिल शैव, कालमुख शैव, कश्मीरी शैव, वीरशैव, नाग, लकुलीश, पाशुपत, कापालिक, कालदमन और महेश्वर सभी शैव धर्म से जुड़े हुए हैं। चंद्रवंशी, सूर्यवंशी, अग्निवंशी और नागवंशी भी शिव की ही परंपरा से माने जाते हैं। भारत ही नहीं विश्व के अन्य अनेक देशों में भी प्राचीनकाल से शिव की पूजा होती रही है। इसके अनेक प्रमाण समय-समय पर प्राप्त हुए हैं। ऐतिहासिक प्रमाणों के अनुसार विक्रम सम्वत् के कुछ सहस्राब्दी पूर्व संपूर्ण धरती पर उल्कापात का अधिक प्रकोप हुआ। आदिमानव को यह रुद्र (शिव) का आविर्भाव दिखा। जहाँ- जहाँ ये पिंड गिरे , वहाँ-वहाँ इन पवित्र पिंडों की सुरक्षा के लिए मंदिर बना दिए गए। इस तरह धरती पर हजारों शिव मंदिरों का निर्माण हो गया। उनमें से प्रमुख थे 08 ज्योतिर्लिंग। शिवपुराण के अनुसार उस समय आकाश से ज्योति पिंड पृथ्वी पर गिरे और उनसे थोड़ी देर के लिए प्रकाश फैल गया। इस तरह के अनेक उल्का पिंड आकाश से धरती पर गिरे थे। पुरातात्विक निष्कर्षों के अनुसार प्राचीन शहर मेसोपोटेमिया और बेबीलोन में भी शिवलिंग की पूजा किए जाने के सबूत मिले हैं। इसके अलावा मोहन-जोदड़ो और हड़प्पा की विकसित संस्कृति में भी शिवलिंग की पूजा किए जाने के पुरातात्विक अवशेष मिले हैं। सभ्यता के आरंभ में लोगों का जीवन पशुओं और प्रकृति पर निर्भर था इसलिए वह पशुओं के संरक्षक देवता के रूप में पशुपति की पूजा करते थे। सैंधव सभ्यता से प्राप्त एक सील पर तीन मुँह वाले एक पुरुष को दिखाया गया है जिसके आस-पास कई पशु हैं। इसे भगवान शिव का पशुपति रूप माना जाता है। सुमेरिया, बेबीलोनिया, ईरान, मिस्र, असीरिया, ग्रीस (यूनान) रोम की सभ्यताएँ विद्यमान थीं। इन सभी से पूर्व महाभारत का युद्ध लड़ा गया था। उस काल में भारत में एक पूर्ण विकसित सभ्यता थी।

आयरलैंड के एक पहाड़ पर एक रहस्यमय पाषाण रखा हुआ है, जो शिवलिंग की तरह ही है। इसे भाग्यशाली पाषाण कहा जाता है। फ्रांसीसी भिक्षुओं द्वारा लिखित एक प्राचीन दस्तावेज के अनुसार इसको अलौकिक लोगों द्वारा स्थापित किया गया था। दक्षिण अफ्रीका की सुद्वारा नामक एक गुफा में पुरातत्वविदों को महादेव की छह हजार वर्ष पुरानी शिवलिंग की मूर्ति मिली जिसे कठोर ग्रेनाइट पत्थर से बनाया गया है। इस शिवलिंग को खोजने वाले पुरातत्ववेत्ता हैरान हैं कि यह शिवलिंग यहाँ अभी तक सुरक्षित कैसे रहा ? हर काल में शिव पूजा के शिव दर्शन दर्शन के प्रमाण मिलते रहे हैं (उनके जीवन की कथाएँ दुनिया के अनेक धर्मों और उनके ग्रंथों में अलग-अलग रूपों में विद्यमान है। आदि देव महादेव सनातन सृष्टि के प्रतीक है।

विविध सम्वत्सर

देश में चर्चित, प्रचलित और अब विस्मृत हो चले विविध सम्वत्सर विक्रम सम्वत् की शुरुआत लगभग ईसा पूर्व 57 वर्ष पहले चैत्र शुक्ल प्रतिपदा तिथि से की गयी थी। ईस्वी सन् और विक्रम सम्वत् में 57 वर्षों का अंतर है। इस हिसाब से ईस्वी सन् 2026 में विक्रम सम्वत् 2083 चल रहा है। वैसे भारत में 36 तरह के प्राचीन कैलेंडर वर्ष की चर्चा की जाती रही है। हालाँकि, इनमें से अधिकांश अब प्रचलन से बाहर हैं। दुनियाभर में कई देशों के जो अपने कैलेंडर हैं उनमें नये वर्ष की शुरुआत जनवरी से अप्रैल के मध्य होती है। हमारे यहाँ फिलहाल विक्रम सम्वत्, ईस्वी सन्, हिजरी सन् आदि प्रचलित हैं। विक्रम सम्वत् अत्यंत प्राचीन सम्वत् है। भारत के सांस्कृतिक इतिहास की दृष्टि से सर्वाधिक लोकप्रिय लोकमान्य राष्ट्रीय सम्वत् विक्रम सम्वत् ही है।

1 **सप्तर्षि सम्वत्**

सात तारों की गति के साथ इसका सम्बन्ध माना जाता है।

2 **कृष्ण सम्वत्** (3179 वि.पू, 3236 ई.पू.)

3 **कलियुग सम्वत्** (3045 वि.पू, 3102 ई.पू.)

इसका प्रयोग धार्मिक तिथियों के लिए इस्तेमाल वर्षों पूर्व किया गया था।

4 **युधिष्ठिर सम्वत्** (2391 वि.पू, 2448 ई.पू.)

5 **बुद्ध निर्वाण सम्वत्** (430 वि.पू, 487 ई.पू.)

गौतम बुद्ध के निर्वाण वर्ष से इस सम्वत् का आरंभ हुआ था।

6 **वीर निर्वाण सम्वत्** (370 वि.पू, 527 ई.पू.)

अंतिम जैन तीर्थंकर महावीर के निर्वाण वर्ष विक्रम सम्वत् में 470 एवं ई.पू. 527 से इसका आरंभ माना जाता है।

7 **मौर्य सम्वत्** (263 वि.पू. 320 ई.पू.)

चंद्रगुप्त मौर्य ने चाणक्य की सहायता से मौर्य साम्राज्य की स्थापना की थी। इसके साथ ही उसने मौर्य सम्वत् को आरंभ किया था।

8 **सेल्यूसिडियन सम्वत्** (255 वि.पू, 312 ई.पू.)

सिकंदर के सेनापति सेल्यूकस ने जब पश्चिमी एशिया का साम्राज्य प्राप्त किया तब अपने नाम का सम्वत् चलाया था।

9 **लौकिक सम्वत्** (32 विक्रम सम्वत्, 25 ई.पू.)

10 **विक्रम सम्वत्** (57 ई.पू.)

इसकी शुरूआत उज्जैन के लोकप्रिय सम्राट विक्रमादित्य ने शकों पर विजय प्राप्त करने के उपलक्ष्य में की थी। इसको मालव सम्वत् भी कहते हैं। मालवराज विक्रमादित्य ने शकों को परास्त कर अपने नाम का सम्वत् चलाया, यह चैत्र शुक्ल 1 से आरंभ होता है।

11 **ईस्वी सन्**

ईसा मसीह के जन्म वर्ष से इस का आरंभ माना जाता है। ई.स. 527 को रोम निवासी पादरी डायोनिसियस ने गणना कर रोम नगर की स्थापना से 795 वर्ष बाद ईसा मसीह का जन्म होना निश्चित किया था। 1000 ईस्वी तक जाकर यूरोप सहित विश्व के अनेक देशों में इसका प्रचलन शुरू हुआ।

12 **शक सम्वत्** (135 विक्रम सम्वत्, 78 ई.)

इसकी शुरुआत शकों द्वारा विक्रमादित्य के शासन के 137 वर्ष बाद उज्जैन पर पुनः विजय प्राप्त करने के उपलक्ष्य में की गयी थी।

13 **कलचुरि सम्वत्** (305 विक्रम सम्वत्, 248 ई.)

इसको चेदि सम्वत् और त्रैकुटक सम्वत् भी कहते हैं। इसको त्रैकुटक नामक एक राजवंश द्वारा आरंभ किया गया था।

14 **गुप्त सम्वत्** (377 विक्रम सम्वत्, 320 ई.)

इसकी शुरुआत चन्द्रगुप्त प्रथम ने की थी। इसको गुप्त काल या गुप्त वर्ष भी कहा जाता है।

15 शाहूर सन् तुगलक द्वारा चलाया गए यह सन् हिजरी सन् का संशोधित रूप है। चंद्र मास के बदले सौर मास के अनुसार माना गया है। इसमें 650 जोड़ने पर विक्रम सम्वत् बनता है। मराठी पंचांग में यह अभी भी मिलता है।

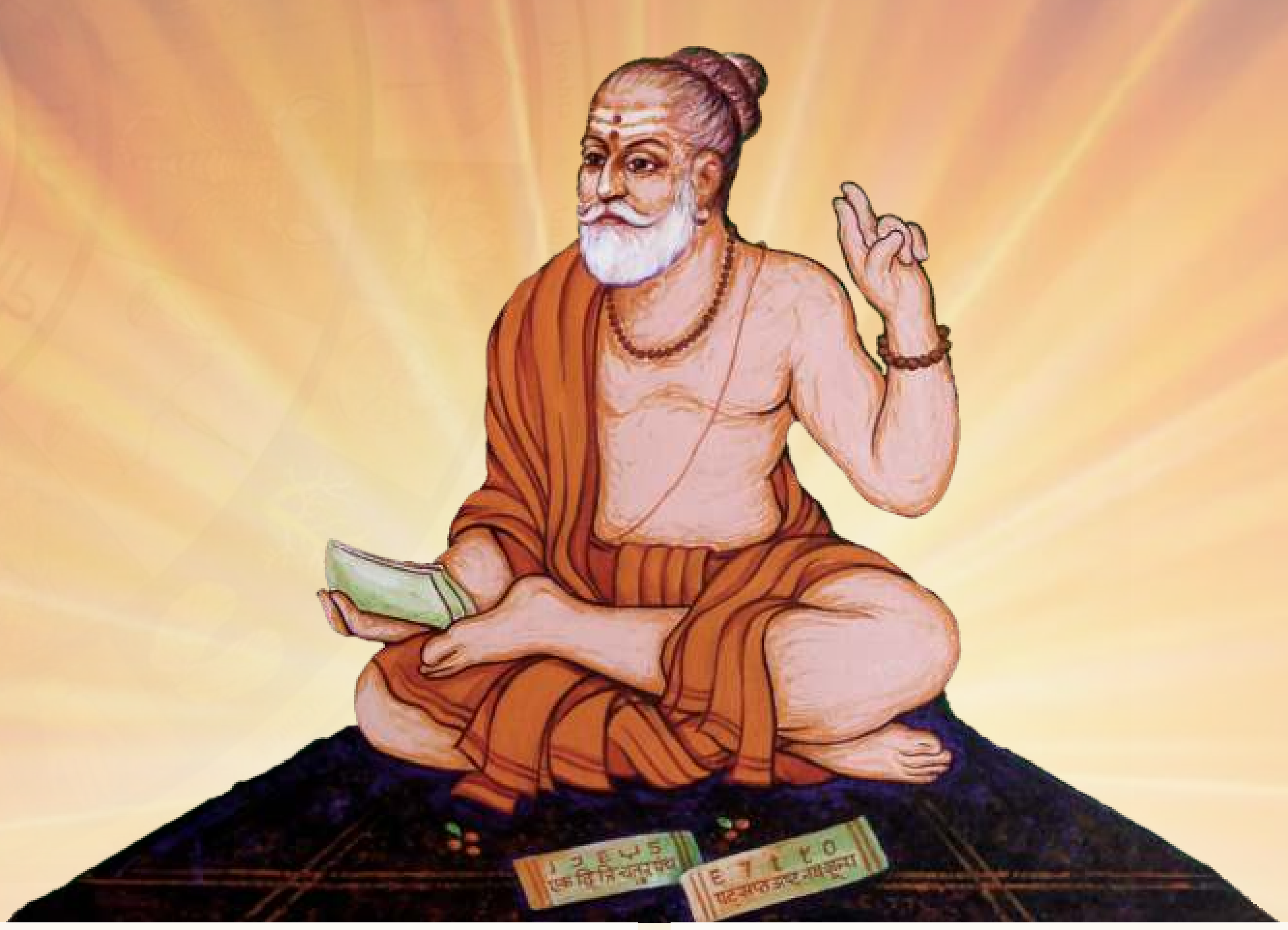

16

बंगाल सन्

इसे 'बंगाब्द' भी कहते हैं। इसका आरंभ वैशाख से होता है। इसमें 651 जोड़ने से विक्रम सम्वत् बनता है। बंगाल के अनेक भागों में कभी यह व्यापक रूप से प्रचलित था।

17

गांगेय सम्वत्

यह सम्वत् कलिंगनगर (तमिलनाडु) के गंगा वंशी राजा द्वारा चलाया हुआ सम्वत् माना जाता है। दक्षिण भारत में अनेक स्थानों पर इसका उल्लेख मिलता है। 633 जोड़ने से विक्रम सम्वत् बनता है।

18

हर्ष सम्वत् (663 विक्रम सम्वत्, 606 ई.)

इसकी शुरुआत कन्नौज के शासक हर्षवर्धन ने की थी और हर्षवर्धन की मृत्यु के बाद एक सदी तक यह उत्तर भारत में चलन में था।

19

हिजरी सन्

इस्लामिक कैलेंडर के हिसाब से (679 विक्रम सम्वत्) 622 ईस्वी सन् से इसका आरंभ माना जाता है। यह चंद्र वर्ष है, चाँद देखकर इसका आरंभ किया जाता है। इसकी तारीख एक शाम से दूसरी शाम तक चलती है।

20

भट्टिक सम्वत्

यह सम्वत् जैसलमेर के राजा भट्टीक (भाटी) द्वारा शुरू किया गया था। इसमें 680 जोड़ने से विक्रम सम्वत् बनता है।

21

कोल्लम सम्वत्

केरल मालाबार के लोग इसे परशुराम सम्वत् भी कहते हैं। तमिल में इसे कोल्लम और संस्कृत में कोलंब सम्वत् कहा गया है। 881 जोड़ने पर विक्रम सम्वत् बनता है।

22

नेवार (नेपाल) सम्वत्

नेपाल के राजा जयदेव मल्ली ने इस सम्वत् को आरंभ किया था। इसमें 936 जोड़ने पर विक्रम सम्वत् बनता है।

23

यहूदी सन्

इजराइल और विश्व के यहूदी इसका प्रयोग करते है।

24

फसली सन्

अकबर ने टोडरमल के परामर्श से लगान वसूली के लिए हिजरी सन् 971 (1506 विक्रम सम्वत्) में चलाया था । यह भी हिजरी सन् का संशोधित रूप ही था। क्योंकि इसके महीने सौर मास के अनुसार चलते थे।

25

इलाही सन्

अकबर ने बीरबल के सहयोग दीन-ए-इलाही के साथ इस सन् को हिजरी सन् 992 (विक्रम सम्वत् 1527 एवं 1584 ई.) में चलाया। इसमें 1 महीना 32 दिनों का होता था। बाद में शाहजहाँ ने इसे समाप्त कर दिया।

26

चालुक्य विक्रम सम्वत्

दक्षिण के चालुक्य राजा विक्रमादित्य (छठे) ने शक सम्वत् के स्थान पर चालुक्य विक्रम सम्वत् चलाया। इसको चालुक्य 'विक्रम का काल' वह 'विक्रम वर्ष' भी कहा जाता है। इसमें 1132 जोड़ने पर विक्रम सम्वत् बनता है।

27

सिंह सम्वत्

इस सम्वत् की शुरुआत काठियावाड़ के गोहिल शासकों ने की थी । इस सम्वत् को शिवसिंह सम्वत् के नाम से भी जाना जाता था । इसमें 1170 जोड़ने से विक्रम सम्वत् बनता है।

28

लक्ष्मणसेन सम्वत्

बंगाल के सेनवंशी राजा लक्ष्मण सेन के राज्याभिषेक से इसका आरंभ हुआ । इसका प्रचलन बंगाल बिहार और उड़ीसा में था । इसमें 1175 जोड़ने से विक्रम सम्वत् बनता है।

29

पुडेचैप्पू सम्वत्

यह से (1398 विक्रम सम्वत्) 1341 में केरल के कोच्चि के पास एक टापू की स्मृति में चलाया गया था। इसका प्रचलन कोचीन राज्य के आसपास तक ही रहा ।

30

राज्याभिषेक सम्वत् (विक्रम सम्वत् 1731 ईस्वी 1674)

ज्येष्ठ शुक्ल त्रयोदशी को शिवाजी का राज्याभिषेक हुआ था, जिसे आनंदनाम सम्वत् का नाम दिया गया। महाराष्ट्र में रायगढ़ किले में एक भव्य समारोह में शिवाजी पूर्णरूप से छत्रपति अर्थात् एक प्रखर हिन्दू सम्राट के रूप में स्थापित हुए।

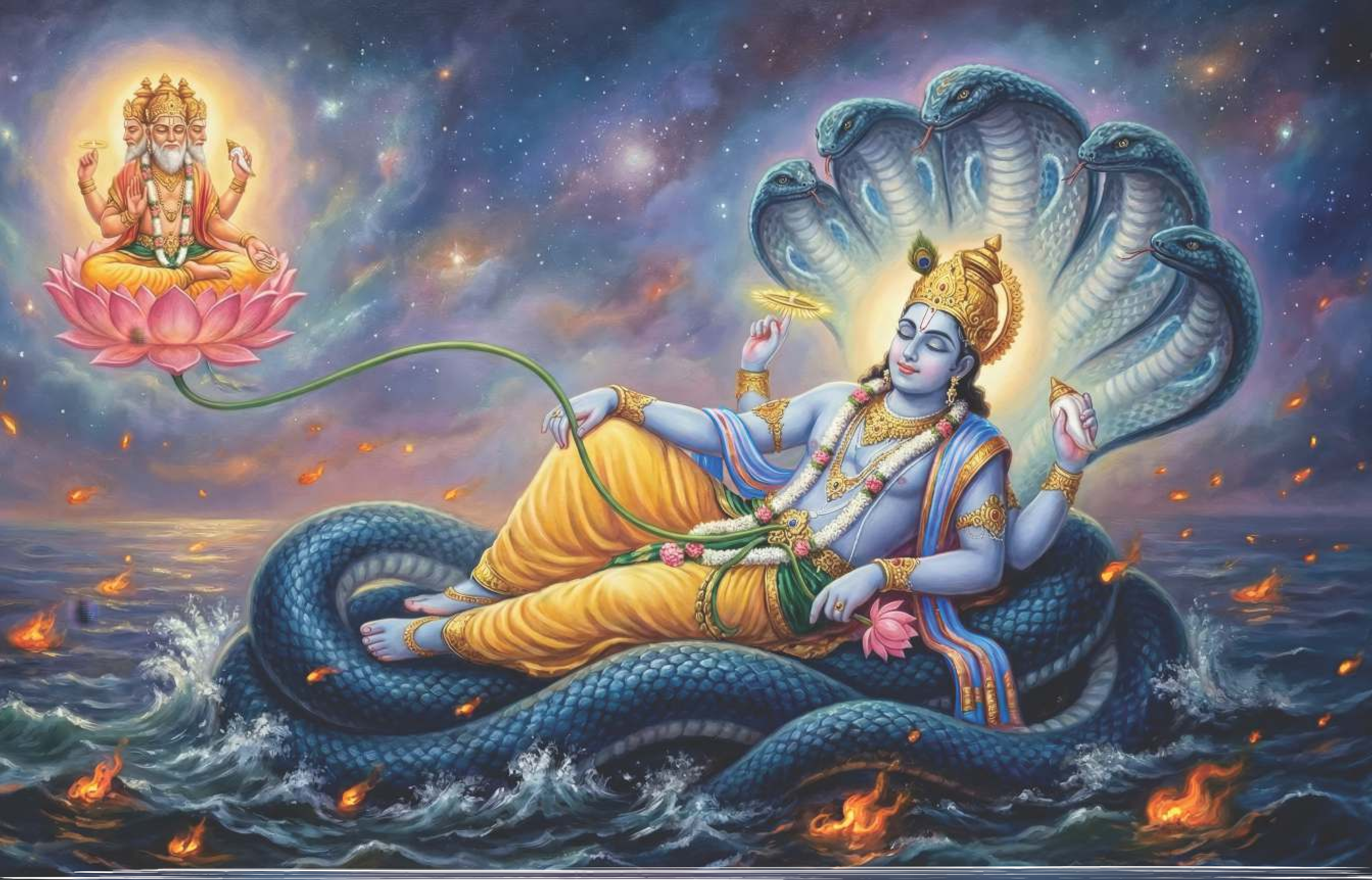

सृष्टि और काल चेतना

भारतीय पुराण दर्शन में सृष्टि का विचार किसी एक क्षणिक घटना का विवरण नहीं है, बल्कि वह चेतना, काल और अस्तित्व के सतत प्रवाह की गहन कल्पना है। जब यह कहा जाता है कि ब्रह्मा ने सृष्टि का निर्माण किया, तो इसका अर्थ केवल भौतिक जगत की रचना नहीं, बल्कि नियम, गति, समय और जीवन-मरण के पूरे विधान की स्थापना से है। पुराणों के अनुसार सृष्टि से पूर्व न तो दिन था, न रात, न आकाश था, न पृथ्वी, न गति थी और न ही मापन का कोई आधार। उस अवस्था को अव्यक्त, अंधकारमय और निश्चेष्ट कहा गया है, जहाँ केवल परब्रह्म की सत्ता थी। उसी परब्रह्म का एक स्वरूप नारायण या विष्णु के रूप में व्यक्त होता है, जो कारण–सागर में योगनिद्रा में स्थित हैं। यह स्थिति किसी साधारण निद्रा जैसी नहीं, बल्कि वह अवस्था है जहाँ सृष्टि की संभावनाएँ बीज रूप में निहित रहती हैं। जब सृष्टि की इच्छा प्रकट होती है, तब विष्णु के नाभि कमल से हिरण्यगर्भ उत्पन्न होता है और उसी कमल पर ब्रह्मा का आविर्भाव होता है। इसलिए ब्रह्मा को कमलज और स्वयंभू कहा गया है, क्योंकि वे किसी मानवीय जन्म प्रक्रिया से नहीं, बल्कि सृष्टि–इच्छा के साकार रूप से प्रकट होते हैं। ब्रह्मा का स्वरूप स्वयं में सृष्टि की व्यापकता का प्रतीक है। उनके चार मुख चारों दिशाओं, चार वेदों और ज्ञान की सर्वव्यापकता को दर्शाते हैं। प्रारंभ में ब्रह्मा के सामने कोई दृश्य जगत नहीं था। चारों ओर केवल शून्यता और अंधकार था। इसी अवस्था में ब्रह्मा ने तप किया, चिंतन किया और सृष्टि की योजना को अपने भीतर स्पष्ट किया। यह योजना केवल भौतिक पदार्थों की रचना नहीं थी, बल्कि चेतना, कर्म और परिणाम के नियमों की स्थापना थी। सबसे पहले ब्रह्मा ने मानस–सृष्टि की, अर्थात मन के द्वारा सृजन। सनक, सनंदन, सनातन और सनत्कुमार जैसे ऋषियों की उत्पत्ति इसी मानस सृष्टि का उदाहरण है। ये ऋषि ज्ञान और वैराग्य के प्रतीक थे और यह दर्शाते हैं कि सृष्टि का मूल आधार केवल भोग नहीं, बल्कि ज्ञान भी है।

इसके पश्चात ब्रह्मा ने प्रजापतियों और मनुओं की रचना की, जिनके माध्यम से मानव और अन्य जीव जातियों का विस्तार होना था। मनु को मानव जाति का आदिपुरुष माना गया है, और मनु से ही समाज, नियम और व्यवस्था की परिकल्पना जुड़ी है। इसी क्रम में पंचमहाभूतों की रचना होती है। आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी। इन पाँच तत्वों से ही संपूर्ण स्थूल जगत बना है। आकाश से शब्द, वायु से स्पर्श, अग्नि से रूप, जल से रस और पृथ्वी से गंध का संबंध जोड़ा गया है। यह केवल दार्शनिक कल्पना नहीं, बल्कि यह बताने का प्रयास है कि मनुष्य की इंद्रियाँ और अनुभव भी सृष्टि की मूल संरचना से गहरे जुड़े हुए हैं। ब्रह्मा की सृष्टि में देव, दानव, मानव, पशु, पक्षी, वनस्पति और समस्त जीव सम्मिलित हैं। कोई भी जीव अनावश्यक नहीं है; हर एक की भूमिका सृष्टि के संतुलन में निश्चित की गई है। सृष्टि निर्माण के साथ एक और अत्यंत महत्त्वपूर्ण तत्त्व प्रकट होता है, जिसे काल कहा गया है। काल का अर्थ केवल घड़ी से मापा जाने वाला समय नहीं, बल्कि परिवर्तन की वह शक्ति है जिसके बिना सृष्टि स्थिर और निर्जीव रह जाती। पुराणों में यह स्पष्ट किया गया है कि काल ब्रह्मा की रचना मात्र नहीं है, बल्कि वह स्वयं परब्रह्म की शक्ति है। ब्रह्मा काल के भीतर कार्य करते हैं, काल को दिशा देते हैं और उसे मापनीय बनाते हैं। जब सृष्टि में गति आती है, जब एक अवस्था दूसरी अवस्था में परिवर्तित होती है, जब जन्म होता है और मृत्यु होती है, तब काल का अनुभव होता है। इस प्रकार काल सृष्टि के साथ-साथ प्रकट होता है। सृष्टि के बिना काल निरर्थक है और काल के बिना सृष्टि निष्क्रिय।

काल को समझाने के लिए भारतीय परंपरा में उसे चक्र के रूप में देखा गया है। यह चक्र रेखीय नहीं, बल्कि आवर्ती है। सत्ययुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग ये चार युग मिलकर एक चतुर्युग बनाते हैं। हर युग में धर्म, मानव स्वभाव और जीवन पद्धति का स्वरूप बदलता है। सत्ययुग में धर्म पूर्ण होता है, त्रेता में उसमें कुछ कमी आती है, द्वापर में और अधिक, और कलियुग में धर्म अपने न्यूनतम स्तर पर पहुँच जाता है। यह गिरावट निराशा का संकेत नहीं, बल्कि यह बताने का प्रयास है कि समय के साथ परिस्थितियाँ बदलती हैं और हर युग की अपनी चुनौतियाँ होती हैं। ब्रह्मा ने काल को इस तरह व्यवस्थित किया कि सृष्टि में न तो पूर्ण स्थिरता हो और न ही पूर्ण अराजकता। पुराणों के अनुसार एक चतुर्युग की अवधि तैंतालीस लाख बीस हजार वर्ष मानी गई है। ऐसे एक हजार चतुर्युग मिलकर ब्रह्मा का एक दिन बनाते हैं। जब ब्रह्मा का दिन होता है, तब सृष्टि सक्रिय रहती है। जीव जन्म लेते हैं, कर्म करते हैं और फल भोगते हैं। जब ब्रह्मा की रात्रि होती है, तब प्रलय की स्थिति आती है, जहाँ स्थूल सृष्टि लीन हो जाती है, पर बीज रूप में संभावनाएँ बनी रहती हैं। यह प्रलय पूर्ण विनाश नहीं, बल्कि विश्राम और पुनर्संयोजन की अवस्था है। अगली सुबह फिर से सृष्टि का विस्तार होता है। इस प्रकार काल और सृष्टि एक दूसरे से अलग नहीं, बल्कि एक ही प्रक्रिया के दो पहलू हैं। इस पूरे विधान में ब्रह्मा को केवल सृष्टिकर्ता कहना पर्याप्त नहीं है। वे सृष्टि के व्यवस्थापक हैं, नियम निर्माता हैं और उस व्यवस्था के

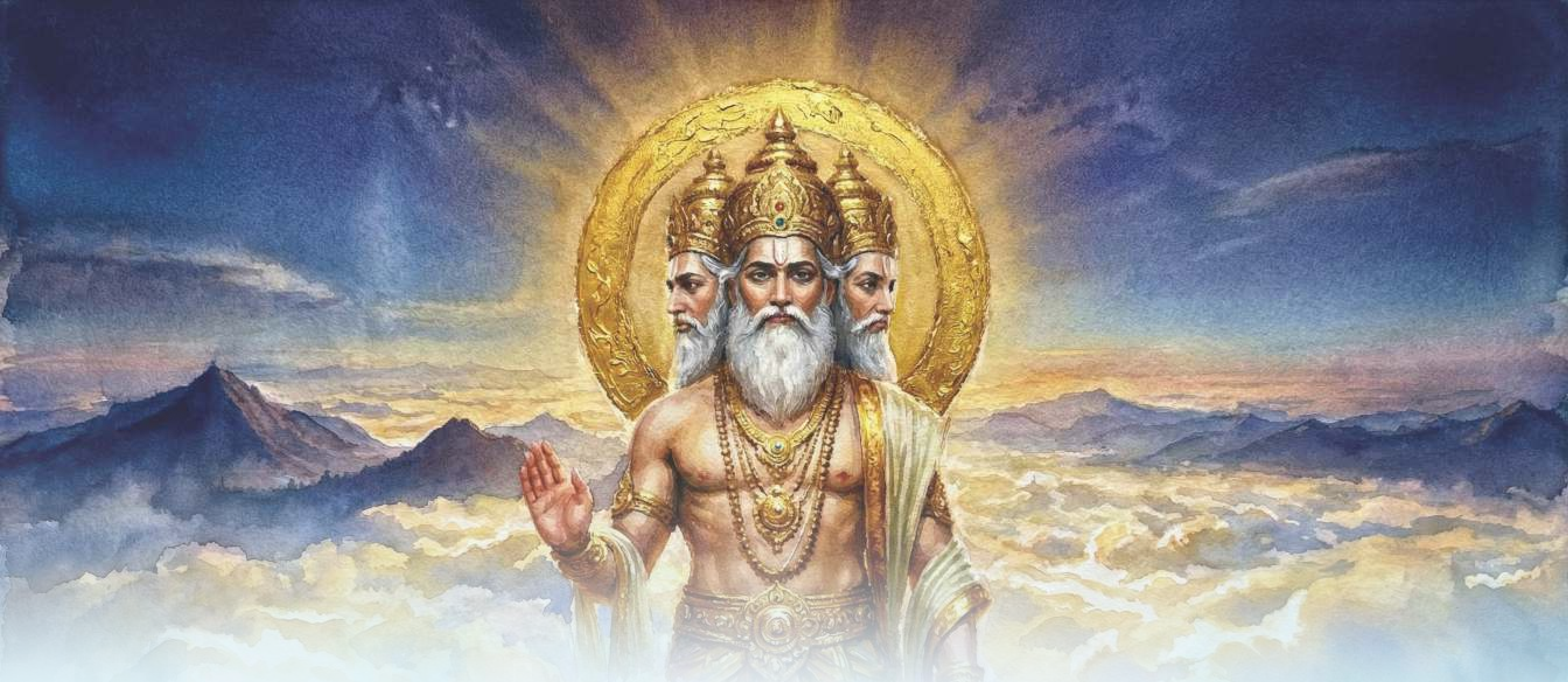

पहले ज्ञाता भी हैं। विष्णु सृष्टि का पालन करते हैं, संतुलन बनाए रखते हैं, और जब संतुलन बिगड़ता है तो अवतार लेकर उसे पुनः स्थापित करते हैं। शिव संहार या प्रलय के अधिपति हैं, पर उनका संहार भी नकारात्मक नहीं, बल्कि नई सृष्टि के लिए स्थान बनाने वाला है। इस त्रिदेव–परिकल्पना में सृष्टि, काल और चेतना एक अखंड प्रवाह में बंधे हुए हैं।

यदि गहराई से देखा जाए, तो ब्रह्मा द्वारा सृष्टि और काल की यह कल्पना केवल ब्रह्मांडीय घटना का वर्णन नहीं, बल्कि मानव जीवन का दार्शनिक रूपक भी है। जैसे सृष्टि का जन्म होता है, वैसे ही विचार जन्म लेते हैं। जैसे काल सब कुछ बदलता है, वैसे ही समय मनुष्य के अनुभव, स्मृतियाँ और संबंध बदलता है। जैसे प्रलय के बाद नई सृष्टि आती है, वैसे ही जीवन में अंत के बाद नई शुरुआत होती है। इस दृष्टि से ब्रह्मा की सृष्टि–कथा हमें यह सिखाती है कि परिवर्तन जीवन का अनिवार्य सत्य है और काल उसका मौन साक्षी है।

इस प्रकार भारतीय परंपरा में ब्रह्मा द्वारा सृष्टि निर्माण और काल व्यवस्था की कथा केवल धार्मिक आस्था का विषय नहीं, बल्कि गहन दार्शनिक चिंतन का परिणाम है। यह हमें बताती है कि ब्रह्मांड किसी अराजक संयोग से नहीं, बल्कि एक सुव्यवस्थित नियम प्रणाली से संचालित है, जहाँ सृष्टि, काल और चेतना एक दूसरे में गुंथे हुए हैं और यह प्रवाह अनादि और अनंत है।

भारतीय पुराण-दर्शन में चेतना केवल जीवों तक सीमित नहीं है, बल्कि वह सृष्टि के कण-कण में व्याप्त मानी गई है। यही कारण है कि पर्वत, नदियाँ, वृक्ष, ग्रह-नक्षत्र और यहाँ तक कि दिशाएँ भी जीवंत प्रतीकों के रूप में देखी जाती हैं। जब गंगा को केवल जलधारा नहीं, बल्कि देवी कहा जाता है, या सूर्य को देवता के रूप में पूजित किया जाता है, तब उसके पीछे यह भावना निहित रहती है कि सृष्टि की प्रत्येक अभिव्यक्ति में चेतना का अंश विद्यमान है। काल इस चेतना की गति है और सृष्टि उसका दृश्य रूप। जैसे नदी बहते हुए भी वही रहती है और हर क्षण बदलती भी रहती है, वैसे ही सृष्टि काल के प्रवाह में निरंतर परिवर्तित होती हुई भी अपनी मूल सत्ता को बनाए रखती है। पुराणों में कई प्रसंग ऐसे मिलते हैं जहाँ काल स्वयं पात्र के रूप में उपस्थित होता है। महाभारत में यक्ष और युधिष्ठिर का संवाद हो या भगवद्गीता में कृष्ण का यह कहना कि "मैं काल हूँ", ये कथन यह संकेत देते हैं कि काल कोई बाहरी शक्ति नहीं, बल्कि उसी परम चेतना का सक्रिय स्वरूप है। एक रोचक उदाहरण राजा ककुद्मी की कथा में मिलता है। कहा जाता है कि राजा अपनी पुत्री रेवती के लिए वर खोजने ब्रह्मलोक गए। वहाँ ब्रह्मा के संगीत का आनंद लेते-लेते कुछ समय बीत गया, पर जब वे पृथ्वी पर लौटे तो पता चला कि वहाँ युगों बीत चुके हैं और जिन राजाओं को वे जानते थे, वे सब काल के प्रवाह में विलीन हो चुके हैं। यह कथा केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि यह दर्शाने का प्रयास है कि काल का अनुभव सापेक्ष है। जहाँ मानव के लिए कुछ वर्ष जीवन भर का अनुभव बन जाते हैं, वहीं ब्रह्मांडीय स्तर पर वही अवधि क्षण मात्र हो सकती है।

इसी प्रकार नारद मुनि की कथा भी उल्लेखनीय है, जहाँ वे विष्णु की माया और काल के प्रभाव को समझना चाहते हैं। एक क्षण के लिए जल लाने गए नारद एक पूरे जीवन को जी लेते हैं। विवाह, परिवार, सुख-दुःख, वृद्धावस्था और अंत में जब चेतना लौटती है, तो उन्हें पता चलता है कि विष्णु के लिए वह सब केवल एक पल था। इन उदाहरणों से यह बोध होता है कि काल वस्तुनिष्ठ घड़ी नहीं, बल्कि चेतना से जुड़ा अनुभव है। जहाँ चेतना सीमित है, वहाँ काल भारी और लंबा लगता है; जहाँ चेतना व्यापक है, वहाँ वही काल क्षणभंगुर हो जाता है। ब्रह्मा की सृष्टि-कल्पना में वे स्वयं कालबद्ध हैं। ब्रह्मा का भी जीवन सीमित बताया गया है उनके सौ वर्ष, जिनमें प्रत्येक वर्ष में उनके दिन-रात्रि की गणना होती है। जब ब्रह्मा का जीवन पूर्ण होता है, तब महाप्रलय आता है, जिसमें संपूर्ण ब्रह्मांड विष्णु में लीन हो जाता है। यह विचार अत्यंत साहसिक है, क्योंकि यहाँ तक कि सृष्टिकर्ता भी काल से परे नहीं, बल्कि काल के भीतर कार्यरत हैं। इससे यह संकेत मिलता है कि केवल परब्रह्म ही कालातीत है; शेष सब, चाहे वे देवता हों या ब्रह्मा जैसे स्रष्टा, काल के प्रवाह में बंधे हुए हैं। मानव जीवन में इस दर्शन का व्यावहारिक पक्ष भी देखा जा सकता है। जब मनुष्य अपने सुख-दुःख को शाश्वत मान लेता है, तब वह पीड़ा या अहंकार में फँस जाता है। पर जब उसे यह बोध होता है कि हर अवस्था काल के साथ बदलने वाली है, तब उसमें धैर्य और विवेक का विकास होता है। पुराणों की कथाएँ इसी मनोवैज्ञानिक सत्य को प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त करती हैं। उदाहरण के लिए, ध्रुव की कथा में एक बालक का अपमान, तपस्या और अंततः ध्रुव तारे के रूप में स्थापित होना यह दिखाता है कि समय और संकल्प मिलकर व्यक्ति को किस प्रकार रूपांतरित कर सकते हैं। ध्रुव का स्थिर तारा बनना भी प्रतीकात्मक है। काल के चक्र में भी कुछ मूल्य और सिद्धांत ऐसे होते हैं जो स्थायित्व का बोध कराते हैं।

सृष्टि और काल के इस संबंध में कर्म का सिद्धांत भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। कर्म बिना काल के फलित नहीं हो सकता और काल बिना कर्म के अर्थहीन हो जाता है। मनुष्य जो कर्म करता है, उसका फल तुरंत भी मिल सकता है या वर्षों बाद भी, यहाँ तक कि अगले जन्मों में भी। यह विस्तार काल को केवल वर्तमान क्षण तक सीमित नहीं रखता, बल्कि उसे जीवन-जीवनांतर की निरंतरता से जोड़ देता है। इस दृष्टि से सृष्टि केवल एक जन्म की कहानी नहीं, बल्कि अनंत यात्राओं की श्रृंखला है, जहाँ चेतना अनुभव करती हुई आगे बढ़ती है। एक और रोचक पक्ष यह है कि भारतीय परंपरा में भविष्य को पूर्णतः अनिश्चित नहीं माना गया। ज्योतिष, मुहूर्त और पंचांग की परंपराएँ इस बात का संकेत देती हैं कि काल की गति में कुछ नियमितताएँ हैं, जिन्हें समझकर मनुष्य अपने जीवन को अधिक संतुलित बना सकता है। यह भाग्यवाद नहीं, बल्कि सामंजस्य की दृष्टि है। काल को शत्रु नहीं, बल्कि सहचर मानने की दृष्टि। जब किसान ऋतु के अनुसार बीज बोता है, या साधक ब्रह्ममुहूर्त में ध्यान करता है, तब वह इसी काल-चेतना के साथ तालमेल बिठाता है। आधुनिक विज्ञान से तुलना करें तो यहाँ एक अद्भुत समानता दिखाई देती है। आज भौतिकी यह मानती है कि समय और अंतरिक्ष अलग-अलग नहीं, बल्कि एक ही ताने-बाने के हिस्से हैं। बिग-बैंग से पहले समय का प्रश्न ही अर्थहीन माना जाता है। यह विचार आश्चर्यजनक रूप से उस पुराणिक कल्पना से मेल खाता है, जहाँ सृष्टि से पूर्व काल की अनुपस्थिति का वर्णन किया गया है। यद्यपि भाषा और प्रतीक अलग हैं, पर अंतर्निहित जिज्ञासा वही है। यह ब्रह्मांड कैसे चलता है और चेतना उसमें क्या भूमिका निभाती है। सृष्टि, काल और चेतना की यह पूरी अवधारणा मनुष्य को विनम्र बनाती है। यह उसे यह बोध कराती है कि वह न तो अकेला है और न ही केंद्र में स्थित कोई स्थायी सत्ता। वह एक विशाल, सुव्यवस्थित और जीवंत प्रक्रिया का अंश है। उसके जीवन के सुख-दुःख, उत्थान-पतन, जन्म-मरण इस व्यापक काल-चक्र के भीतर घटित होते हैं। जब यह समझ गहरी होती है, तब जीवन के प्रति दृष्टि बदल जाती है। भय कम होता है, क्योंकि मृत्यु भी एक परिवर्तन मात्र लगने लगती है। अहंकार ढीला पड़ता है, क्योंकि व्यक्ति स्वयं को अनंत काल के सामने क्षणिक मानने लगता है। सृष्टि और काल की चेतन कल्पना केवल पुराणों की कथा नहीं रह जाती, बल्कि जीवन जीने की एक दृष्टि बन जाती है। यह दृष्टि हमें सिखाती है कि हर क्षण मूल्यवान है, क्योंकि वही चेतना का अवसर है, और हर परिवर्तन आवश्यक है, क्योंकि वही सृष्टि की गति है। इसी स्वीकार में भारतीय दर्शन की गहराई और उसकी कालजयी प्रासंगिकता निहित है।

कालाय तस्मै नमः

ब्रह्मा की कालगणना

1000 महायुग= 1 कल्प = चार अरब बत्तीस करोड़ मानव वर्ष; और यही सूर्य की खगोलीय वैज्ञानिक आयु भी है। ब्रह्मा का एक दिवस (दिन+रात) दो कल्प के बराबर होता है. ब्रह्मा का एक दिवस, एक दिन (=1कल्प) और एक रात (=1कल्प) मिलकर बनाते हैं। ब्रह्मा का एक दिवस (दिन+रात) अर्थात (एक कल्प की रात + एक कल्प का दिन) = 8 अरब 64 करोड़ मानव वर्ष का होता है।

30 ब्रह्मा के दिन = 1 ब्रह्मा का मास (दो खरब 59 अरब 20 करोड़ मानव वर्ष)

12 ब्रह्मा के मास = 1 ब्रह्मा के वर्ष (31 खरब 10 अरब 4 करोड़ मानव वर्ष)

50 ब्रह्मा के वर्ष = 1 परार्ध

2 परार्ध= 100 ब्रह्मा के वर्ष= 1 महाकल्प (ब्रह्मा का जीवन काल)(31 शंख 10 खरब 40 अरब मानव वर्ष)

ब्रह्मा का एक दिन अथवा एक रात जितनी अवधि को कल्प कहते हैं जो 4,32,00,00,000 मानव वर्ष की होती है. जो 10,000 भागों में बंटा होता है, जिसे चरण कहते हैं: एक चरण 4,32,000 साल का होता है।

चारों युग

4 चरण (1,728,000 सौर वर्ष) सतयुग

3 चरण (1,296,000 सौर वर्ष) त्रेतायुग

2 चरण (864,000 सौर वर्ष) द्वापरयुग

1 चरण (432,000 सौर वर्ष) कलियुग

यह चक्र ऐसे दोहराता रहता है, कि ब्रह्मा के एक दिन में 1000 महायुग हो जाते हैं और ब्रह्मा की रात्रि में 1000 महायुग हो जाते हैं. इस प्रकार, ब्रह्मा के एक दिवस (दिन+रात) में 2000 महायुग/चतुर्युगी हो जाते हैं। एक उपरोक्त युगों का चक्र = एक महायुग (43 लाख 20 हजार सौर वर्ष)

श्रीमद्भग्वदगीता के अनुसार "सहस्र-युग अहर-यद ब्रह्मणो विदुः", अर्थात ब्रह्मा का एक दिन = 1000 महायुग. इसके अनुसार ब्रह्मा का एक दिन = 4 अरब 32 करोड़ सौर वर्ष. इसी प्रकार इतनी ही अवधि ब्रह्मा की रात्रि की भी है।

एक मन्वन्तर में 71 महायुग (306,720,000 सौर वर्ष) होते हैं. प्रत्येक मन्वन्तर के शासक एक मनु होते हैं. प्रत्येक मन्वन्तर के बाद, एक संधि-काल होता है, जो कि कृतयुग के बराबर का होता है (1,728,000 = 4 चरण) (इस संधि-काल में प्रलय होने से पूर्ण पृथ्वी जलमग्न हो जाती है।)

एक कल्प में 432,000,0000 अर्थात 4 अरब 32 करोड़ सौर वर्ष होते हैं, जिसे आदि संधि कहते हैं, जिसके बाद 14 मन्वन्तर और संधि काल आते हैं

ब्रह्मा का एक दिन बराबर है:

(14 गुणा 71 महायुग) + (15 x 4 चरण)

= 994 महायुग + (60 चरण)

= 994 महायुग + (6 x 10) चरण

= 994 महायुग + 6 महायुग

= 1,000 महायुग

दो कल्प के बराबर ब्रह्मा का एक दिवस (दिन+रात) होता है।

जहाँ, एक कल्प में, एक हज़ार चतुर्युगी {=43,20,000 ×1000साल} का दिन होता है और फ़िर इस कल्प के बाद उतनी ही अवधि अर्थात एक कल्प की रात्रि आती है। और ब्रह्मा की यह रात्रि एक कल्प जितना लम्बा प्रलयकाल {=43,20,000 ×1000साल}होता है। इस प्रकार, ब्रह्मा के एक दिवस (दिन+रात) में 14 मनुवंतरों का एक कल्प और एक पूरा कल्प जितनी रात्रि का लम्बा प्रलयकाल बीत जाता है।

वर्तमान में कलियुग का 5100 से अधिक वर्ष बीत चुके हैं। समय की सूक्ष्मता: प्राचीन भारतीय गणना में समय की सबसे छोटी इकाई 'त्रुटि' (सेकंड का बहुत छोटा हिस्सा) से लेकर प्रलय तक की माप होती है। वैज्ञानिक आधार: यह खगोलीय पिंडों की स्थिति, नक्षत्रों, ऋतुओं, और दिनों की गणना पर आधारित है।

कलयति सर्वाणि भूतानि :

काल संपूर्ण ब्रह्मांड को, सृष्टि को खा जाता है।

काल का सूक्ष्मतम अंश परमाणु है और महानतम अंश ब्रह्मा। जैसे आधुनिक काल के अनुसार सूक्ष्मतम अंश सेकंड है और महानतम अंश शताब्दी। ज्योतिर्विदाभरण के अनुसार कलियुग में छह व्यक्तियों ने संवत चलाए। युधिष्ठर, विक्रम, शालिवाहन, विजयाभिनन्दन, नागार्जुन, कल्की। इससे पहले सप्तऋषियों ने संवत चलाए थे। बाद में इन्हीं को आधार बनाकर संवत निर्मित किये इसमें से सबसे ज्यादा सही विक्रम है। कालगणना में क्रमश: प्रहर, दिन-रात, पक्ष, अयन, संवत्सर, दिव्यवर्ष, मन्वन्तर, युग, कल्प और ब्रह्मा की गणना की जाती है।

विभिन्न ग्रंथों में समय और काल को लेकर श्लोक

त्रिंशन्मुहूर्तं तु भवेदहश्च रात्रिश्च संख्या मुनिभिः प्रणीता।
मासः स्मृतो रात्र्यहनी च त्रिंशत् संवत्सरो द्वादशमास उक्तः ॥

तीस रात-दिन का एक मास और बारह मासों का एक संवत्सर बताया गया है। विद्वान पुरुष दो अयनों को मिलाकर एक संवत्सर कहते हैं। वे दो अयन हैं- उत्तरायण और दक्षिणायन। मनुष्यलोक के दिन-रात का विभाग सूर्यदेव करते हैं। रात प्राणियों के सोने के लिये है और दिन काम करने के लिये। मनुष्यों के एक मास में पितरों का एक दिन-रात होता है। शुक्लपक्ष उनके काम-काज करने के लिये दिन है और कृष्णपक्ष उनके विश्राम के लिये रात है।

दैवे रात्यहनी वर्ष प्रविभागस्तयोः पुनः ।अहस्तत्रोदगयन रात्रिः स्याद् दक्षिणायनम् ॥

मनुष्यों का एक वर्ष देवताओं के एक दिन-रातके बराबर है, उनके दिन-रात का विभाग इस प्रकार है। उत्तरायण उनका दिन है और दक्षिणायन उनकी रात्रि ।

अहोरात्रे विभजते सूर्यो मानुषलौकिके । रात्रिः स्वप्लाय भूतानां चेष्टायै कर्मणामहः ॥

मनुष्यलोक के दिन-रात का विभाग सूर्यदेव करते हैं। रात प्राणियों के सोने के लिये है और दिन काम करने के लिये ।

-महाभारत

अहोरात्रे विभजते सूर्यो मानुषदैविके । रात्रिः स्वप्नाय भूतानां चेष्टायै कर्मणामहः ॥

सूर्य ही मनुष्यों और देवों के दिन-रात का विभाजन करता है। इसका अभिप्राय यह है कि सूर्य के उदय से अस्त होने तक की अवधि दिन और उसके अस्त होने से उदय होने के मध्य की अवधि को रात्रि नाम दिया जाता है। रात्रि प्राणियों की विश्राम-वेला है और दिन क्रिया-कलापों में प्रवृत्त होने का समय है। दूसरे शब्दा म मनुष्य दिन में काम और रात्रि में विश्राम करते हैं।

पित्र्ये रात्र्यहनी मासः प्रविभागस्तु पक्षयोः । कर्मचेष्टास्वहः कृष्णः शुक्लः स्वप्नाय शर्वरी ॥

मनुष्यों का एक मास, अर्थात् तीस दिन, जिसका विभाजन १५-१५ दिनों के शुक्ल और कृष्ण नामक दो पक्षों में किया जाता है, प्रतिपदा से पूर्णिमा तक की पन्द्रह तिथियां अथवा दिन शुक्ल पक्ष के अन्तर्गत तथा प्रथमा से अमावस्या तक की पन्द्रह तिथियां (अंधेरी रातें) कृष्ण पक्ष के अन्तर्गत हैं। शुक्ल पक्ष को 'सुदी' और कृष्ण पक्ष को वदी' संक्षेप भी दिया जाता है। एक पक्ष पितरों का एक रात-दिन होता है। इसमें शुक्ल पक्ष उनकी रात्रि, अर्थात् विश्राम का समय होता है और कृष्ण पक्ष उनका दिन, अर्थात् कार्य-काल होता है।

दैवे रात्र्यहनी वर्षं प्रविभागस्तयोः पुनः । अहस्तत्रोदगयनं रात्रिः स्याद् दक्षिणायनम् ॥

मनुष्यों के छह-छह मासों के दो अयन होते हैं। सूर्य के दक्षिण से उत्तर की ओर आने की छह मास की अवधि (माघ से आषाढ़ तक) उत्तरायण तथा उत्तर से दक्षिण की ओर जाने की छह मास की अवधि (श्रावण से पौष तक) दक्षिणायन कहलाती है। इन दो अयनों (उत्तरायण और दक्षिणायन) का अथवा बारह मासों का एक वर्ष होता है। मनुजी के अनुसार मनुष्यों का एक वर्ष देवों का एक दिन-रात होता है। उत्तरायण देवों का दिन है और दक्षिणायन उनकी रात्रि है। दक्षिणायन में देवता विश्राम करते हैं और उत्तरायण में वे जागते तथा कार्य करते हैं।

-मनु स्मृति

सूर्यसिद्धान्तमखिलं ब्रह्मणा प्रोक्तमादितः ।
मयाय दैत्यराजाय कालज्ञानप्रसिद्धये ॥

आदिकाल में ब्रह्मा द्वारा सम्पूर्ण सूर्य सिद्धान्त का उपदेश दैत्यराज मय को काल-ज्ञान,अर्थात् समय, ग्रहों की गति और गणना के ज्ञान की प्राप्ति के लिए किया गया।

लोकानामन्तकृत्कालः कालोऽन्यः कलनात्मकः ।
स द्विधा स्थूलसूक्ष्मत्वान्मूर्त्तश्चामूर्त्त उच्यते ॥

काल लोकों का अन्त करने वाला है। दूसरा काल कलनात्मक है। यह काल दो प्रकार का होता है जो मूर्त और अमूर्त। मूर्त स्थूल है जबकि अमूर्त सूक्ष्म।

कालः सृष्टिस्थितिलयानां कारणं परमेश्वरः।
तस्माद् गतिविशेषेण ग्रहाणां फलसाधनम्॥

काल ही सृष्टि, स्थिति और प्रलय का कारण है। उसी काल की विशेष गतियों से ग्रहों के फल निर्धारित होते हैं।

ग्रहाणां भ्रमणं नित्यं कालचक्रानुसारतः। न स्थिरं न च नित्यं हि दृश्यते जगदेतकम्॥

ग्रहों का भ्रमण सदा काल-चक्र के अनुसार होता है। यह जगत न पूर्णतः स्थिर है और न ही अपरिवर्तनीय।

गोलाकारं महीरूपं सर्वतः परिमण्डितम्। यतो न दृश्यते भेदो गत्याऽऽलोकप्रभावतः॥

पृथ्वी का रूप गोलाकार है और चारों ओर से समरूप है। गति और दृष्टि-प्रभाव के कारण उसका भेद स्पष्ट नहीं दिखता।

स्वकक्ष्यागमनाद् भानोर् दिनरात्रिप्रसूतयः। छायालोकविभागेन दृश्यते कालभेदकः॥

सूर्य की कक्षा-गतियों से दिन और रात्रि उत्पन्न होते हैं।

प्रकाश और छाया के विभाजन से काल का भेद दिखाई देता है।

-सूर्य सिद्धांत

विक्रम पंचांग

विक्रम सम्वत् 2083

‘रौद्र’ नाम सम्वत्सर | • कलि सम्वत् 5127 • सृष्टि आरंभ 1955885127 | • राजा- बृहस्पति • मंत्री - मंगल

19 मार्च से 02 अप्रैल 2026

चैत्र शुक्ल पक्ष (बसंत ऋतु)

03 अप्रैल से 17 अप्रैल 2026

वैशाख कृष्ण पक्ष (बसंत ऋतु)

	22 मार्च चतुर्थी गुरू अंगददेव पुण्यतिथि	**29** मार्च एकादशी कामदा एकादशी व्रत	**रविवार**		**05** अप्रैल तृतीया	**12** अप्रैल दशमी
	23 मार्च पंचमी गुरू हरगोविन्द पुण्यतिथि शहीद दिवस	**30** मार्च द्वादशी प्रदोष व्रत	**सोमवार**		**06** अप्रैल चतुर्थी	**13** अप्रैल एकादशी वरूथिनी ग्यारस पंचकोशी यात्रा आरंभ जलियाँवाला बाग दिवस
	24 मार्च षष्ठी	**31** मार्च त्रयोदशी महावीर जयंती	**मंगलवार**		**07** अप्रैल पंचमी विश्व स्वास्थ्य दिवस	**14** अप्रैल द्वादशी डॉ. अंबेडकर जयंती वैशाखी सेन जयंती
	25 मार्च सप्तमी	**01** अप्रैल चतुर्दशी	**बुधवार**		**08** अप्रैल षष्ठी	**15** अप्रैल त्रयोदशी प्रदोष व्रत
19 मार्च प्रतिपदा चैत्र, गुड़ी पड़वा चैत्र नवरात्रारंभ ज्योतिषर्विज्ञान दिवस	**26** मार्च अष्टमी दुर्गाष्टमी	**02** अप्रैल पूर्णिमा धरती पूजा हनुमान जयंती	**गुरुवार**		**09** अप्रैल सप्तमी	**16** अप्रैल चतुर्दशी
20 मार्च द्वितीया चंद्र दर्शन, चेटीचंड सिंधारा दोज रानी अवंती बलिदान दिवस	**27** मार्च नवमी राम नवमी		**शुक्रवार**	**03** अप्रैल प्रतिपदा गुड फ्राइडे वैशाख	**10** अप्रैल अष्टमी	**17** अप्रैल अमावस्या अमावस्या पंचकोशी यात्रा पूर्ण
21 मार्च तृतीया ईद–उल–फितर मीनेष जयंती	**28** मार्च दशमी		**शनिवार**	**04** अप्रैल द्वितीया	**11** अप्रैल नवमी ज्योतिबा फुले जयंती	

ब्रह्मा : सृष्टि के रचनाकार

कालोऽयं परमाण्वादिर्द्विपरार्धान्त एव च । ईशस्यैव हि संकल्पो ब्रह्मणो ह्यनुगच्छति ॥ (श्रीमद्भागवत पुराण 3.11.38–39)

"यह काल परमाणु जैसे सूक्ष्म क्षण से लेकर ब्रह्मा के द्विपरार्ध तक फैला हुआ है। यह काल स्वयं ईश्वर की संकल्पशक्ति है और उसी के अनुसार ब्रह्मा सृष्टि की रचना करते हैं।"

भारतीय चिंतन परंपरा में सृष्टि को केवल भौतिक जगत का आरंभ नहीं माना गया, बल्कि उसे चेतना, नियम, समय और नैतिक व्यवस्था के क्रमिक विस्तार के रूप में समझा गया है। इस व्यापक दृष्टि में ब्रह्मा का स्थान अत्यंत विशिष्ट है। वे सृष्टि के मूल प्रवर्तक, विस्तारक और संरचनाकार हैं। ब्रह्मा का सृजन किसी क्षणिक घटना का नाम नहीं, बल्कि एक सतत, अनुशासित और चक्रीय प्रक्रिया है, जो अनादि-अनंत काल से चलती आ रही है। सृष्टि उनके हाथों में आकार लेती है, नियम पाती है और फिर उसी नियमबद्धता के भीतर निरंतर आगे बढ़ती है। सृष्टि का विचार आते ही प्रश्न उठता है। आरंभ कैसे हुआ? भारतीय परंपरा इस प्रश्न का उत्तर हिरण्यगर्भ के सिद्धांत से देती है। हिरण्यगर्भ, अर्थात स्वर्णमय गर्भ, वह आद्य बीज है जिसमें संपूर्ण ब्रह्मांड की संभावनाएँ निहित थीं। अंधकार और अव्यक्तता की अवस्था में यही गर्भ चेतना के प्रथम स्पंदन के रूप में प्रकट हुआ। इसी से ब्रह्मा का उद्भव माना गया है। यह उद्भव इस बात का संकेत है कि सृष्टि आकस्मिक या अराजक नहीं है, बल्कि उसमें अंतर्निहित योजना और संभावना पहले से विद्यमान थी।

ब्रह्मा का प्राकट्य कमल पर होता है। यह कमल विष्णु की नाभि से उत्पन्न माना गया है। इस प्रतीक में गहरी दार्शनिकता छिपी है। विष्णु संरक्षण और संतुलन के प्रतीक हैं, और उनके नाभि से निकला कमल यह दर्शाता है कि सृजन तभी संभव है जब संरक्षण और स्थिरता की भूमि पहले से तैयार हो। कमल स्वयं पवित्रता, चेतना और निर्लिप्तता का प्रतीक है। कीचड़ में रहकर भी उससे अछूता। इसी प्रकार सृष्टि भौतिकता में रहते हुए भी एक दिव्य उद्देश्य से संचालित होती है। ब्रह्मा के चार मुख सृष्टि के चार आयामों को उद्घाटित करते हैं। ये चारों दिशाओं, चार वेदों और ज्ञान की समग्रता के प्रतीक हैं। सृष्टि का विस्तार केवल पदार्थ तक सीमित नहीं है; उसमें ज्ञान, वाणी, विधि और मर्यादा भी उतनी ही आवश्यक हैं। वेदों के माध्यम से ब्रह्मा सृष्टि को अर्थ देते हैं। यदि केवल पदार्थ होता और ज्ञान न होता, तो सृष्टि निरर्थक होती। इसलिए ब्रह्मा का सृजन ज्ञान और पदार्थ के संतुलन से पूर्ण होता है।

सृष्टि की प्रथम अवस्था मानस सृष्टि कही गई है। इस अवस्था में ब्रह्मा अपने मन से सृजन करते हैं। ऋषि, प्रजापति और देवगण इसी मानस सृष्टि के परिणाम हैं। ये केवल व्यक्ति नहीं, बल्कि सृष्टि के सिद्धांत और शक्तियाँ हैं। मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वसिष्ठ और दक्ष जैसे प्रजापति सृष्टि के विभिन्न आयामों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इनके माध्यम से वंश, समाज, प्रकृति और नियमों का विस्तार होता है। यह संकेत करता है कि सृष्टि पहले सूक्ष्म रूप में विचार और नियम के स्तर पर जन्म लेती है, फिर स्थूल जगत में प्रकट होती है। मानस सृष्टि के बाद ब्रह्मा स्थूल सृष्टि की ओर बढ़ते हैं। पंचमहाभूत आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी का विधान इसी क्रम में होता है। आकाश से विस्तार, वायु से गति, अग्नि से ऊर्जा, जल से प्रवाह और पृथ्वी से स्थिरता प्राप्त होती है। इन पाँच तत्वों के संतुलन से ही जीवन संभव होता है। मानव शरीर से लेकर ग्रह-नक्षत्रों तक, सब कुछ इन्हीं तत्वों की विविध संयोजनात्मक अभिव्यक्तियाँ हैं। इस प्रकार ब्रह्मा का सृजन सूक्ष्म से स्थूल की ओर बढ़ता है। ब्रह्मा द्वारा सृष्टि का विस्तार केवल प्राकृतिक संरचना तक सीमित नहीं रहता, बल्कि सामाजिक और नैतिक व्यवस्था भी उसी का अंग है। वर्ण और आश्रम की अवधारणाएँ इसी क्रम में समझी जाती हैं। इनका मूल उद्देश्य समाज में कार्य-विभाजन और संतुलन स्थापित करना था, न कि ऊँच-नीच। ब्रह्मा के सृजन में प्रत्येक घटक का अपना स्थान और महत्व है। कोई भी तत्व निरर्थक नहीं; सब एक-दूसरे पर निर्भर हैं।

सृष्टि में नारी तत्व की भूमिका को भी ब्रह्मा के सृजन से अलग नहीं किया जा सकता। सरस्वती ब्रह्मा की शक्ति हैं। वे वाणी, विद्या, स्मृति और रचनात्मक बुद्धि की प्रतीक हैं। बिना सरस्वती के ब्रह्मा का सृजन मूक और निष्क्रिय होता। यह दर्शाता है कि सृष्टि का विस्तार केवल पुरुष तत्व से नहीं, बल्कि पुरुष और प्रकृति के सहयोग से होता है। ज्ञान, कला, संगीत और साहित्य ये सभी सरस्वती के माध्यम से सृष्टि में प्रवाहित होते हैं और मानव सभ्यता को ऊँचाई देते हैं। काल की अवधारणा भी ब्रह्मा के सृजन का एक अनिवार्य अंग है। सृष्टि को उन्होंने कालबद्ध किया युग, मन्वंतर और कल्प के रूप में। प्रत्येक कल्प ब्रह्मा का एक दिन माना गया है, और उतनी ही लंबी उनकी रात्रि में सृष्टि लय को प्राप्त होती है। यह चक्रीय दृष्टि भारतीय चिंतन की विशेषता है। यहाँ सृष्टि का अंत पूर्ण विनाश नहीं, बल्कि विश्राम और पुनः सृजन की तैयारी है। इस दृष्टि से ब्रह्मा का सृजन निरंतर चलता रहने वाला प्रवाह है।

मन्वंतर की अवधारणा के माध्यम से मानव जाति की निरंतरता को समझाया गया है। प्रत्येक मन्वंतर में एक मनु होता है, जो मानव समाज का विधान करता है। यह बताता है कि सृष्टि स्थिर नहीं, बल्कि निरंतर विकसित होने वाली व्यवस्था है। समय के साथ नियम, समाज और चेतना बदलती रहती है, किंतु मूल सिद्धांत वही रहते हैं। ब्रह्मा की सृष्टि में देव, दानव, मनुष्य, पशु और वनस्पति सभी का स्थान है। कोई भी सत्ता पूर्णतः स्वतंत्र नहीं; सब एक-दूसरे से जुड़े हैं। देव प्रकृति की शुभ शक्तियों के प्रतीक हैं, दानव उग्र और असंतुलित प्रवृत्तियों के। दोनों के संघर्ष के माध्यम से संतुलन की खोज चलती रहती है। यह संघर्ष भी सृष्टि के विस्तार का ही एक रूप है, क्योंकि उससे नए नियम और समझ विकसित होती है। दार्शनिक दृष्टि से ब्रह्मा का सृजन बाह्य जगत तक सीमित नहीं है। मानव के भीतर विचारों का जन्म, भावनाओं का विकास और विवेक का विस्तार भी उसी ब्रह्मांडीय सृष्टि का सूक्ष्म प्रतिबिंब है। जिस प्रकार ब्रह्मा अराजकता से क्रम उत्पन्न करते हैं, उसी प्रकार मानव अपने भीतर के अव्यवस्थित विचारों को ज्ञान और अनुशासन से आकार देता है। इस दृष्टि से प्रत्येक मनुष्य अपने भीतर एक लघु ब्रह्मा है। उपनिषदों में सृष्टि को एक से अनेक की यात्रा कहा गया है। ब्रह्मा इसी यात्रा के प्रतीक हैं। एक अव्यक्त सत्ता से विविध नाम-रूपों की उत्पत्ति होती है। किंतु इस विविधता के पीछे एक ही तत्त्व विद्यमान रहता है। यह समझ मानव को अहंकार से मुक्त करती है और समग्रता की ओर ले जाती है।

श्री विक्रम शुभ सम्वत् २०८३ शके १९४८ चैत्र शुक्ल पक्ष

दि.१९ मार्च से ०२ अप्रैल २०२६ तक

उत्तरायण **वसंत/ग्रीष्म ऋतु**

तिथि	वार	समाप्ति घं.	मि.	नक्षत्र	समाप्ति घं.	मि.	योग	समाप्ति घं.	मि.	करण	समाप्ति घं.	मि.	सू.उ. घ.मि.	सू.अ. घ.मि.	चन्द्रराशि प्रवेश	सूर्य स्पष्ट स्टे.टा ५/३०			मार्च अप्रैल	यहाँ पर दिया गया, सभी समय, भा.स्टे.स्टा.में है जो सम्पूर्ण भारत में समान रूप से ग्राहय रहेगा ।
०१	गुरु	२८	५५	००	00	00	००	00	00	००	००	००	00	00	००	00	00	00	19	प्रतिपदा का क्षय नवचान्द्र सम्वत्सर प्रारंभ, वासन्ती नवरात्र प्रा. गुड़ी पडवा, ज्योतिष दिवस
०२	शुक्र	२६	३४	रेवती	२६	३०	ब्रह्म	२२	१७	बाल	१५	४४	०६ ३२	१८ ३६	मेष२६।२७	११	०५	१२	20	चन्द्रदर्शन, पंचक समाप्त २६।२७ पर,
०३	शनि	२३	५९	अश्वि	२४	४०	ऐन्द्र	१९	०४	तैति	१३	१५	३२	३६	मेष	११	०६	११	21	श्री मत्स्य जयंती, गणगौरी पूजा (गौरी मनोरथ तृतीया)
०४	रवि	२१	२०	भरणी	२२	४५	वैधृति	१५	४४	वणि	१०	३६	३१	३६	वृषभ२८।१३	११	०७	११	22	भ. १०।३६ से २१।१६तक, श्री विनायक चतुर्थी व्रत
०५	सोम	१८	४१	कृतिका	२०	५२	विष्कु	१२	२४	बव	०७	५८	३०	३७	वृषभ	११	०८	१०	23	श्री लक्ष्मी पंचमी व्रत, हयव्रत, सर्वार्थसिद्धि २०५० से ३०।३० तक
०६	मंगल	१६	११	रोहिणी	१९	०७	प्रीति आयु	०९ ३०	१० ०५	तैति	१६	०७	२९	३७	मि.३०।२०	११	०९	१०	24	स्कन्दषष्ठी, यमुनाजयंती, रवियोग १९।०४
०७	बुध	१३	५३	मृगशि	१७	३६	सौभा	२५	१२	वणि	१३	४९	२८	३७	मिथुन	११	१०	०९	25	भ. १३।४९ से २४।४७ तक, शुक्र अश्विमेष में २९।९
०८	गुरु	११	५२	आर्द्रा	१६	२२	शोभन	२५	३४	बव	११	४८	२७	३८	मिथुन	११	११	०९	26	श्री दुर्गाष्टमी, अशोकाष्टमी, भवानी उत्पत्ति, श्रीरामनवमी व्रत
०९	शुक्र	१०	१०	पुनर्वसु	१५	२७	अति	२२	१३	कौल	१०	०७	२६	३८	कर्क.०९।३८	११	१२	०८	27	श्रीरामनवमी व्रत(वैष्णव), नवरात्र पूर्ण सर्वार्थसिद्धि ०६२८ से १५।२४ तक
१०	शनि	०८	४९	पुष्य	१४	५३	सुकर्मा	२०	०८	गर	०८	४५	२५	३९	कर्क	११	१३	०८	28	भ. २०।१३ से, राहु शत.२, केतु मघा.४ में २९।३०, रवियोग १४।५० तक
११	रवि	०७	४९	आश्ले	१४	४०	धृति	१८	२२	विष्टि	०७	४७	२४	३९	सिंह १४।३८	११	१४	०७	29	भ. ०७।४७ तक, कामदा एकादशीव्रत (लौंग), श्री लक्ष्मीकांत दोलोत्सव
१२	सोम	०७	१२	मघा	१४	५०	शूल	१६	५४	बाल	०७	१०	२३	३९	सिंह	११	१५	०६	30	सोमप्रदोषव्रत, श्री विष्णु द्वादशी, श्री विष्णु दमनोत्सव, मदन द्वादशी
१३	मंगल	०६	५९	पू०फा	१५	२३	गण्ड	१५	४४	तैति	०६	५५	२२	४०	क.२१।३५	११	१६	०६	31	श्री महावीर जयंती (जैन), सूर्य रेवती में २०।०९, रवियोग १५।२१ तक
१४	बुध	०७	०९	उ०फा	१६	२०	वृद्धि	१४	५३	वणि	०७	०५	२१	४०	कन्या	११	१७	०५	01	भ.०७।०५ से १९।२१ तक, श्री शिवदमनोत्सव, श्रीसत्यव्रत, अप्रेल मास. प्रा.
१५	गुरु	०७	४४	हस्त	१७	४१	ध्रुव	१४	२२	बव	०७	४२	२०	४०	कन्या	११	१८	०४	02	श्री हनुमान जयंती, पूर्णिमा व्रत, मंगल मीन में १५।२९ मन्वादि, अश्वत्थसेचन

दि.३०/०३/२०२६ स्टे.टा. ०५/३०

सू	चं	मं	बु	गु	शु	श	रा
११	०४	१०	१०	०२	००	११	१०
१५	०८	२७	१७	२१	०४	११	१३
०४	१३	१९	५३	२५	५७	०४	१६
३४	५०	४०	४१	५२	०९	२२	४६
५९	८८६	४६	४५	०३	७३	०७	०३
१६	५५	५४	३६	३५	५४	२९	११
उभा	मृग	पूभा	शत	पून१	अश्वि	उभा३	शत२
-	-	मा	मा	मा	मा	मा	व

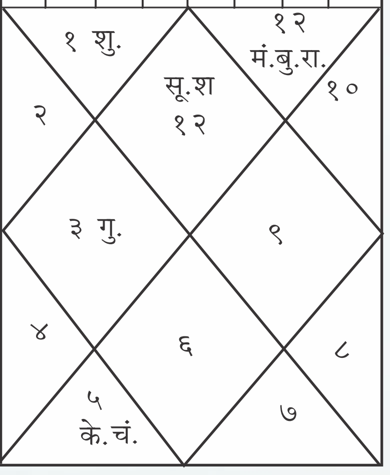

श्री विक्रम शुभ सम्वत् २०८३ शके १९४८ वैशाख कृष्ण पक्ष

दि.०३ से १७ अप्रैल २०२६ तक

उत्तरायण **बसंत ऋतु**

तिथि	वार	समाप्ति घं.	मि.	नक्षत्र	समाप्ति घं.	मि.	योग	समाप्ति घं.	मि.	करण	समाप्ति घं.	मि.	सू.उ. घ.मि.	सू.अ. घ.मि.	चन्द्रराशि प्रवेश	सूर्य स्पष्ट स्टे.टा ५/३०			अप्रैल	यहाँ पर दिया गया, सभी समय, भा.स्टे.स्टा.में है जो सम्पूर्ण भारत में समान रूप से ग्राहय रहेगा ।
०१	शुक्र	०८	४५	चित्रा	१९	२७	व्याघ	१४	११	कौल	०८	४३	०६ १८	१८ ४१	तु.०६।२८	११	१९	०३	03	-
०२	शनि	१०	१२	स्वाति	२१	३८	हर्षण	१४	१९	गर	१०	०९	१७	४१	तुला	११	२०	०२	04	भ.२३।०२ से, सर्वार्थसिद्धि ६।२० से २१।३५ तक
०३	रवि	१२	०३	विशा	२४	१०	वज्र	१४	४६	विष्टि	१२	००	१६	४२	वृश्चि.१७।३०	११	२१	०१	05	भ.१२।०० तक, श्री संकष्टातुर्थीव्रत, चन्द्रोदय २१।४७
०४	सोम	१४	१३	अनु	२६	५९	सिद्धि	१५	२८	बाल	१४	१०	१५	४२	वृश्चिक	११	२२	००	06	श्री अनुसूया जयंती, मंगल उ.भा. में २१।५३,
०५	मंगल	१६	३७	ज्येष्ठ	२९	५६	व्यति वरिया	१६ १७	१९ १३	तैति	१६	३४	१४	४३	धनु २९।५६	११	२२	५९	07	रवियोग २९।५४ से
०६	बुध	१९	०२	मूल	अ.	रा.	वरी	१७	०९	वणि	१९	०२	१६	४१	धनु	११	२३	५७	08	भ. १९।०२ से
०७	गुरु	२१	२२	मूल	०८	५१	परिघ	१८	००	विष्टि	०८	१३	१३	४३	धनु	११	२४	५७	09	भ. ०८।१३ तक, रवियोग ०८।४७ तक
०८	शुक्र	२३	१८	पू०षा	११	३०	शिव	१८	३३	बाल	१०	२१	१२	४४	म.१८।०६	११	२५	५६	10	कालाष्टमी, बुध मीन में २५।१४
०९	शनि	२४	४०	उ०षा	१३	४२	सिद्ध	१८	४१	तैति	१२	०२	११	४४	मकर	११	२६	५५	11	सर्वार्थसिद्धि १३।४१ से ३०।१२ तक
१०	रवि	२५	२०	श्रवण	१५	१६	साध्य	१८	१८	वणि	१३	०३	१०	४५	कु.२७।४७	११	२७	५४	12	भ.१३।०३ से २५।१७ तक, पंचक प्रारंभ २७।४५ से
११	सोम	२५	११	धनि	१६	०६	शुभ	१७	१९	बव	१३	१९	०९	४५	कुम्भ	११	२८	५३	13	वरूथिनी एकादशीव्रत (खरबुजा), श्री वल्लभाचार्य जयंती, पंचक्रोशी यात्रा प्रा.
१२	मंगल	२४	१५	शत	१६	०८	शुक्ल	१५	४२	कौल	१२	४७	०८	४५	कुम्भ	११	२९	५२	14	सूर्य अश्विमेष में ९।३१
१३	बुध	२२	३४	पू.भा	१५	२५	ब्रह्म	१३	२८	गर	११	२७	०७	४६	मी.०९।४०	००	००	५१	15	भ. २२।३० से, प्रदोष व्रत, शिवरात्रि व्रत
१४	गुरु	२०	१४	उ.भा	१४	०१	ऐन्द्र	१०	४०	विष्टि	०९	२६	०६	४६	मीन	००	०१	४९	16	भ. ९।२६ तक, सर्वार्थसिद्ध १४।०० से ३०।०७ तक, शुक्र कृति. में २२।१४
३०	शुक्र	१७	२४	रेवती	१२	०५	वैधृति विष्कु	०७ २७	२४ ४८	चतु	०६	५०	०५	४६	मेष १२।०५	००	०२	४८	17	वैशाखी अमावस्या पुण्य, श्री शुकदेव एवं पाराशर जयंती, पंचक्रोशी यात्रा पूर्ण

दि.१३/०४/२०२६ स्टे.टा. ०५/३०

सू	चं	मं	बु	गु	शु	श	रा
११	१०	११	११	०२	००	११	१०
२८	००	०८	०२	२२	२२	१२	१२
५१	५६	१५	५०	३२	०८	४८	३२
२४	४६	०५	१०	१६	४६	०४	१७
५८	७८८	४६	८१	०५	७३	०७	०३
५०	२५	३६	१६	५४	२४	१७	११
रेवती	धनिष्ठ	पूभा	पूभा	पून१	भरणी	उभा३	शत२
-	-	मा	मा	मा	मा	मा	व

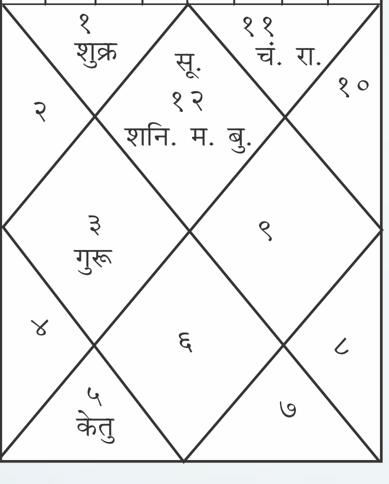

विक्रम पचांग

विक्रम सम्वत् 2083

‘रौद्र’ नाम सम्वत्सर	• कलि सम्वत् 5127 • सृष्टि आरंभ 1955885127	• राजा- बृहस्पति • मंत्री - मंगल

18 अप्रैल से 01 मई 2026
वैशाख शुक्ल पक्ष (बसंत/ग्रीष्म ऋतु)

02 मई से 16 मई 2026
ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष (ग्रीष्म ऋतु)

	19 द्वितीया अप्रैल	**26** दशमी अप्रैल	**रविवार**		**03** द्वितीया मई	**10** अष्टमी मई
	20 तृतीया अप्रैल परशुराम जयंती अक्षय तृतीया	**27** एकादशी अप्रैल मोहिनी एकादशी व्रत	**सोमवार**		**04** तृतीया मई	**11** नवमी मई
	21 चतुर्थी अप्रैल	**28** द्वादशी अप्रैल प्रदोष व्रत	**मंगलवार**		**05** चतुर्थी मई	**12** दशमी मई
	22 पंचमी षष्ठी अप्रैल शंकराचार्य जयंती विश्व पृथ्वी दिवस	**29** त्रयोदशी अप्रैल	**बुधवार**		**06** पंचमी मई	**13** एकादशी मई अपरा एकादशी
	23 सप्तमी अप्रैल	**30** चतुर्दशी अप्रैल ग्राम जयंती	**गुरुवार**		**07** पंचमी मई	**14** द्वादशी मई प्रदोष व्रत
	24 अष्टमी अप्रैल	**01** पूर्णिमा मई वैशाखी बुद्ध पूर्णिमा अंतर्राष्ट्रीय मजदूर दिवस	**शुक्रवार**		**08** षष्ठी मई	**15** त्रयोदशी चतुर्दशी मई
18 प्रतिपदा अप्रैल	**25** नवमी अप्रैल		**शनिवार**	**02** प्रतिपदा मई	**09** सप्तमी मई	**16** अमावस्या मई शनैश्चरी अमावस्या

विष्णु : जहाँ काल धर्म पाता है

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत् प्रवृद्धोलोकान् समाहर्तुमिह प्रवृत्तः । (भगवद्गीता 11.32)

“मैं ही काल हूँ,सबका संहार करने वाला, पूर्ण रूप से प्रवृद्ध। इस समय मैं लोकों का संहार करने के लिए प्रवृत्त हुआ हूँ।”

यह श्लोक केवल संहार की घोषणा नहीं है, बल्कि यह स्पष्ट करता है कि काल कोई अराजक शक्ति नहीं है। वह स्वयं विष्णु की चेतना से संचालित है। जहाँ यह काल लोकों का संहार करता है, वहीं यही काल आगे चलकर विष्णु के ही संरक्षण में पुनः सृष्टि का मार्ग भी खोलता है। इसलिए विष्णु यहाँ केवल विनाशकारी काल नहीं, बल्कि उस सम्पूर्ण समय-चक्र के अधिष्ठाता हैं जिसमें सृजन, पालन और लय तीनों निहित है।

विष्णु भारतीय दार्शनिक परंपरा में केवल एक देवता नहीं, बल्कि काल के भीतर स्थित उस चेतन सिद्धांत का प्रतीक हैं जो सृष्टि को थामे रखता है, उसे निरंतर चलायमान बनाए रखता है और विनाश के बीच भी संतुलन को अक्षुण्ण रखता है। यदि ब्रह्मा सृजन के प्रथम स्पंदन हैं और शिव संहार के अनिवार्य सत्य, तो विष्णु उस मध्य पथ के देव हैं जहाँ जीवन टिकता है, बढ़ता है और अर्थ ग्रहण करता है। काल के प्रवाह में विष्णु का स्वरूप पालनकर्ता का है, पर यह पालन केवल भौतिक अर्थों में नहीं, बल्कि नैतिक, आध्यात्मिक और दार्शनिक स्तर पर भी है। विष्णु का काल से संबंध स्थिरता और निरंतरता का संबंध है; वे समय को रोकते नहीं, न ही उसे तोड़ते हैं, बल्कि उसे ऐसा अनुशासित करते हैं कि सृष्टि अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर रह सके।

भारतीय चिंतन में काल कोई निर्जीव गणना नहीं है। वह चेतन, जीवंत और बहुआयामी तत्व है। विष्णु इसी काल के भीतर स्थित होकर उसे लोकमंगल की दिशा देते हैं। वे क्षणों को जोड़ते हैं, युगों को अर्थ देते हैं और इतिहास को धर्म की धुरी पर टिकाए रखते हैं। विष्णु का शयन क्षीरसागर में इस बात का प्रतीक है कि पालन की शक्ति कभी भी उत्तेजित या असंतुलित नहीं होती। वह गहन शांति से उत्पन्न होती है। काल का वास्तविक संचालन शोर से नहीं, बल्कि मौन से होता है। विष्णु का यह मौन काल के भीतर व्याप्त उस संतुलन का प्रतीक है जो सृष्टि को विघटन से बचाता है। विष्णु का स्वरूप बहुआयामी है। वे शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण करते हैं। ये आयुध केवल पौराणिक प्रतीक नहीं, बल्कि काल के चार आयाम हैं। शंख नाद है, समय की शुरुआत, प्रथम कंपन। चक्र गति है, काल का चक्र जो निरंतर घूमता है और कभी रुकता नहीं। गदा शक्ति है, वह बल जो अधर्म को नियंत्रित करता है ताकि समय का प्रवाह विकृत न हो। पद्म सृजन और चेतना का प्रतीक है, जो कीचड़ में खिलते हुए भी निर्मल रहता है। इन चारों के माध्यम से विष्णु यह संकेत देते हैं कि काल तभी सुरक्षित है जब नाद, गति, शक्ति और चेतना में संतुलन हो। विष्णु का पालन केवल देवताओं या मनुष्यों तक सीमित नहीं है। वे संपूर्ण ब्रह्मांड के संरक्षक हैं। ग्रह, नक्षत्र, ऋतु, वनस्पति, जीव-जंतु, सभी उनके संरक्षण में हैं। भारतीय ऋतु-चक्र में भी विष्णु का भाव निहित है। वर्षा का संतुलन, ऋतुओं का क्रम, फसलों का उगना और पकना ये सब काल के अनुशासन के उदाहरण हैं, और यह अनुशासन विष्णु के पालन का प्रत्यक्ष रूप है। वे प्रकृति को नियंत्रित नहीं करते, बल्कि उसे उसकी स्वाभाविक गति में चलने देते हैं। यही पालन का उच्चतम स्वरूप है। विष्णु का काल के साथ सबसे गहरा संबंध उनके अवतार सिद्धांत में प्रकट होता है। जब-जब काल अपने मार्ग से विचलित होता है, जब धर्म की धुरी डगमगाने लगती है, तब विष्णु अवतार लेते हैं। अवतार का अर्थ है। काल में प्रवेश। विष्णु शाश्वत हैं, पर अवतार लेकर वे क्षणिक बनते हैं, ताकि क्षणिक जगत को बचाया जा सके। यह एक गहन दार्शनिक विचार है कि जो शाश्वत है, वही क्षणिक की रक्षा कर सकता है। मत्स्य अवतार में वे प्रलय के जल से जीवन के बीज को बचाते हैं, कूर्म अवतार में वे मंथन के अस्थिर क्षणों को आधार देते हैं, वराह अवतार में वे पृथ्वी को काल के गर्त से बाहर लाते हैं। हर अवतार एक विशिष्ट कालखंड की समस्या का समाधान है। राम और कृष्ण के रूप में विष्णु का पालन मानवीय धरातल पर उतर आता है। राम मर्यादा हैं, वे काल को अनुशासन देते हैं। उनके जीवन में हर निर्णय समय, परिस्थिति और धर्म के संतुलन से जुड़ा है। वे यह सिखाते हैं कि पालन केवल प्रेम से नहीं, बल्कि त्याग और कठोर निर्णयों से भी होता है। कृष्ण लीला हैं, वे काल को रस देते हैं। उनके साथ समय ठहरता भी है और दौड़ता भी है। गीता में कृष्ण का उपदेश काल और कर्म का अद्भुत समन्वय है। वे कहते हैं कि काल अवश्यंभावी है, पर कर्म स्वतंत्र है। विष्णु का पालन यहीं प्रकट होता है। वे मनुष्य को काल के भय से मुक्त कर कर्म की ओर उन्मुख करते हैं। विष्णु का एक महत्वपूर्ण आयाम उनका योगनिद्रा में होना है। यह निष्क्रियता नहीं, बल्कि सजग विश्राम है। काल भी विश्राम मांगता है। यदि समय निरंतर बिना विराम के दौड़े, तो सृष्टि थक जाएगी। विष्णु का शयन इस बात का प्रतीक है कि संरक्षण केवल क्रिया से नहीं, विश्राम से भी होता है। आधुनिक जीवन में जहाँ समय निरंतर भाग रहा है, वहाँ विष्णु का यह स्वरूप हमें ठहरने की शिक्षा देता है। ठहराव भी पालन है। दार्शनिक स्तर पर विष्णु सत्त्व गुण के प्रतीक हैं। सत्त्व वह गुण है जो प्रकाश, संतुलन और स्पष्टता लाता है। काल जब सत्त्व से युक्त होता है, तब वह विकासशील होता है। रजस उसे उग्र बनाता है और तमस जड़।

विष्णु का पालन काल को सत्त्वमय बनाए रखने का प्रयास है। यही कारण है कि भारतीय संस्कृति में संरक्षण को सबसे महत्वपूर्ण कर्तव्य माना गया। निर्माण और विनाश दोनों आवश्यक हैं, पर उनके बीच का संतुलन ही जीवन है। विष्णु का स्मरण काल के भय को शांत करता है। मृत्यु का भय, परिवर्तन का भय, भविष्य की अनिश्चितता ये सब काल से जुड़े हैं। विष्णु का आश्रय इन भय को कम करता है क्योंकि वे आश्वासन देते हैं कि काल अराजक नहीं है। उसके पीछे एक चेतन व्यवस्था है। यही कारण है कि शरणागति की भावना विष्णु भक्ति का केंद्र है। शरणागति का अर्थ पलायन नहीं, बल्कि उस व्यवस्था में विश्वास है जो समय को अर्थ देती है। सामाजिक स्तर पर विष्णु का पालन धर्म के रूप में प्रकट होता है। धर्म कोई जड़ नियम नहीं, बल्कि समय के अनुसार बदलता हुआ नैतिक अनुशासन है। विष्णु धर्म को स्थिर नहीं रखते, वे उसे युगानुकूल बनाते हैं। यही कारण है कि हर युग में धर्म की परिभाषा बदली है, पर उसका मूल भाव लोककल्याण स्थिर रहा है। विष्णु इसी स्थिर मूल और परिवर्तनीय रूप के बीच सेतु हैं। विष्णु का काल से संबंध अंततः आशा का संबंध है।

श्री विक्रम शुभ सम्वत् २०८३ शके १९४८ वैशाख शुक्ल पक्ष

दि.१८ अप्रैल से ०१ मई २०२६ तक

उत्तरायण **बसंत/ग्रीष्म ऋतु**

तिथि	वार	समाप्ति घं.	मि.	नक्षत्र	समाप्ति घं.	मि.	योग	समाप्ति घं.	मि.	करण	समाप्ति घं.	मि.	सू.उ. घ.मि.	सू.अ. घ.मि.	चन्द्रराशि प्रवेश	सूर्य स्पष्ट स्टे.टा ५/३०			अप्रैल मई	यहाँ पर दिया गया, सभी समय, भा.स्टे.स्टा.में है जो सम्पूर्ण भारत में समान रूप से ग्राहय रहेगा ।
०१	शनि	१४	१४	अश्वि	०९	४५	प्रीति	२३	५९	बव	१४	१०	०६ ०५	१८ ४७	मेष	००	०३	४७	18	नवीन चन्द्रदर्शन,
०२	रवि	१०	५२	भरणी कृतिका	०७ २८	१३ ३८	आयु	२०	०४	कौल	१०	४९	०४	४७	वृ.१२।३४	००	०४	४६	19	श्री परशुराम जयंती, शुक्र वृष में १५।४६, रवियोग २८।३६ से
०३	सोम	०७	३०	रोहिणी	२६	११	सौभा	१६	१४	गर	०७	२८	०३	४८	वृषभ	००	०५	४४	20	भ. १७।५० से २८।१५ तक, श्री अक्षय तृतीया, श्री विनायक चतुर्थी व्रत
०४	सोम	२८	१८	००	००	००	००	००	००	०	००	००	००	००	००	००	००	००	00	चतुर्थी का क्षय
०५	मंगल	२५	२३	मृग	२४	०१	शोभ	१२	३४	बव	१४	४५	०२	४८	मि.१३।०३	००	०६	४३	21	श्री आद्य शंकराचार्य जयंती, श्री सूरदास जयंती, रवियोग २३।५९ से
०६	बुध	२२	५२	आर्द्रा	२२	१६	अति	०९	११	कौल	१२	०२	०१	४९	मिथुन	००	०७	४१	22	श्री रामानुजाचार्य जयंती, बुध रेवती में १३।३६, रवियोग २२।१३ तक
०७	गुरु	२०	५२	पुनर्वसु	२१	००	सुकर्मा धृति	०६ २७	१० ३५	गर	०९	४६	०१	४९	क.१५।१६	००	०८	४०	23	भ. २०।४९से, श्री गंगोत्पत्ति (श्री गंगा सप्तमी), मंगल रेवती में २६।२२
०८	शुक्र	१९	२५	पुष्य	२०	१७	शूल	२५	२७	विष्टि	०८	०१	००	४९	कर्क	००	०९	३८	24	भ. ०८।०१ तक, दुर्गाष्टमी, श्री बगुलामुखी जयंती, रवियोग २०।१५ से
०९	शनि	१८	३१	आश्ले	२०	०७	गण्ड	२३	४६	बाल	०६	५१	०५ ५९	५०	सिं.२०।०७	००	१०	३७	25	मातृलक्ष्मी ९, श्री सीतानवमी (श्री जानकी जयंती)
१०	रवि	१८	१०	मघा	२०	३०	वृद्धि	२२	३०	तैति	०३	१४	५८	५०	सिंह	००	११	३५	26	रवियोग २०।१७ तक
११	सोम	१८	१९	पू०फा	२१	२१	ध्रुव	२१	३८	विष्टि	१८	१६	५७	५१	क.२७।३८	००	१२	३४	27	भ. ०६।०७ से १८।१६ तक, मोहिनी एकादशीव्रत (गोमूत्र), सूर्य भरणी में
१२	मंगल	१८	५५	उ०फा	२२	२९	व्याघ	२१	०७	बाल	१८	५१	५७	५१	कन्या	००	१३	३२	28	भौमप्रदोष व्रत, श्री रूकमणि द्वादशी
१३	बुध	१९	५४	हस्त	२४	१९	हर्षण	२०	५४	कौल	०७	१९	५६	५२	कन्या	००	१४	३०	29	सर्वार्थसिद्धि ५।५९ से २४।१६तक, रवियोग २४।१७ से
१४	गुरु	२१	१५	चित्रा	२६	१९	वज्र	२०	५७	गर	०८	३०	५५	५२	तु.१३।१७	००	१५	२९	30	भ. २१।१३ से श्रीनृसिंह जयंती, छिन्नमस्ता माता जयंती, बुध अश्विमेष में
१५	शुक्र	२२	५६	स्वाति	२८	३८	सिद्धि	२१	१६	विष्टि	१०	०१	५५	५२	तुला	००	१६	२७	01	भ. १०।०१ तक, श्री सत्यव्रत वैशाखी पूर्णिमा व्रत, श्री कूर्मजयंती

दि.२७/०४/२०२६ स्टे.टा. ०५/३०

सू	चं	मं	बु	गु	शु	श	रा
००	०४	११	११	०२	०१	११	१०
१२	१८	१९	२४	२४	०९	१४	११
३१	१२	०४	३०	०८	१२	२७	४७
५४	५६	३४	५६	४७	५६	५४	४६
५८	६७६	४६	९५	०८	७२	०६	०३
२१	३१	१२	५५	०३	४६	५६	११
अश्वि	पूफा	रेतवी	रेतवी	पून२	कृतीका	उभा४	शत२
-	-	मा	मा	मा	मा	मा	व

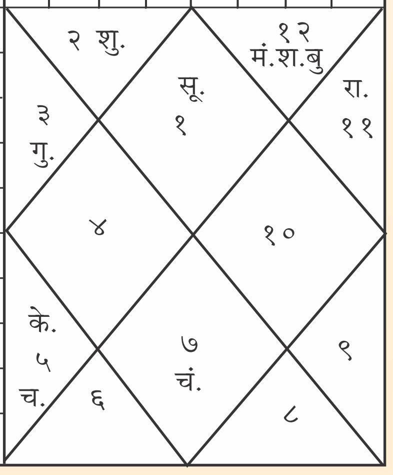

श्री विक्रम शुभ सम्वत् २०८३ शके १९४८ प्रथम (शुद्ध) ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष

दि.०२ से १६ मई २०२६ तक

उत्तरायण **ग्रीष्म ऋतु**

तिथि	वार	समाप्ति घं.	मि.	नक्षत्र	समाप्ति घं.	मि.	योग	समाप्ति घं.	मि.	करण	समाप्ति घं.	मि.	सू.उ. घ.मि.	सू.अ. घ.मि.	चन्द्रराशि प्रवेश	सूर्य स्पष्ट स्टे.टा ५/३०			मई	यहाँ पर दिया गया, सभी समय, भा.स्टे.स्टा.में है जो सम्पूर्ण भारत में समान रूप से ग्राहय रहेगा ।
०१	शनि	२४	५३	विशाख	दि	रा	व्यति	२१	४७	बाल	११	४९	०५ ५४	१८ ५३	वृश्चि.२४।३२	००	१७	२५	02	-
०२	रवि	२७	०५	विशा	०७	१२	वरिय	२२	३०	तैति	१३	५४	५३	५३	वृश्चिक	००	१८	२३	03	श्री नारद जयंती,
०३	सोम	२९	२७	अनु	१०	००	परिघ	२३	२२	वणि	१६	१२	५३	५४	वृश्चिक	००	१९	२१	04	भ.१६।१२ से २९।२५ तक, सर्वार्थसिद्धि ०५।५६ से ०९।५७ तक
०४	मंगल	दि	रा	ज्येष्ठ	१२	५७	शिव	२४	१९	बव	१८	३८	५२	५४	धनु १२।५७	००	२०	२०	05	अंगारक संकष्ट चतुर्थी व्रत, चन्द्रोदय २२।२०
०४	बुध	०७	५४	मूल	१५	५६	सिद्ध	२५	१४	बाल	०७	५१	५१	५५	धनु	००	२१	१८	06	बुध भरणी में २७।५८
०५	गुरु	१०	१७	पू०षा	१८	४८	साध्य	२६	०२	तैति	१०	१३	५१	५५	म.२५।२९	००	२२	१६	07	रवियोग १८।४७ से
०६	शुक्र	१२	२५	उ०षा	२१	२२	शुभ	२६	३२	वणि	१२	२१	५०	५६	मकर	००	२३	१४	08	भ. १२।२१ से २५।१६ तक, शुक्र मृग में २१।४७, स.सि. २१।२१
०७	शनि	१४	०६	श्रवण	२३	२७	शुक्ल	२६	३८	बव	१४	०३	५०	५६	मकर	००	२४	१२	09	कालाष्टमी, सर्वार्थसिद्धि २३।२५ तक, महापात दोष १८।५४ से २३।५२ तक
०८	रवि	१५	०९	धनि	२४	५२	ब्रह्म	२६	११	कौल	१५	०७	४९	५६	कु.१२।१५	००	२५	१०	10	पंचक प्रा. १२।१३ से
०९	सोम	१५	२७	शत	२५	३१	ऐन्द्र	२५	०७	गर	१५	२५	४९	५७	कुम्भ	००	२६	०८	11	भ. २७।१५ से, सूर्य कृतिका में १९।३०, मंगल अश्विमेष में १२।३९
१०	मंगल	१४	५५	पू०भा	२५	२०	वैधृति	२३	२२	विष्टि	१४	५३	४८	५७	मी.१९।२७	००	२७	०६	12	भ.१४।५३तक, सर्वार्थसिद्धि २५।१८ से २९।५० तक
११	बुध	१३	३३	उ०भा	२४	२०	विष्कु	२०	५७	बाल	१३	३०	४८	५८	मीन	००	२८	०४	13	अपरा एकादशीव्रत, (खरबुजा, ककडी), बुध कृतिका में ११/४५
१२	गुरु	११	२३	रेवती	२२	३६	प्रीति	१७	५६	तैति	११	२०	४७	५८	मे.२२।३६	००	२९	०२	14	प्रदोष व्रत, पंचक स. २२।३४ पर, शुक्र मिथुन में १०।५४
१३	शुक्र	०८	३४	अश्वि	२०	१७	आयु	१४	२४	वणि	०८	३१	४७	५९	मेष	०१	००	००	15	भ. ०८।३१ से १८।५५ तक, शिवरात्रि व्रत, सूर्य वृष में ६।२१
१४	शुक्र	२९	१४	००	००	००	००	००	००	०	००	००	००	००	००	००	००	००	00	चतुर्दशी का क्षय
३०	शनि	२५	३३	भरणी	१७	३३	सौभा	१०	२८	चतु	१५	२३	४६	५९	वृष२२।४९	०१	००	५८	16	श्री शनैश्चरी अमावस्या पुण्य, श्री शनि जयंती, वटसावित्रीव्रत (अमा. पक्ष)

दि.११/०५/२०२६ स्टे.टा. ०५/३०

सू	चं	मं	बु	गु	शु	श	रा
००	१०	११	००	०२	०१	१०	१०
२६	०९	२९	२१	५६	२६	१६	११
०६	०९	४६	४८	१०	०७	००	०३
०७	२९	२७	२९	३४	४६	४१	१६
५७	७२३	४५	१२८	०९	७२	०६	०३
५९	४४	३०	२४	३६	०८	१७	११
भरणी	शत	रेवती	भरणी	पून२	मृग	उभा४	शत२
-	-	मा	मा	मा	मा	मा	व

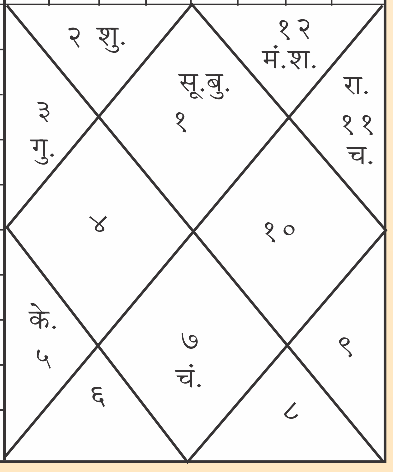

विक्रम पचांग

विक्रम सम्वत् 2083

‘रौद्र’ नाम सम्वत्सर | • कलि सम्वत् 5127 • सृष्टि आरंभ 1955885127 | • राजा- बृहस्पति • मंत्री - मंगल

17 मई से 31 मई 2026

ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष (ग्रीष्म ऋतु)

01 जून से 15 जून 2026

ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष (ग्रीष्म ऋतु)

17 प्रतिपदा मई अधिमास प्रारंभ	24 अष्टमी मई	31 पूर्णिमा मई पूर्णिमा व्रत	**रविवार**		07 सप्तमी जून	14 चतुर्दशी जून
18 द्वितीया मई	25 नवमी मई		**सोमवार**	01 प्रतिपदा जून	08 अष्टमी जून	15 अमावस्या जून सोमवती अमावस्या
19 तृतीया मई	26 दशमी मई गंगा दशमी		**मंगलवार**	02 द्वितीया जून	09 नवमी जून	
20 चतुर्थी मई	27 एकादशी मई ईदुज्ज़ुहा पुरूषोत्तम एकादशी		**बुधवार**	03 तृतीया जून गणेश चतुर्थी व्रत	10 दशमी जून	
21 पंचमी मई	28 द्वादशी मई प्रदोष व्रत		**गुरुवार**	04 चतुर्थी जून	11 एकादशी जून कमला एकादशी	
22 षष्ठी मई	29 त्रयोदशी मई		**शुक्रवार**	05 पंचमी जून	12 द्वादशी जून प्रदोष व्रत	
23 सप्तमी मई	30 चतुर्दशी मई		**शनिवार**	06 षष्ठी जून	13 त्रयोदशी जून शिव चतुर्दशी व्रत	

महाकाल शिव

कालकालाय नमः शिवाय, महाकालाय नमः शिवाय। कालातीताय नमः शिवाय, कालस्वरूपाय नमः शिवाय ॥

“जो स्वयं काल का भी काल हैं,उन शिव को नमस्कार है। जो महाकाल हैं, जिनके अधीन समस्त समय चलता है उन शिव को नमस्कार है।
जो काल से परे, जन्म-मृत्यु के बंधन से मुक्त हैं,उन शिव को नमस्कार है।”

शिव सृष्टि के विनाशक या पुनर्व्यवस्थापक हैं। वे जीवन-मृत्यु के चक्र के सर्वोच्च स्वामी हैं। सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति एवं संहार के अधिपति शिव हैं। त्रिदेवों में भगवान शिव संहार के देवता माने गए हैं। शिव अनादि तथा सृष्टि प्रक्रिया के आदि स्रोत हैं और यह काल महाकाल ही ज्योतिषशास्त्र के आधार हैं। भारतीय पौराणिक चिंतन में काल केवल समय की गणना नहीं है, वह एक सक्रिय शक्ति है सृजन को गति देने वाली, स्थितियों को बदलने वाली और अंततः सबको लय में ले जाने वाली। इस काल-तत्त्व के साथ जिस देवता का संबंध सबसे गहन, सबसे व्यापक और सबसे रहस्यमय रूप में प्रकट होता है, वे हैं शिव जिन्हें पुराणों ने महाकाल कहा है। महाकाल का अर्थ केवल “महान काल” नहीं, बल्कि “काल का भी अधीश्वर” है। यह अवधारणा शिव को केवल संहारक नहीं, बल्कि समय के नियमों से परे स्थित परम सत्ता के रूप में प्रतिष्ठित करती है। पुराणों में सृष्टि की कल्पना करते समय ब्रह्मा को सृजनकर्ता, विष्णु को पालनकर्ता और शिव को संहारकर्ता कहा गया, पर यह त्रिदेव-सूत्र तभी पूर्ण होता है जब काल को केंद्र में रखा जाए। ब्रह्मा का सृजन काल में होता है, विष्णु का पालन काल की धारा में चलता है, और शिव का संहार काल की सीमाओं को तोड़ता है। लिंग पुराण और वायु पुराण में संकेत मिलता है कि जब सृष्टि का चक्र समाप्त होता है और प्रलय आता है, तब काल स्वयं शिव में लीन हो जाता है। अर्थात् शिव केवल प्रलय के कर्ता नहीं, प्रलय के आश्रय भी हैं।

शिव पुराण में एक प्रसंग आता है जहाँ देवताओं और असुरों के बीच काल की शक्ति को लेकर संघर्ष का वर्णन है। काल, जो सबको ग्रस लेता है, स्वयं भी भय का कारण बनता है। उसी संदर्भ में शिव महाकाल रूप में प्रकट होकर काल को अपने अधीन कर लेते हैं। यहाँ महाकाल का स्वरूप अत्यंत प्रतीकात्मक है—यह बताता है कि समय चाहे कितना भी प्रचंड हो, चेतना उससे ऊपर है। शिव उसी चेतना के मूर्त रूप हैं। काशी-खंड, जो स्कंद पुराण का महत्वपूर्ण अंश है, शिव और काल के संबंध को अत्यंत सूक्ष्म ढंग से प्रस्तुत करता है। काशी को “अविमुक्त क्षेत्र” कहा गया है—ऐसा स्थान जहाँ शिव स्वयं निवास करते हैं और जहाँ काल का प्रभाव शिथिल पड़ जाता है। कहा गया है कि काशी में मृत्यु भी मुक्ति का कारण बनती है, क्योंकि वहाँ महाकाल की अनुकंपा से जीव को तारक मंत्र प्राप्त होता है। यह मान्यता इस विचार को पुष्ट करती है कि शिव न केवल जीवन के स्वामी हैं, बल्कि मृत्यु और काल की अंतिम सीमा के भी नियंत्रक हैं। इसी काशी-परंपरा में कालभैरव का महत्व सामने आता है। स्कंद पुराण के अनुसार कालभैरव शिव का वह उग्र रूप हैं जो समय की मर्यादा के रक्षक हैं। काशी में कालभैरव को “क्षेत्रपाल” कहा गया है—अर्थात् वे यह निर्धारित करते हैं कि कौन काल की सीमा पार करने योग्य है और कौन नहीं। यहाँ कालभैरव का “काल” से जुड़ा नाम संयोग नहीं है; वे उस समय-तत्त्व का प्रतिनिधित्व करते हैं जो अनुशासन, भय और मर्यादा के माध्यम से मुक्ति की राह बनाता है।

मार्कण्डेय पुराण में काल की महिमा और भय दोनों का वर्णन मिलता है। वही पुराण महर्षि मार्कण्डेय की कथा भी कहता है, जिन्हें बाल्यावस्था में मृत्यु का सामना करना पड़ा। यम जब उन्हें लेने आते हैं, तब बालक मार्कण्डेय शिवलिंग से लिपट जाते हैं। शिव प्रकट होते हैं और यम को रोकते हैं। इस कथा में शिव काल-मृत्यु के नियम को तोड़ते हैं। यह प्रसंग केवल भक्ति-कथा नहीं, बल्कि एक गहरी दार्शनिक घोषणा है कि शिव की शरण में गया जीव काल के बंधन से मुक्त हो सकता है। लिंग पुराण में शिव को “अनादि” और “अनंत” कहा गया है। अनादि जिसका कोई आरंभ नहीं; अनंत जिसका कोई अंत नहीं। ये दोनों विशेषण काल के विरोधी प्रतीत होते हैं, क्योंकि काल आरंभ और अंत से ही परिभाषित होता है। जब शिव को अनादि-अनंत कहा जाता है, तब यह स्पष्ट हो जाता है कि वे काल की धुरी से बाहर स्थित हैं। काल उनके लिए एक उपकरण है, बाधा नहीं। नटराज की मूर्ति इस पौराणिक काल-दर्शन की मूर्त अभिव्यक्ति है। अपस्मार नामक बौने को पैरों तले दबाए नटराज शिव यह दर्शाते हैं कि अज्ञान और जड़ता जो काल के चक्र में जीव को बाँधती है। उस पर शिव का नियंत्रण है। उनका तांडव काल का नृत्य है, जिसमें सृष्टि का उदय भी है और लय भी। शिव पुराण में वर्णित तांडव केवल विनाश नहीं, बल्कि नवीनीकरण की प्रक्रिया है। काल यहाँ विनाशकारी नहीं, रूपांतरकारी बन जाता है। वायु पुराण और मत्स्य पुराण में कल्प और महाप्रलय का वर्णन करते समय शिव को उस अवस्था में दिखाया गया है जहाँ न दिन है, न रात; न भूत है, न भविष्य। यह अवस्था “महाशून्य” की है, जहाँ केवल शिव की सत्ता विद्यमान रहती है। इस प्रसंग में काल स्वयं लुप्त हो जाता है। यही कारण है कि शिव को “महाकाल” कहा गया वे उस बिंदु पर खड़े हैं जहाँ समय समाप्त हो जाता है।

उज्जयिनी (उज्जैन) में स्थित महाकालेश्वर ज्योतिर्लिंग की परंपरा भी इसी पौराणिक विचार को सजीव करती है। कहा जाता है कि यह ज्योतिर्लिंग दक्षिणमुखी है, जो सामान्य शिवलिंगों से भिन्न है। पुराणों में दक्षिण दिशा को यम और काल से जोड़ा गया है। दक्षिणमुखी महाकाल यह संकेत देते हैं कि शिव स्वयं काल और मृत्यु की दिशा को नियंत्रित करते हैं। स्कंद पुराण के अवंतिका-खंड में महाकालेश्वर की महिमा का विस्तार से वर्णन है, जहाँ शिव को नगर और समय दोनों का रक्षक कहा गया है। भविष्य पुराण में एक सूक्ष्म विचार आता है कि युगों के परिवर्तन के साथ देवताओं के स्वरूप भी बदले, पर शिव का महाकाल स्वरूप अपरिवर्तित रहा। सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग चारों में शिव का स्वरूप भिन्न-भिन्न कथाओं में प्रकट होता है, पर काल से उनका अधिपत्य बना रहता है। कलियुग में विशेष रूप से शिव को आश्रयदाता कहा गया है, क्योंकि जब धर्म क्षीण होता है और काल का दबाव बढ़ता है, तब शिव की शरण ही मुक्ति का सरल मार्ग बनती है। अग्नि पुराण में शिव को “कालात्मा” कहा गया है,अर्थात् जिनकी आत्मा ही काल है। पर यही पुराण उन्हें “कालातीत” भी कहता है। यह द्वंद्व भारतीय दर्शन की विशेषता है। शिव काल भी हैं और काल से परे भी।

श्री विक्रम शुभ सम्वत् २०८३ शके १९४८ प्रथम (अधिक) ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष

दि.१७ से ३१ मई २०२६ तक

उत्तरायण **ग्रीष्म ऋतु**

तिथि	वार	समाप्ति		नक्षत्र	समाप्ति		योग	समाप्ति		करण	समाप्ति		सू.उ. घ.मि.	सू.अ. घ.मि.	चन्द्रराशि प्रवेश	सूर्य स्पष्ट स्टे.टा ५/३०			मई	यहाँ पर दिया गया, सभी समय, भा.स्टे.स्टा.में है जो सम्पूर्ण भारत में समान रूप से ग्राहय रहेगा ।
		घं.	मि.		घं.	मि.		घं.	मि.		घं.	मि.								
०१	रवि	२१	४४	कृति	१४	३५	शोभन अति	०६ २६	१८ ०२	किंस्तु	११	३६	०५ ४६	१९ ००	वृषभ	०१	०१	५५	17	श्री पुरूषोत्तम (अधिक मास प्रारंभ), शनि रेवती १ में १४।३६
०२	सोम	१७	५६	रोहिणी	११	३५	सुक	२१	५०	बाल	०७	४६	४५	००	मिथु२२।०७	०१	०२	५३	18	चन्द्रदर्शन,सर्वार्थसिद्धि ५।४९ से ११।३२ तक बाद में अमृतसिद्धि २९।४७ तक
०३	मंगल	१४	२१	मृग	०८	४४	धृति	१७	५१	गर	१४	१८	४५	००	मिथुन	०१	०३	५१	19	भ. २४।३९ से, बुध रोहि. में १४।३५, शुक्र आर्दा में २४।३२, रवियोग ८।४२ से
०४	बुध	११	१०	आर्द्रा पुनर्वसु	०६ २८	१४ १५	शूल	१४	१२	विष्टि	११	०७	४४	०१	कर्क२२।३९	०१	०४	४९	20	भ.११/०७तक, श्री विनायक चतुर्थी व्रत,रवियोग ६।१२तक बाद में २८।१३ से
०५	गुरु	०८	२९	षुष्य	२६	५२	गण्ड	११	०१	बाल	०८	२६	४४	०२	कर्क	०१	०५	४७	21	गुरूपुष्य ५।४७ से २६।४८तक, रवियोग २६।४८तक, सायन मिथुन में
०६	शुक्र	०६	२७	आश्ले	२६	११	वृद्धि	०८	२१	तैति	०६	२५	४४	०२	सिं.२६।११	०१	०६	४४	22	भ. २९।०४ से
०७	शुक्र	२९	०७	००	००	००	००	००	००	००	००	००	४३	०३	००	००	००	००	00	सप्तमी का क्षय
०८	शनि	२८	३०	मघा	२६	१२	धुव व्याघ	०६ २८	१६ ४५	विष्टि	१६	४१	४३	०३	सिंह	०१	०७	४२	23	भ. १६।४१ तक, श्री दुर्गाष्टमी, रवियोग २६।१० से
०९	रवि	२८	३४	पू०फा	२६	५३	हर्षण	२७	४७	बाल	१६	२४	४३	०३	सिंह	०१	०८	४०	24	सर्वार्थसिद्धि २६।५२ से २९।४५ तक
१०	सोम	२९	१४	उ०फा	२८	११	वज्र	२७	१८	तैति	१६	४६	४३	०४	क.०९।१०	०१	०९	३७	25	श्री गंगादशहरा (गंगादशमी), सूर्य रोहिणी में १५।३७ नवतपा प्रा.
१०	मंगल	दि	रा	हस्त	दि	रा	सिद्धि	२७	१३	वणि	१७	४३	४२	०४	कन्या	०१	१०	३५	26	भ. १७।४३ से, बुधोदय पश्चिम में १९।०७
११	बुध	०६	२५	हस्त	०५	५९	व्यति	२७	२७	विष्टि	०६	२२	४२	०४	तु.१९।०२	०१	११	३३	27	भ. १६।२२तक, पुरूषोत्तमां एकादशीव्रत (मिश्री), सर्वार्थसिद्धि ५४६ से
१२	गुरु	०८	००	चित्रा	०८	११	वरिय	२७	५७	बाल	०७	५७	४२	०५	तुला	०१	१२	३०	28	प्रदोष व्रत
१३	शुक्र	०९	५४	स्वाति	१०	४०	परिघ	२८	३८	तैति	०९	५१	४२	०५	तुला	०१	१३	२८	29	बुध मिथुन में ११।१५ मंगल भर. में ६।२६, रवियोग १०।३९ से
१४	शनि	१२	०१	विशा	१३	२३	शिव	२९	२७	वणि	११	५८	४२	०६	वृशि.०६।४१	०१	१४	२५	30	भ.११।५८ से २५।०५ तक, श्री सत्यव्रत, रवियोग १३।२० तक
१५	रवि	१४	१८	अनु	१६	१४	शिव	दि	रा	बव	१४	१४	४२	०६	वृश्चिक	०१	१५	२३	31	पूर्णिमा व्रत, शुक्र पुन. में ५।४७, राहु शत.१, केतु मघा ८ में ०८।०४

दि.२५/०५/२०२६ स्टे.टा. ०५/३०

सू	चं	मं	बु	गु	शु	श	रा
०१	०४	००	०१	०२	०२	११	१०
०९	२८	१०	२१	२८	१२	१७	१०
३५	०४	१९	४८	३३	५२	२३	१८
४२	२८	२२	३६	०३	२३	५५	४७
५७	७५७	४४	११९	१०	७१	०५	०३
३८	४०	४९	५४	१२	२०	३०	११
कृति	पूफा	अश्वि	रोहिणी	पून३	आद्रा	रेवती	शत२
-	-	मा	मा	मा	मा	मा	व

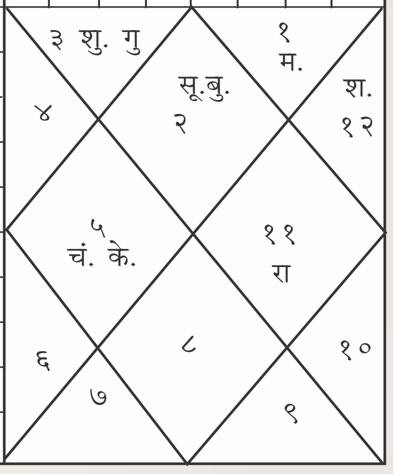

श्री विक्रम शुभ सम्वत् २०८३ शके १९४८ द्वितीय (अधिक) ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष

दि.०१ से १५ जून २०२६ तक

उत्तरायण **ग्रीष्म ऋतु**

तिथि	वार	समाप्ति		नक्षत्र	समाप्ति		योग	समाप्ति		करण	समाप्ति		सू.उ. घ.मि.	सू.अ. घ.मि.	चन्द्रराशि प्रवेश	सूर्य स्पष्ट स्टे.टा ५/३०			जून	यहाँ पर दिया गया, सभी समय, भा.स्टे.स्टा.में है जो सम्पूर्ण भारत में समान रूप से ग्राहय रहेगा ।
		घं.	मि.		घं.	मि.		घं.	मि.		घं.	मि.								
०१	सोम	१६	४०	ज्येष्ठ	१९	११	सिद्ध	०६	२१	कौल	१६	३६	०५ ४२	१९ ०७	धनु १९।११	०१	१६	२०	01	गुरू पुन.४ कर्क में २५।५०, जून मा. प्रारंभ
०२	मंगल	१९	०४	मूल	२२	०९	साध्य	०७	१८	गर	१९	०१	४१	०७	धनु	०१	१७	१८	02	बुध आर्द्रा में ०६।१२
०३	बुध	२१	२४	पू०षा	२५	०२	शुभ	०८	१५	वणि	०८	१२	४१	०७	म.०७।४४	०१	१८	१५	03	भ. ०८।१२ से २१।२१ तक, श्री संकष्टचतुर्थी व्रत, चन्द्रोदय २१।५१
०४	गुरु	२३	३३	उ०षा	२७	४४	शुक्ल	०९	०५	बव	१०	२९	४१	०७	मकर	०१	१९	१३	04	महापात दोष १८।१० से २४।५५ तक
०५	शुक्र	२५	२३	श्रवण	दि	रा	ब्रह्म	०९	४५	कौल	१२	२९	४१	०८	कु.१९।०६	०१	२०	१०	05	सर्वार्थसिद्धि ५।४५ से
०६	शनि	२६	४४	श्रवण	०६	०६	ऐन्द्र	१०	०७	गर	१४	०५	४१	०८	कुम्भ	०१	२१	०८	06	भ. २६।४१ से, पचंक प्रा. १९।४ से सर्वार्थसिद्धि ६।३ तक, रवियोग ६।४ से
०७	रवि	२७	२७	धनि	०७	५८	वैधृति	१०	०४	विष्टि	१५	०८	४१	०९	मी.२७।३९	०१	२२	०५	07	भ. १५।०८ तक, रवियोग ७।५६ तक
०८	सोम	२७	२७	शत	०९	१२	विष्कु	०९	३०	बाल	१५	३०	४१	०९	मीन	०१	२३	०२	08	कालाष्टमी, सूर्य मृगशीर्ष मे १३।३३ वाहन मण्डूक वर्षा मध्यम,
०९	मंगल	२६	३८	पू०भा	०९	४२	प्रीति	०८	२१	तैति	१५	०६	४१	०९	मीन	०१	२४	००	09	सर्वार्थसिद्धि ०९।४० से २९।४४ तक
१०	बुध	२५	०१	उ०भा	०९	२४	आयु सौभाग्य	०६ २८	३३ ०५	वणि	१३	५२	४१	१०	मे.०९।१९	०१	२४	५७	10	भ. १३।५२ से २४।५८ तक
११	गुरु	२२	३९	रेवती	०८	१९	शोभन	२५	०२	बव	११	५२	४१	१०	मेष	०१	२५	५५	11	कमला एकादशी (दाख), पंचक स. ८।१६ पर, सर्वार्थसिद्धि ५।४५ से
१२	शुक्र	१९	३९	अश्विनी भरणी	०६ २८	३१ ०८	अति	२१	२८	कौल	०९	११	४१	१०	वृ.०९।२८	०१	२६	५२	12	प्रदोष व्रत, सर्वार्थसिद्धि ६।२९ तक
१३	शनि	१६	१०	कृति	२५	३१	सुकर्मा	१७	३१	वणि	१६	०८	४१	११	वृषभ	०१	२७	४९	13	भ.१६।०८ से २६।१६ तक, शिवरात्रि व्रत
१४	रवि	१२	२२	रोहिणी	२२	०८	धृति	१३	१८	शकु	१२	२०	४१	११	मि.०८।४३	०१	२८	४७	14	पितृ अमावस्या
३०	सोम	०८	२७	मृग	१९	१९	शूल गण्ड	०८ २८	५८ ४२	नाग	०८	२४	४२	१२	मिथुन	०१	२९	४४	15	सोमवती अमावस्या पुरूषोत्तम (अधिक मास पूर्ण) सूर्य मिथुन में १२।५२

दि.०८/०६/२०२६ स्टे.टा. ०५/३०

सू	चं	मं	बु	गु	शु	श	रा
०१	१०	००	०२	०३	०२	११	१०
२३	१८	२०	१५	०१	२९	१८	०९
००	०२	४१	४७	११	२४	३४	३४
५०	३४	५५	१४	१७	१२	४३	१७
५७	७७९	४४	८१	११	७०	०४	०३
२४	५५	०५	२०	४७	१८	३०	११
रोहि	शत	भरणी	आद्रा	पून४	पुन	रेवती	शत१
-	-	मा	मा	मा	मा	मा	व

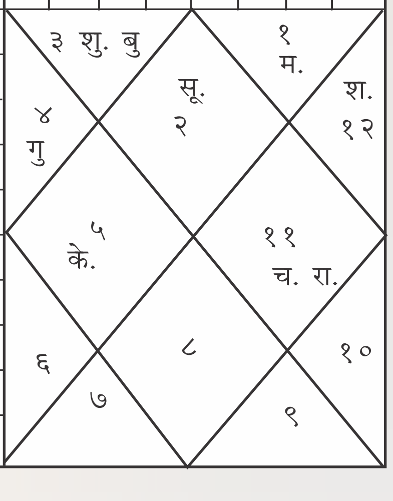

विक्रम पचांग

विक्रम सम्वत् 2083

‘रौद्र’ नाम सम्वत्सर ● कलि सम्वत् 5127 ● सृष्टि आरंभ 1955885127 ● राजा- बृहस्पति ● मंत्री - मंगल

16 जून से 29 जून 2026

ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष (वर्षा ऋतु)

30 जून से 14 जुलाई 2026

आषाढ़ कृष्ण पक्ष (वर्षा ऋतु)

	21 जून सप्तमी अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस	28 जून चतुर्दशी	**रविवार**		05 जुलाई पंचमी	12 जुलाई त्रयोदशी प्रदोष व्रत
	22 जून अष्टमी	29 जून पूर्णिमा वट सावित्री व्रत पूर्णिमा	**सोमवार**		06 जुलाई षष्ठी पं. श्याम प्रसाद मुखर्जी जयंती	13 जुलाई चतुर्दशी
16 जून प्रतिपदा द्वितीया	23 जून नवमी		**मंगलवार**	30 जून प्रतिपदा	07 जुलाई सप्तमी	14 जुलाई अमावस्या अमावस्या
17 जून तृतीया महाराणा प्रताप जयंती छत्रसाल जयंती	24 जून दशमी		**बुधवार**	01 जुलाई प्रतिपदा	08 जुलाई अष्टमी	
18 जून चतुर्थी झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई बलिदान दिवस	25 जून एकादशी निर्जला एकादशी व्रत		**गुरुवार**	02 जुलाई द्वितीया	09 जुलाई नवमी दशमी	
19 जून पंचमी	26 जून द्वादशी मोहर्रम		**शुक्रवार**	03 जुलाई तृतीया	10 जुलाई एकादशी योगिनी एकादशी व्रत	
20 जून षष्ठी	27 जून त्रयोदशी प्रदोष व्रत		**शनिवार**	04 जुलाई चतुर्थी	11 जुलाई द्वादशी	

शक्ति और काल : देवी के स्वरूप में समय का रहस्य

कालस्य कारणं देवि, कालातीतस्वरूपिणि। सृष्टिस्थित्यन्तकर्त्री त्वं, त्वमेव परमा गतिः।।

"हे देवी, तुम ही काल की कारण हो और तुम ही काल से परे स्थित स्वरूप हो। सृष्टि, स्थिति और संहार। तीनों की कर्त्री तुम ही हो और अंततः वही परम गति भी तुम हो।"

इस श्लोक के साथ देवी और काल के संबंध का एक अत्यंत अर्थपूर्ण प्रसंग स्मरण में आता है। कथा यह कहती है कि जब सृष्टि अपने एक चक्र के अंत की ओर बढ़ रही थी, तब काल स्वयं अपने स्वरूप को लेकर गर्व से भर गया। उसे लगा कि वही सर्वोच्च है, वही सबको ग्रस करने वाला है। उसी क्षण देवी प्रकट हुईं न किसी आयुध के साथ, न किसी आक्रामक मुद्रा में। केवल शांत, किंतु सर्वव्यापी चेतना के रूप में। देवी ने काल से पूछा कि वह किसके सहारे चलता है। काल मौन हो गया, क्योंकि उसे पहली बार बोध हुआ कि उसका अस्तित्व भी एक ऐसी शक्ति पर टिका है जो उससे परे है। तभी देवी ने कहा "मैं ही वह शक्ति हूँ जो तुम्हें गति देती है और जब चाहूँ, तुम्हें भी विश्राम दे सकती हूँ।" यह प्रसंग केवल एक कथा नहीं, बल्कि यह संकेत है कि काल भी स्वतंत्र सत्ता नहीं, बल्कि देवी की चेतना का एक प्रवाह है। यहीं से यह समझ गहरी होती जाती है कि देवी और काल का संबंध केवल नियंत्रण का नहीं, बल्कि उत्पत्ति और लय का है। देवी वह आद्यशक्ति हैं जिनसे काल का जन्म होता है और जिनमें काल अंततः विलीन हो जाता है। भारतीय दर्शन में काल को भय का कारण माना गया, क्योंकि वह परिवर्तन लाता है, मृत्यु लाता है, अनिश्चितता लाता है। किंतु देवी उसी काल को अर्थ देती हैं। वे बताती हैं कि परिवर्तन ही जीवन है और अंत ही नए आरंभ का द्वार है।

देवी और काल के संबंध को लेकर भारतीय पुराण परंपरा में अनेक गहन और अर्थपूर्ण आख्यान मिलते हैं, जो यह स्पष्ट करते हैं कि काल केवल एक स्वतंत्र सत्ता नहीं, बल्कि देवी की शक्ति से संचालित एक आयाम है। देवीमाहात्म्य, जो मार्कण्डेय पुराण का ही अंग है, इस विषय का सबसे सशक्त ग्रंथ माना जाता है। इसमें देवी को बार-बार महाकाली, महामाया और महाशक्ति के रूप में संबोधित किया गया है। यहाँ देवी स्वयं कहती हैं कि जब संसार में अधर्म बढ़ता है, तब वे कालरूप धारण कर प्रकट होती हैं। महाकाली का प्राकट्य उस समय होता है जब देवताओं के लिए भी समय प्रतिकूल हो जाता है। यह संकेत है कि जब काल असंतुलित हो जाता है, तब देवी उसी काल को अपना आयुध बनाकर धर्म की पुनः स्थापना करती हैं। इसी प्रकार लिंग पुराण और स्कंद पुराण में देवी और काल का संबंध शिव के माध्यम से और अधिक स्पष्ट होता है। शिव को महाकाल कहा गया है, किंतु शक्ति के बिना वे भी निष्क्रिय माने गए हैं। स्कंद पुराण के प्रसंगों में वर्णन आता है कि जब प्रलय का समय समीप होता है, तब देवी शक्ति ही शिव को कालसंहार के लिए प्रेरित करती हैं। यहाँ देवी केवल सहचरी नहीं, बल्कि उस काल-क्रिया की मूल प्रेरणा हैं।

कालिका पुराण में तो देवी को प्रत्यक्ष कालस्वरूप ही माना गया है। इसमें कहा गया है कि सृष्टि के आरंभ में देवी ने ही काल को उत्पन्न किया, ताकि सृष्टि में क्रम, गति और परिवर्तन संभव हो सके। इसी ग्रंथ में यह भी संकेत मिलता है कि प्रलय के समय काल देवी में ही विलीन हो जाता है। इन पौराणिक आख्यानों से स्पष्ट होता है कि देवी न केवल काल की अधिष्ठात्री हैं, बल्कि काल उनका ही एक प्रकट रूप है जो सृष्टि, स्थिति और संहार के चक्र को निरंतर गतिमान रखता है। जब काली का स्वरूप सामने आता है, तब यह दर्शन और अधिक तीखा हो जाता है। काली केवल विनाश नहीं हैं, वे उस क्षण का प्रतीक हैं जब काल अपने चरम पर पहुँचता है। उनका विकराल रूप वास्तव में मनुष्य के भीतर बैठे उस भय को तोड़ने के लिए है, जो समय और मृत्यु से जुड़ा हुआ है। काली यह सिखाती हैं कि काल से डरना अज्ञान है। जो काल को देख सकता है, उसे समझ सकता है, वही वास्तव में मुक्त होने की दिशा में बढ़ता है। इसीलिए तांत्रिक परंपरा में काली की उपासना काल-बोध की साधना मानी गई है। देवी और काल का यह संबंध केवल उग्र रूपों तक सीमित नहीं है। दुर्गा का स्वरूप काल के संतुलन का प्रतीक है। जब समय अराजक हो जाता है, जब अधर्म बढ़ने लगता है और जीवन का प्रवाह असंतुलित हो जाता है, तब देवी दुर्गा प्रकट होती हैं। महिषासुर का बार-बार रूप बदलना उस काल का संकेत है जो स्थिर नहीं है, जो अपनी मर्यादा खो चुका है। देवी दुर्गा उस काल को रोकती हैं, उसे एक सीमा में बांधती हैं और बताती हैं कि समय का भी धर्म होता है। जब काल धर्म से हटता है, तब वही विनाश का कारण बनता है।

नवरात्रि के नौ रूप वस्तुतः काल के नौ अनुभवों की तरह हैं। प्रारंभ में शैलपुत्री का स्थायित्व है, फिर ब्रह्मचारिणी की तपस्या है, फिर चंद्रघंटा का संघर्ष है, और अंत में कालरात्रि का अंधकार है। कालरात्रि का स्वरूप यह दिखाता है कि जीवन में ऐसा समय भी आता है जब सब कुछ टूटता हुआ लगता है। यह वह क्षण होता है जब मनुष्य सबसे अधिक भयभीत होता है। किंतु यही वह क्षण है जब देवी सबसे अधिक निकट होती हैं। कालरात्रि यह संदेश देती हैं कि अंधकार स्थायी नहीं है, वह केवल परिवर्तन की भूमिका है। चामुण्डा और अन्य उग्र देवियाँ यह बताती हैं कि काल केवल बहता हुआ समय नहीं, बल्कि निर्णय भी है। जब जीवन में अति हो जाती है। अति-अहंकार, अति-भोग, अति-हिंसा तब काल स्वयं संतुलन स्थापित करता है। देवी उस संतुलन की चेतना हैं। वे यह दिखाती हैं कि विनाश भी करुणा का ही एक रूप है, क्योंकि वह जड़ता को तोड़ता है। भारतीय दर्शन में देवी और काल का संबंध किसी एक ग्रंथ, कथा या परंपरा तक सीमित नहीं है, बल्कि यह चिंतन की एक ऐसी धारा है जो वेदों से लेकर पुराणों, तंत्र, लोकविश्वास और जनजीवन तक निरंतर प्रवाहित होती रही है। यहाँ काल को केवल समय की गणना या घड़ी की गति नहीं माना गया, बल्कि उसे एक जीवंत, सर्वव्यापी और अनिवार्य सत्ता के रूप में स्वीकार किया गया है। इसी काल को गति देने वाली, उसे चेतना प्रदान करने वाली और उसके भीतर अर्थ भरने वाली सत्ता देवी हैं। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि देवी केवल काल की अधिष्ठात्री नहीं हैं, बल्कि वे कालातीत भी हैं। युग बदलते हैं, सृष्टि का विस्तार और संकोच होता है, प्रलय आता है और नई सृष्टि जन्म लेती है, किंतु देवी चेतना के रूप में सदा विद्यमान रहती हैं। काल उनका एक रूप है, उनका एक आयाम है, किंतु वे उससे सीमित नहीं हैं। इसी कारण शाक्त परंपरा में कहा गया कि काल भी देवी का ही स्वरूप है।

श्री विक्रम शुभ सम्वत् २०८३ शके १९४८ द्वितीय (शुद्ध) ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष

दि.१६ से २९ जून २०२६ तक

उत्तरायण/दक्षिणायन **वर्षा ऋतु**

तिथि	वार	समाप्ति		नक्षत्र	समाप्ति		योग	समाप्ति		करण	समाप्ति		सू.उ. घ.मि.	सू.अ. घ.मि.	चन्द्रराशि प्रवेश	सूर्य स्पष्ट स्टे.टा ५/३०			जून	यहाँ पर दिया गया, सभी समय, भा.स्टे.स्टा.में है जो सम्पूर्ण भारत में समान रूप से ग्राहय रहेगा ।
		घं.	मि.		घं.	मि.		घं.	मि.		घं.	मि.								
०१	सोम	२८	३४	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	00	प्रतिपदा का क्षय
०२	मंगल	२४	५५	आर्द्रा	१६	१५	वृद्धि	२४	३७	बाल	१४	३९	०५ ४२	१९ १२	मिथुन	०२	००	४१	16	चन्द्रदर्शन, मंगल कृतिका में ९।३३
०३	बुध	२१	४२	पुनर्वसु	१३	४०	ध्रुव	२०	५३	तैति	११	१२	४२	१२	र्क.०८।१६	०२	०१	३९	17	रम्भा तृतीया, श्री महाराणा प्रताप जयंती, गुरू पुष्य १ में २१।०१
०४	गुरु	१८	५९	पुष्य	११	३५	व्याघ	१७	३८	वणि	०८	१४	४२	१३	कर्क	०२	०२	३६	18	भ. ०८।१४ से १८।५९ तक, श्री विनायक चतुर्थी व्रत, गुरू पुष्य योग
०५	शुक्र	१७	०३	आश्ले	१०	०९	हर्षण	१४	५६	बाल	१७	००	४२	१३	सि.१०।०९	०२	०३	३३	19	रवियोग १०।०७ से
०६	शनि	१५	५०	मघा	०९	२८	वज्र	१२	५१	तैति	१५	४७	४२	१३	सिंह	०२	०४	३१	20	अरण्य षष्ठी, विन्ध्यवासिनी पूजा, मंगल वृष में २४।००, रवियोग ९।२५ तक
०७	रवि	१५	२४	पू०फा	०९	३४	सिद्धि	११	२४	वणि	१५	२१	४३	१३	क.१५।४३	०२	०५	२८	21	भ. १५।२१, से २७।२५ तक, सर्वार्थसिद्धि ९।३२ से २९।४५ तक
०८	सोम	१५	४३	उ०फा	१०	२५	व्यति	१०	३३	बव	१५	३९	४३	१३	कन्या	०२	०६	२५	22	दुर्गा अष्टमी, सूर्य आर्द्रा में १२।२५ वाहन गर्दभ, वर्षा मध्यम, बुध कर्क में १५।५२
०९	मंगल	१६	४२	हस्त	११	५६	वरियि	१०	१६	कौल	१६	३९	४३	१४	तु.२४।५५	०२	०७	२२	23	श्री महेश नवमी, रवियोग ११।५५ से
१०	बुध	१८	१५	चित्रा	१४	०२	परिघ	१०	२५	गर	१८	१२	४३	१४	तुला	०२	०८	२०	24	श्री बटुकभैरव जयंती
११	गुरु	२०	१२	स्वाति	१६	३२	शिव	१०	५६	वणि	०७	०९	४३	१४	तुला	०२	०९	१७	25	भ. ०७।०९ से २०।१० तक, निर्जला एकादशी व्रत (आम), रवियोग १६।२९ तक
१२	शुक्र	२२	२५	विशा	१९	१८	सिद्ध	११	४१	बव	०९	१५	४४	१४	वृ.१२।३६	०२	१०	१४	26	महापात दोष ६।१८ से १३।४८ तक
१३	शनि	२४	४६	अनु	२२	१४	साध्य	१२	३५	कौल	११	३२	४४	१४	वृश्चिक	०२	११	११	27	शनि प्रदोष व्रत, रवियोग २२।११ से
१४	रवि	२७	०९	ज्येष्ठा	२५	११	शुभ	१३	३२	गर	१३	५५	४४	१४	ध.२५।११	०२	१२	०९	28	भ. २७।०७ से सर्वार्थसिद्धि २५१० से २९।४७ तक, रवियोग २५।९ तक
१५	सोम	२९	२९	मूल	२८	०६	शुक्ल	१४	२९	विष्टि	१६	१७	४५	१४	धनु	०२	१३	०६	29	भ.१६।१७ तक, सत्यव्रत, पूर्णिमा व्रत, वट सावित्री व्रत, श्री कबीरदास जयंती

दि.२१/०६/२०२६ स्टे.टा. ०५/३०

सू	चं	मं	बु	गु	शु	श	रा
०२	०८	०१	०३	०३	०३	११	१०
१३	०२	०५	०२	०५	२३	१९	०८
०४	०९	५४	००	३०	४१	५२	२७
०६	२३	१८	२५	१७	३१	०४	२९
५७	७१३	४२	०१	१२	६८	०२	०३
१२	३५	४८	०६	४८	१२	४२	११
आद्रा	मूल	कृति	पुन	पुष्य१	अश्ले	रेवती	शत१
-	-	मा	मा	मा	मा	मा	व

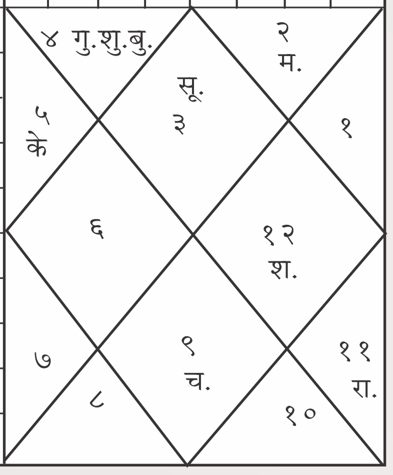

श्री विक्रम शुभ सम्वत् २०८३ शके १९४८ अषाढ कृष्ण पक्ष

दि.३० जून से १४ जुलाई २०२६ तक

दक्षिणायन **वर्षा ऋतु**

तिथि	वार	समाप्ति		नक्षत्र	समाप्ति		योग	समाप्ति		करण	समाप्ति		सू.उ. घ.मि.	सू.अ. घ.मि.	चन्द्रराशि प्रवेश	सूर्य स्पष्ट स्टे.टा ५/३०			जुन जुलाई	यहाँ पर दिया गया, सभी समय, भा.स्टे.स्टा.में है जो सम्पूर्ण भारत में समान रूप से ग्राहय रहेगा ।
		घं.	मि.		घं.	मि.		घं.	मि.		घं.	मि.								
०१	मंगल	अ	रा	पू.षा	अ	रा	ब्रह	१५	१८	बाल	१८	३४	०५ ४५	१९ १५	धनु	०२	१४	५६	30	A पंचक प्रारम्भ २३/४८ मी.
०१	बुध	०७	४१	पू०षा	०६	५४	ऐन्द्र	१६	०७	कौल	०७	३८	४६	१२	म.१३।३४	०२	१५	५६	01	जुलाई मास प्रा.
०२	गुरु	०९	४१	उ०षा	०९	३०	वैधृति	१६	४२	गर	०९	३८	४६	१५	मकर	०२	१५	५७	02	भ. २२।३२ से, शनि रेवती २ में ०५।५५
०३	शुक्र	११	२३	श्रवण	११	४९	विष्कु	१७	०२	विष्टि	११	२०	४६	१५	कु.२४।५१	०२	१६	५५	03	भ. ११।२० तक, श्री संकष्टचतुर्थी व्रत, चन्द्रोदय २१।४७, पंचक प्रा. A
०४	शनि	१२	४३	धनि	१३	४६	प्रीति	१७	०४	बाल	१२	४०	४६	१५	कुम्भ	०२	१७	५२	04	शुक्र मघा सिंह में १९।१५, मंगल रोहिणी में २३।५४, गुरू पुष्य २ में १५।३२
०५	रवि	१३	३३	शत	१५	१५	आयु	१६	४२	तैति	१३	३१	४७	१५	कुम्भ	०२	१८	४९	05	बुधास्त पश्चिम में ८।२३, रवियोग १५।१४ से
०६	सोम	१३	५०	पू०भा	१६	१०	सौभा	१५	५३	वणि	१३	४७	४७	१५	मी.१०।००	०२	१९	४६	06	भ. १३।४७ से २५।४१ तक, सूर्य पुनर्वसु में १२।३ वाहन अश्व वर्षा श्रेष्ठ
०७	मंगल	१३	२८	उ०भा	१६	२७	शोभन	१४	३३	बव	१३	२५	४७	१४	मीन	०२	२०	४३	07	कालाष्टमी, वक्री बुध मिथुन में १०।३२, सर्वार्थसिद्धि ५५१ से १६।२४ तक
०८	बुध	१२	२५	रेवती	१६	००	अति	१२	४०	कौल	१२	२२	४८	१४	मे.१६।०३	०२	२१	४०	08	पंचक समाप्त १६।०० पर
०९	गुरु	१०	४१	अश्वि	१३	५९	सुकर्मा	१०	१४	गर	१०	३८	४८	१४	मेष	०२	२२	३८	09	भ. २१।३१ से, सर्वार्थसिद्धि ५।५२ से १४।५६ तक
१०	शुक्र	०८	१९	भरणी	१३	१४	धृति शूल	०७ २७	१७ ५३	विष्टि	०८	१७	४९	१४	वृ.१८।४७	०२	२३	३५	10	भ. ०८।१७ तक, योगिनी एकादशी व्रत स्मार्त (मिश्री)
११	शुक्र	२९	२५	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	00	एकादशी का क्षय
१२	शनि	२६	०७	कृति	०८	०६	गण्ड	२४	०८	कौल	१५	४५	४९	१४	वृषभ	०२	२४	३२	11	योगिनी एकादशी व्रत वैष्णव, अमृतसिद्धि ११।४ से २९।५२ तक
१३	रवि	२२	३३	रोहिणी मृगशिरा	०८ २९	३२ ४४	वृद्धि	२०	०८	गर	१२	१८	४९	१४	मि.१९।०९	०२	२५	२९	12	भ. २२।३० से, प्रदोष व्रत, शिवरात्रि व्रत
१४	सोम	१८	५२	आर्द्रा	२६	५४	ध्रुव	१६	०३	विष्टि	०८	४०	५०	१४	मिथुन	०२	२६	२७	13	भ. ८।४० तक, गुरू का वार्धक्य प्रा. २८।५७
३०	मंगल	१५	१६	पुनर्वसु	२४	१२	व्याघ	११	५९	नाग	१५	१३	५०	१४	र्क.१८।५१	०२	२७	२४	14	आषाढ़ी अमावस्या पुण्य

दि.१३/०७/२०२६ स्टे.टा. ०५/३०

सू	चं	मं	बु	गु	शु	श	रा
०२	०२	०१	०२	०३	०४	११	१०
२६	०६	१५	२६	०८	०९	२०	०७
२४	३२	४७	३०	३२	२४	२१	४३
५६	१९	१२	३८	०५	२३	२८	०३
५७	१०६	४१	३८	१३	६६	०१	०३
१५	५६	५०	२५	१२	१६	१७	११
पुना	मृग	रोहि	पुन	पुष्य२	मघा	रेवती२	शत१
-	-	मा	व	मा	मा	मा	व

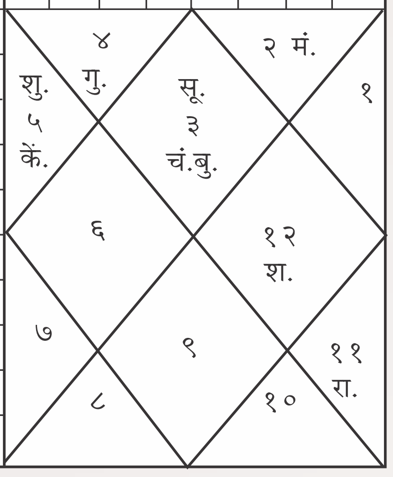

विक्रम पंचांग

विक्रम सम्वत् 2083

'रौद्र' नाम सम्वत्सर

● कलि सम्वत् 5127 ● सृष्टि आरंभ 1955885127

● राजा- बृहस्पति ● मंत्री - मंगल

15 जुलाई से 29 जुलाई 2026

आषाढ़ शुक्ल पक्ष (वर्षा ऋतु)

30 जुलाई से 12 अगस्त 2026

श्रावण कृष्ण पक्ष (वर्षा/शरद ऋतु)

	19 पंचमी जुलाई	26 द्वादशी जुलाई प्रदोष व्रत	**रविवार**		02 चतुर्थी अगस्त	09 एकादशी अगस्त कामदा एकादशी व्रत
	20 षष्ठी जुलाई	27 त्रयोदशी जुलाई	**सोमवार**		03 पंचमी अगस्त महाकालेश्वर सवारी	10 द्वादशी त्रयोदशी अगस्त प्रदोष व्रत
	21 सप्तमी जुलाई	28 चतुर्दशी जुलाई	**मंगलवार**		04 षष्ठी अगस्त	11 चतुर्दशी अगस्त
15 प्रतिपदा जुलाई	22 अष्टमी जुलाई	29 पूर्णिमा जुलाई गुरू पूर्णिमा	**बुधवार**		05 सप्तमी अगस्त	12 अमावस्या अगस्त हरियाली अमावस्या
16 द्वितीया जुलाई	23 नवमी जुलाई भड़ली नवमी , लोकमान्य तिलक जयंती		**गुरुवार**	30 प्रतिपदा जुलाई	06 अष्टमी अगस्त	
17 तृतीया जुलाई	24 दशमी जुलाई		**शुक्रवार**	31 द्वितीया जुलाई	07 नवमी अगस्त	
18 चतुर्थी जुलाई	25 एकादशी जुलाई देवशयनी ग्यारस व्रत		**शनिवार**	01 तृतीया अगस्त	08 दशमी अगस्त	

श्रीकृष्ण और कालचक्र : सृष्टि, संहार और धर्म की पुनर्स्थापना

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत् प्रवृद्धोलोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः। ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वेयेऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः।।

मैं काल हूँ, लोकों का संहार करने वाला। यहाँ इन सबका नाश करने के लिए प्रवृत्त हुआ हूँ। तेरे बिना भी ये सब योद्धा नहीं बचेंगे।

भारतीय दर्शन में "काल" केवल समय का प्रवाह नहीं है; वह सृष्टि की धुरी है, परिवर्तन का विधान है और जन्म मरण का अटल नियम है। इसी काल के संदर्भ में जब हम श्रीकृष्ण को देखते हैं, तो वे केवल एक ऐतिहासिक या पौराणिक पात्र नहीं रह जाते, बल्कि काल के नियंता, काल के साक्षी और स्वयं कालस्वरूप के रूप में प्रकट होते हैं। श्रीकृष्ण का जीवन, उनका उपदेश और उनका विराट रूप सब कुछ काल के साथ एक अद्भुत संबंध स्थापित करता है। भारतीय चिंतन में काल को अनादि और अनंत माना गया है। वह न रुकता है, न लौटता है। उपनिषदों और पुराणों में काल को ईश्वर की शक्ति कहा गया है। जब धर्म की हानि होती है और अधर्म बढ़ता है, तब ईश्वर स्वयं अवतार लेकर कालचक्र को संतुलित करते हैं। इसी सत्य को श्रीकृष्ण ने अपने जीवन में साकार किया। वे द्वापर युग के अंत में अवतरित हुए एक ऐसे समय में जब अत्याचार, अहंकार और अन्याय अपने चरम पर था। कंस का अत्याचार, दुर्योधन का दुराग्रह और समाज में व्याप्त असंतुलन इस बात के संकेत थे कि काल परिवर्तन की मांग कर रहा है। श्रीकृष्ण का जन्म ही काल की एक निर्णायक घड़ी में हुआ। कारागार में जन्म, गोकुल की ओर प्रस्थान और बाल्यकाल की लीलाएँ ये सब केवल कथाएँ नहीं, बल्कि यह संकेत हैं कि जब समय प्रतिकूल हो, तब भी ईश्वर की योजना कार्यरत रहती है। काल चाहे जितना कठोर हो, धर्म की रक्षा के लिए एक दिव्य शक्ति सक्रिय रहती है। कंस ने अपनी मृत्यु से बचने के लिए अनेक उपाय किए, परंतु काल के विधान से वह बच न सका। यहाँ श्रीकृष्ण काल के दूत नहीं, बल्कि काल के नियंता के रूप में दिखाई देते हैं। महाभारत के युद्धभूमि में यह सत्य और भी स्पष्ट हो जाता है। जब अर्जुन मोहग्रस्त होकर शस्त्र त्यागने को तत्पर हुए, तब श्रीकृष्ण ने उन्हें जो उपदेश दिया, वह केवल युद्ध का आह्वान नहीं था, बल्कि काल और कर्तव्य का गूढ़ रहस्य था। भगवद्गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं "कालोऽस्मि लोकक्षयकृत् प्रवृद्धः।" यह उद्घोष केवल शब्द नहीं, बल्कि सृष्टि के नियम की घोषणा है। वे बताते हैं कि जो योद्धा सामने खड़े हैं, वे पहले ही काल के द्वारा मारे जा चुके हैं; अर्जुन तो केवल निमित्त मात्र हैं। इसका तात्पर्य यह है कि मनुष्य स्वयं को कर्ता मानकर अहंकार करता है, जबकि वास्तविक कर्ता काल है, और काल भी उसी परम सत्ता की अभिव्यक्ति है। काल का एक पक्ष विनाश है, पर दूसरा पक्ष सृजन भी है। महाभारत का युद्ध विनाशकारी था, पर उसी के माध्यम से एक नए युग का आरंभ हुआ। अधर्म का अंत और धर्म की पुनः स्थापना यह कालचक्र की स्वाभाविक प्रक्रिया है।

श्रीकृष्ण इस प्रक्रिया के संचालक हैं। वे जानते थे कि यदुवंश का भी अंत निश्चित है, और द्वारका भी समुद्र में विलीन होगी। उन्होंने स्वयं उस काल को स्वीकार किया। यह स्वीकृति सिखाती है कि काल के आगे सबको झुकना पड़ता है। देवता, राजा, योद्धा, यहाँ तक कि अवतार भी अपनी लीला समाप्त कर लेते हैं। श्रीकृष्ण और काल का संबंध केवल बाह्य घटनाओं तक सीमित नहीं है; वह आंतरिक चेतना से भी जुड़ा है। गीता में वे अर्जुन को बताते हैं कि आत्मा न जन्म लेती है, न मरती है। शरीर काल के अधीन है, पर आत्मा कालातीत है। यह शिक्षा मनुष्य को भयमुक्त करती है। जब हम समझते हैं कि हमारा वास्तविक स्वरूप काल से परे है, तब जीवन के उतार-चढ़ाव हमें विचलित नहीं करते। श्रीकृष्ण का यह संदेश आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना कुरुक्षेत्र में था। काल की गति निरंतर है। वह बचपन को यौवन में और यौवन को वृद्धावस्था में बदल देता है। श्रीकृष्ण के जीवन में भी यह परिवर्तन दिखाई देता है। बाल गोपाल, मुरलीधर, रणछोड़, योगेश्वर और अंततः विराट पुरुष। प्रत्येक रूप समय की एक अवस्था का प्रतिनिधित्व करता है। बाल्यकाल की लीलाएँ आनंद का प्रतीक हैं, युवावस्था का पराक्रम शक्ति का, और गीता का उपदेश ज्ञान का। इन सबके माध्यम से वे दिखाते हैं कि जीवन की प्रत्येक अवस्था का अपना महत्व है, और काल के साथ चलना ही बुद्धिमत्ता है। काल का एक और आयाम है स्मृति। जो बीत गया, वह इतिहास बन जाता है।

ऐसे समय में श्रीकृष्ण का संदेश हमें संतुलन देता है। वे सिखाते हैं कि परिवर्तन से डरना नहीं चाहिए; बल्कि उसे स्वीकार कर अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए। काल को रोकना संभव नहीं, पर उसके साथ सामंजस्य स्थापित करना संभव है। श्रीकृष्ण का सुदर्शन चक्र भी काल का प्रतीक माना गया है। चक्र का अर्थ है निरंतर गति। यह संकेत देता है कि समय रुकता नहीं; वह घूमता रहता है। जिस प्रकार चक्र आगे बढ़ता है, उसी प्रकार जीवन भी आगे बढ़ता है। जो इस चक्र के साथ संतुलन बनाकर चलता है, वही सफल होता है। जब आकाश में नक्षत्र अपनी निश्चित गति से घूमते हैं, जब ऋतुएँ समय के संकेत पर बदलती हैं, जब जन्म लेकर प्रत्येक प्राणी मृत्यु की ओर अग्रसर होता है। तब यह स्पष्ट होता है कि इस समस्त सृष्टि के पीछे एक अदृश्य, अटूट और अजेय शक्ति कार्यरत है। उसी शक्ति का नाम है काल। काल न दिखाई देता है, न सुनाई देता है, पर उसकी उपस्थिति प्रत्येक परिवर्तन में अनुभव की जाती है। भारतीय दर्शन ने काल को केवल समय की गणना नहीं माना, बल्कि उसे ब्रह्म की अभिव्यक्ति, सृष्टि के संचालन का दिव्य विधान और जीवन-मृत्यु के रहस्य का आधार कहा है। इसी काल के संदर्भ में जब हम श्रीकृष्ण को देखते हैं, तो उनका स्वरूप एक ऐतिहासिक पुरुष से कहीं अधिक व्यापक हो उठता है। श्रीकृष्ण का अवतरण उसी भूमिका का चरम बिंदु था। उनका जन्म केवल एक बालक का जन्म नहीं, बल्कि कालचक्र के नए मोड़ का उद्घोष था। कारागार की अंधकारमयी रात्रि में जन्म लेकर उन्होंने यह संकेत दिया कि जब समय अत्यंत प्रतिकूल प्रतीत हो, तब भी परिवर्तन की किरण जन्म ले चुकी होती है। कंस का अत्याचार, दुर्योधन का दुराग्रह और समूचे आर्यावर्त में फैला असंतुलन ये सब काल की उस पृष्ठभूमि के भाग थे, जिसके केंद्र में श्रीकृष्ण प्रकट हुए। वे केवल परिस्थितियों के उत्तर नहीं थे, बल्कि स्वयं काल के विधान का मूर्त रूप थे। महाभारत की रणभूमि में यह सत्य और भी स्पष्ट हो उठता है। जब मोह और करुणा से व्याकुल अर्जुन अपने कर्तव्य से विचलित हुए, तब श्रीकृष्ण ने उन्हें जो उपदेश दिया, वह केवल युद्ध का औचित्य नहीं था; वह काल और कर्म के गहन संबंध का उद्घाटन था। भगवद्गीता में उनका यह वचन "कालोऽस्मि लोकक्षयकृत् प्रवृद्धः" समस्त दर्शन का सार बन जाता है। यहाँ श्रीकृष्ण स्वयं को काल के रूप में प्रकट करते हैं, यह बताने के लिए कि सृष्टि में जो कुछ घटित हो रहा है, वह एक विराट योजना का अंश है।

श्री विक्रम शुभ सम्वत् २०८३ शके १९४८ अषाढ़ शुक्ल पक्ष

दि.१५ से २९ जुलाई २०२६ तक
दक्षिणायन **वर्षा ऋतु**

तिथि	वार	समाप्ति		नक्षत्र	समाप्ति		योग	समाप्ति		करण	समाप्ति		सू.उ.	सू.अ.	चन्द्रराशि	सूर्य स्पष्ट			जुलाई	यहाँ पर दिया गया, सभी समय, भा.स्टे.स्टा.में है जो सम्पूर्ण भारत में समान रूप से ग्राह्य रहेगा ।
		घं.	मि.		घं.	मि.		घं.	मि.		घं.	मि.	घ.मि.	घ.मि.	प्रवेश	स्टे.टा ५/३०				
०१	बुध	११	५४	पुष्य	२१	४९	हर्षण वज्र	०८ २८	०७ ३३	बव	११	५०	०५ ५१	१९ १३	कर्क	०२	२८	२१	15	चन्द्रदर्शन गुप्त नवरात्र प्रा.
०२	गुरु	०८	५६	आश्ले	१९	५५	सिद्धि	२५	२५	कौल	०८	५२	५१	१३	सि.१९।५५	०२	२९	१८	16	श्री जगदीश रथयात्रा (पुरी), सूर्य कर्क में २३।३९, गुरू अस्त २८।५७, शुक्र
०३	शुक्र	०६	३१	मघा	१८	३७	व्यति	२२	४८	तैति	०६	२८	५१	१३	सिंह	०३	००	१६	17	भ.१७।३० से २८।४३तक, श्री विनायक चतुर्थीव्रत
०४	शुक्र	२८	४६	मघा	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	00	चतुर्थी का क्षय
०५	शनि	२७	४६	पू०फा	१८	०३	वरिय	२०	४८	बव	१६	०७	५२	१३	क.२३।५८	०३	०१	१३	18	रवियोग १८।०१ से
०६	रवि	२७	३३	उ०फा	१८	१५	परिघ	१९	२५	कौल	१५	३१	५२	१२	कन्या	०३	०२	१०	19	कुमार स्कन्द षष्ठी, गुरू पुष्य ३ में २१।१२, सर्वार्थसिद्धि ५।५६ से १८।१२ तक
०७	सोम	२८	०६	हस्त	१९	१२	शिव	१८	४०	गर	१५	४१	५३	१२	कन्या	०३	०३	०७	20	भ. २८।२३से, विवस्वत् सप्तमी, सूर्य पुष्य में ११।२८ वाहन मूषक वर्षा म.
०८	मंगल	२९	१९	चित्रा	२०	५२	सिद्ध	१८	२८	विष्टि	१६	३५	५३	१२	तु.०७।५७	०३	०४	०५	21	भ. १६।३५ तक, श्री दुर्गाष्टमी, बुधोदय पूर्व में २०।२७
०९	बुध	दि	रा	स्वाति	२३	०६	साध्य	१८	४४	बाल	१८	०७	५४	११	तुला	०३	०५	०२	22	भड्डली नवमी, गुप्त नवरात्र पूर्ण, रवियोग २३।०४ से, सायन सिंह में रवि २४।४८
०९	गुरु	०७	०६	विशा	२५	४५	शुभ	१९	२२	कौल	०७	०४	५४	११	वृ.१९।०४	०३	०५	५९	23	मंगल मृग. में २७।२१, बुध मार्गी २८।२८, सर्वार्थसिद्धि २५४४ से २९।५७ तक
१०	शुक्र	०९	१५	अनु	२८	३९	शुक्ल	२०	१४	गर	०९	१३	५४	११	वृश्चिक	०३	०६	५७	24	भ. २२।२३ से, आशा दशमी, श्री गिरिजा पूजा, मन्वादि, रवियोग २८।३६ तक
११	शनि	११	३७	ज्येष्ठा	दि	रा	ब्रह्म	२१	११	विष्टि	११	३५	५५	१०	वृश्चिक	०३	०७	५४	25	भ. ११।३५ तक, देवशयनी एकादशी (दाख), श्री विष्णु शयनोत्सव
१२	रवि	१४	०१	ज्येष्ठा	०७	३७	ऐन्द्र	२२	०७	बाल	१३	५८	५५	१०	धनु०७।३७	०३	०८	५१	26	प्रदोषव्रत, शनि वक्री २५।२९, सर्वार्थसिद्धि ०७३६ से २९।५८ तक
१३	सोम	१६	१८	मूल	१०	३१	वैधृति	२२	५७	तैति	१६	१५	५६	०९	धनु	०३	०९	४८	27	जयापार्वती व्रतारंभ, रवियोग १०।३० से
१४	मंगल	१८	२२	पू०षा	१३	१४	विष्कु	२३	३६	वणि	१८	१९	५६	०९	म.१९।५२	०३	१०	४६	28	भ. १८।१९ से शुक्र उफा में २८।५१, रवियोग १३।११ तक
१५	बुध	२०	०८	उ०षा	१५	४०	प्रीति	२४	००	विष्टि	०७	१५	५७	०८	मकर	०३	११	४३	29	भ. ०७।१५ तक, गुरू पूर्णिमा व्यास पूजा, पूर्णिमा-सत्यव्रत

दि.२७/०७/२०२६ स्टे.टा. ०५/३०

सू	चं	मं	बु	गु	शु	श	रा
०३	०८	०१	०२	०३	०४	१०	१०
०९	१०	२५	२२	११	२४	२०	०६
४६	५१	२६	३२	३६	३५	३१	५८
५३	२६	४१	०५	२३	०६	११	२९
५७	७१७	४०	२०	१३	६३	००	०३
१९	२५	५४	५६	२०	२५	०६	११
पुष्य	मूल	मृग	पुन	पुष्य३	पूफा	रेव२	शत१
-	-	मा	मा	मा	मा	व	व

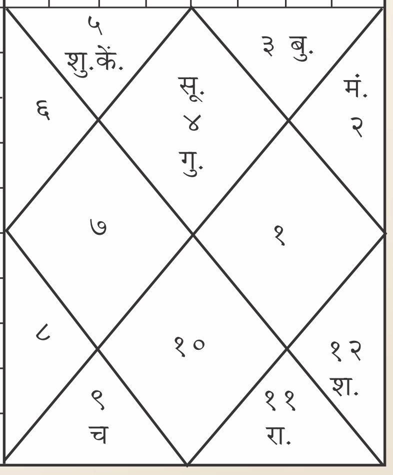

श्री विक्रम शुभ सम्वत् २०८३ शके १९४८ श्रावण कृष्ण पक्ष

दि.३० जुलाई से १२ अगस्त २०२६ तक
दक्षिणायन **वर्षा/शरद ऋतु**

तिथि	वार	समाप्ति		नक्षत्र	समाप्ति		योग	समाप्ति		करण	समाप्ति		सू.उ.	सू.अ.	चन्द्रराशि	सूर्य स्पष्ट			जुलाई अगस्त	यहाँ पर दिया गया, सभी समय, भा.स्टे.स्टा.में है जो सम्पूर्ण भारत में समान रूप से ग्राह्य रहेगा ।
		घं.	मि.		घं.	मि.		घं.	मि.		घं.	मि.	घ.मि.	घ.मि.	प्रवेश	स्टे.टा ५/३०				
०१	गुरु	२१	३३	श्रवण	१७	४६	आयु	२४	०८	बाल	०८	५१	०५ ५७	१९ ०८	मकर	०३	१२	४०	30	चातुर्मासव्रत में - श्रावण में शाकभक्षण त्याग
०२	शुक्र	२२	३४	धनि	१९	२९	सौभ	२३	५७	तैति	१०	०४	५७	०७	कु.०६।४१	०३	१३	३८	31	पंचक प्रा. ०६/३८ से
०३	शनि	२३	१०	शत	२०	४८	शोभ	२३	२५	वणि	१०	५३	५८	०७	कुम्भ	०३	१४	३५	01	भ. १०।५३ से २३।०७ तक, अगस्त मा.प्रा., जयापार्वती व्रत पूर्ण
०४	रवि	२३	१८	पू०भा	२१	३९	अति	२२	३२	बव	११	१५	५८	०६	मी.१५।२९	०३	१५	३३	02	श्री संकष्ट चतुर्थी व्रत, चन्द्रोदय २१।२७, मंगल मिथुन में २२।५१
०५	सोम	२२	५७	उ०भा	२२	०३	सुक	२१	१६	कौल	११	०९	५९	०६	मीन	०३	१६	३०	03	श्री महाकालेश्वर सवारी, सूर्य आश्वलेषा में १०।२४ वाहन हस्ति वर्षा श्रे.
०६	मंगल	२२	०६	रेवती	२१	५७	धृति	१९	३६	गर	१०	३३	५९	०५	मे.२१।५७	०३	१७	२७	04	भ. २२।०३ से पंचक स. २१।५४ पर, सर्वार्थसिद्धि २१।५५ से ३०।०२ तक
०७	बुध	२०	४५	अश्वि	२१	२१	शूल	१७	३१	विष्टि	०९	२७	०६ ००	०४	मेष	०३	१८	२५	05	भ. ०९।२७ तक, कालाष्टमी, बुध कर्क में १९।४१, रवियोग २१।१७ तक
०८	गुरु	१८	५५	भरणी	२०	१६	गण्ड	१५	०३	बाल	०७	५१	०१	०४	वृ.२५।५६	०३	१९	२२	06	-
०९	शुक्र	१६	४०	कृति	१८	४६	वृद्धि	१२	१३	गर	१६	३७	०१	०३	वृषभ	०३	२०	२०	07	भ. २७।२० से
१०	शनि	१४	०२	रोहिणी	१६	५४	ध्रुव व्याघा	१२ ०९	०४ ४०	विष्टि	१३	५९	०१	०२	मि.२७।५१	०३	२१	१७	08	भ. १३।५९ तक, बुध पुष्य में ७।१७, अमृतसिद्धि ६।४ से १३।५९ तक
११	रवि	११	०८	मृग	१४	४६	हर्षण	२६	०७	बाल	११	०५	०१	०२	मिथुन	०३	२२	१५	09	कामदा एकादशी व्रत (गोदुग्ध)
१२	सोम	०८	०४	आर्द्रा	१२	२९	वज्र	२२	२९	तैति	०८	०१	०२	०१	कर्.२८।४६	०३	२३	१२	10	भा. २८।५४ से, सोमप्रदोषव्रत, श्री महाकालेश्वर सवारी
१३	सोम	२८	५७	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	१०	00	त्रयोदशी का क्षय
१४	मंगल	२५	५६	पुनर्वसु	१०	१२	सिद्धि	१८	५४	विष्टि	१५	२३	०२	००	कर्क	०३	२४	०८	11	भ. १५।२३ तक, शिवरात्रिव्रत, गुरू का उदय ७।२१, शुक्र हस्त में ६।२८
३०	बुध	२३	०९	पुष्य	०८	०२	व्यति	१५	२८	चतु	१२	२८	०२	५८	कर्क	०३	२५		12	हरियाली अमावस्या पुण्य, मन्वदि, मंगल आर्द्रा में २२।३४

दि.१०/०८/२०२६ स्टे.टा. ०५/३०

सू	चं	मं	बु	गु	शु	श	रा
०३	०२	०२	०३	०३	०५	११	१०
२३	१५	०४	०६	१४	०८	२०	०६
१०	४३	५२	१६	४३	५८	२०	१३
४७	५८	१२	०४	०३	१७	५३	५५
५७	८८४	३९	९७	१३	५९	०१	०३
३४	४५	५५	५६	१२	२४	३०	११
श्ले	आर्द्रा	मृग	पुष्य	पुष्य४	उफा	रेवती२	धनि४
-	-	मा	मा	मा	मा	व	व

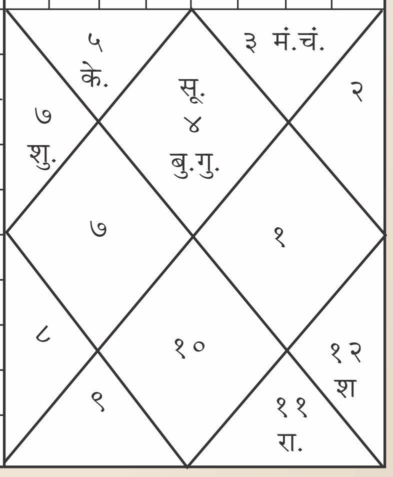

विक्रम पचांग
विक्रम सम्वत् 2083

‘रौद्र’ नाम सम्वत्सर | ● कलि सम्वत् 5127 ● सृष्टि आरंभ 1955885127 | ● राजा- बृहस्पति ● मंत्री - मंगल

13 अगस्त से 28 अगस्त 2026
श्रावण शुक्ल पक्ष (वर्षा/शरद ऋतु)

29 अगस्त से 11 सितम्बर 2026
भाद्रपद कृष्ण पक्ष (शरद ऋतु)

	16 चतुर्थी अगस्त अटल बिहारी वाजपेयी पुण्य तिथि	**23** एकादशी अगस्त पवित्रा एकादशी	**रविवार**		**30** द्वितीया अगस्त	**06** दशमी सितम्बर
	17 पंचमी अगस्त नागपंचमी महाकालेश्वर सवारी	**24** द्वादशी अगस्त महाकालेश्वर सवारी	**सोमवार**		**31** तृतीया अगस्त महाकालेश्वर सवारी	**07** एकादशी सितम्बर अजा एकादशी व्रत महाकालेश्वर सवारी
	18 षष्ठी अगस्त	**25** त्रयोदशी अगस्त प्रदोष व्रत	**मंगलवार**		**01** चतुर्थी पंचमी सितम्बर	**08** द्वादशी सितम्बर प्रदोष व्रत
	19 सप्तमी अगस्त तुलसीदास जयंती	**26** त्रयोदशी अगस्त मिलाद-उन-नबी	**बुधवार**		**02** षष्ठी सितम्बर	**09** त्रयोदशी सितम्बर
13 प्रतिपदा अगस्त	**20** अष्टमी अगस्त	**27** चतुर्दशी अगस्त	**गुरुवार**		**03** सप्तमी सितम्बर	**10** चतुर्दशी सितम्बर
14 द्वितीया अगस्त	**21** नवमी अगस्त	**28** पूर्णिमा अगस्त रक्षा बंधन	**शुक्रवार**		**04** अष्टमी सितम्बर श्रीकृष्ण जन्माष्टमी संत ज्ञानेश्वर जयंती	**11** अमावस्या सितम्बर अमावस्या
15 तृतीया अगस्त स्वतंत्रता दिवस	**22** दशमी अगस्त		**शनिवार**	**29** प्रतिपदा अगस्त	**05** नवमी सितम्बर गोगा नवमी	

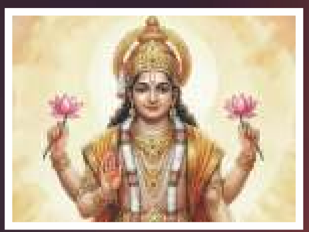

काल का प्रकाशमान अधिपति सूर्य

आसत्येन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च। हिरण्ययेन सविता रथेन देवो याति भुवनानि पश्यन्।। (ऋग्वेद)

"जो सत्य और ऋत के प्रकाश से समस्त जगत को गति देता है, जो अमर और मर्त्य दोनों लोकों को प्रकाशित करता है, वह देवता सविता अपने स्वर्णमय रथ पर आरूढ़ होकर समस्त भुवनों का निरीक्षण करता है। वही सूर्य है । जीवन का द्रष्टा, काल का प्रवर्तक और दिन रात का स्वामी।"

सूर्य केवल आकाश में चमकता हुआ एक ज्योति-पिंड नहीं है, वह भारतीय चेतना में काल का सजीव रूप है। दिन और रात की गति, ऋतुओं का परिवर्तन, जीवन की वृद्धि और क्षय इन सबका मूलाधार सूर्य ही है। जिस क्षण पूर्व दिशा में उसकी पहली किरण फूटती है, उसी क्षण समय का प्रवाह प्रत्यक्ष हो उठता है। रात्रि का अंधकार केवल प्रकाश के अभाव का नहीं, बल्कि विश्राम और अंतर्मुखता का संकेत है, और दिन का प्रकाश कर्म, जागृति और सृजन का उद्घोष। इस प्रकार सूर्य दिन और रात दोनों का स्वामी है एक का प्राकट्य, दूसरे का संयम।

वैदिक ऋषियों ने सूर्य को 'सविता' कहा जो प्रेरणा देता है। गायत्री मंत्र में उसी सविता की उपासना है, जो हमारी बुद्धि को प्रेरित करता है। यहां सूर्य केवल बाह्य प्रकाश नहीं, बल्कि अंतःप्रकाश का भी प्रतीक है। जब ऋषि कहते हैं कि सूर्य सब भुवनों को देखता है, तो उसका तात्पर्य है कि सूर्य साक्षी है काल का साक्षी। जो कुछ भी घटित होता है, वह सूर्य की उपस्थिति में घटित होता है। इसी कारण उसे दिन और रात का स्वामी कहा गया, क्योंकि बिना सूर्य के न दिन का अर्थ है, न रात्रि का। काल-गणना का आधार भी सूर्य ही है। वर्ष, ऋतु, अयन, मास इन सबकी गणना सूर्य की गति से होती है। उत्तरायण और दक्षिणायण सूर्य की दीर्घ यात्रा के दो चरण हैं, जिनसे न केवल मौसम बदलते हैं, बल्कि भारतीय आध्यात्मिक जीवन की दिशा भी निर्धारित होती है। उत्तरायण को देवताओं का दिन कहा गया, दक्षिणायण को रात्रि। यह केवल खगोलीय तथ्य नहीं, बल्कि आध्यात्मिक संकेत भी है प्रकाश की ओर यात्रा और विश्राम की ओर वापसी। प्राचीन भारत में समय को स्थिर नहीं माना गया, वह सदा गतिशील है, और उस गति का प्रतीक सूर्य है। उदय से अस्त तक सूर्य का भ्रमण मानव जीवन की यात्रा जैसा है जन्म, यौवन, प्रौढ़ता और अंत। यही कारण है कि सूर्य को 'कालात्मा' भी कहा गया। महाभारत में भीष्म पितामह का उत्तरायण की प्रतीक्षा करना इसी मान्यता का प्रतीक है कि सूर्य की दिशा के साथ काल की दिशा बदलती है।

पौराणिक कथाओं में सूर्य देव की महिमा अनेक रूपों में वर्णित है। कश्यप ऋषि और अदिति के पुत्र सूर्य, देवताओं में तेजस्वी और अनुशासनप्रिय हैं। उनके रथ को सात अश्व खींचते हैं, जिन्हें सप्ताह के सात दिन, इंद्रधनुष के सात रंग और सप्त छंदों से जोड़ा गया है। रथ का एक ही चक्र है। संवत्सर जो निरंतर घूमता रहता है, जैसे काल कभी रुकता नहीं। अरुण उनका सारथी है, जो प्रभात की लालिमा के रूप में पहले ही आकाश को जाग्रत कर देता है। सूर्य से जुड़ी कथाओं में एक महत्वपूर्ण प्रसंग संज्ञा का है। सूर्य के प्रचंड तेज को सहन न कर पाने के कारण संज्ञा छाया का निर्माण करती है। यह कथा केवल दाम्पत्य की नहीं, बल्कि यह संकेत देती है कि प्रकाश के साथ छाया का होना अनिवार्य है। दिन के साथ रात, जागरण के साथ विश्राम संतुलन का यही सिद्धांत सूर्य सिखाता है। रामायण में सूर्यवंश की प्रतिष्ठा इस बात का प्रमाण है कि सूर्य केवल ज्योति नहीं, बल्कि राजधर्म और मर्यादा का भी प्रतीक है।

श्रीराम स्वयं सूर्यवंशी कहलाते हैं, और उनका जीवन सूर्य के समान लोककल्याणकारी है। स्वयं तपता हुआ, दूसरों को प्रकाश देता हुआ। महाभारत में कर्ण सूर्य पुत्र हैं, जिनका तेज और दानशीलता सूर्य के गुणों का मानवीय रूप है। कर्ण की कथा यह भी सिखाती है कि सूर्य समान तेज होने पर भी यदि समय और परिस्थिति अनुकूल न हों, तो जीवन संघर्षमय हो सकता है यह भी काल की ही लीला है। सूर्य उपासना का संबंध केवल आस्था से नहीं, स्वास्थ्य और सुरक्षा से भी है। प्रातःकाल सूर्य को अर्घ्य देना, सूर्य नमस्कार करना ये क्रियाएं शरीर और मन दोनों को संतुलित करती हैं। आयुर्वेद में सूर्य को अग्नि का बाह्य रूप माना गया है। सूर्य के बिना न पाचन संभव है, न जीवन। यही कारण है कि सूर्य को 'आरोग्य का देवता' भी कहा गया। अनेक लोककथाओं में सूर्य की कृपा से रोगों से मुक्ति और जीवन रक्षा की कथाएं मिलती हैं, जो यह बताती हैं कि सूर्य मानव के लिए केवल काल का नियंता नहीं, बल्कि रक्षक भी है। भारतीय लोकजीवन में सूर्य से जुड़े गीत, व्रत और परंपराएं आज भी जीवित हैं। छठ पर्व में उगते और अस्त होते सूर्य की उपासना इस बात का प्रमाण है कि सूर्य दिन और रात दोनों अवस्थाओं में समान रूप से पूज्य है। उगते सूर्य में आशा है, अस्त होते सूर्य में कृतज्ञता। यह द्वैत नहीं, पूर्णता का बोध है।

काल और सूर्य का संबंध इतना गहरा है कि बिना सूर्य के काल की कल्पना ही अधूरी है। आधुनिक घड़ियां भले ही यांत्रिक हों, पर समय का मूल स्रोत वही सूर्य है, जिसकी छाया से कभी घड़ियां बनाई जाती थीं। छाया का लंबा या छोटा होना ही समय का मापक था। इस प्रकार सूर्य और छाया प्रकाश और अंधकार दोनों मिलकर समय की भाषा बोलते हैं। सूर्य देव दिन और रात के स्वामी इसलिए हैं, क्योंकि वे जीवन की हर अवस्था के साक्षी हैं। वे उदय होकर कर्म का आह्वान करते हैं, अस्त होकर विश्राम का संकेत देते हैं। वे काल को जन्म देते हैं, काल को चलाते हैं और काल के पार भी संकेत करते हैं। भारतीय दर्शन में सूर्य इसलिए पूज्य है, क्योंकि वह हमें सिखाता है कि जैसे वह प्रतिदिन उदय होकर अंधकार को चीर देता है, वैसे ही मानव को भी अपने भीतर के अज्ञान को भेदकर चेतना के प्रकाश की ओर बढ़ना चाहिए। सूर्य और काल के संबंध की गहराई तब और स्पष्ट होती है जब हम भारतीय दर्शन में समय को रेखीय नहीं, चक्रीय मानते हैं। यह चक्र सूर्य की गति से ही समझ में आता है। प्रतिदिन सूर्य का उदय और अस्त हमें यह बोध कराता है कि अंत वास्तव में अंत नहीं है, बल्कि नए आरंभ की तैयारी है। रात्रि के गर्भ से ही प्रभात जन्म लेता है और अस्ताचल की ओर बढ़ता सूर्य भी अगले दिन पुनः पूर्व दिशा से प्रकट होने का वचन देता है। इस नित्य आवर्तन में ही काल का रहस्य निहित है। सूर्य की यह चक्रीय गति मानव जीवन के संस्कारों में भी समाई हुई है। जन्म, नामकरण, उपनयन, विवाह और अंत्येष्टि इन सभी संस्कारों में किसी न किसी रूप में सूर्य की उपस्थिति मानी गई है।

श्री विक्रम शुभ सम्वत् २०८३ शके १९४८ श्रावण शुक्ल पक्ष

दि.१३ से २८ अगस्त २०२६ तक

दक्षिणायन **शरद ऋतु**

तिथि	वार	समाप्ति		नक्षत्र	समाप्ति		योग	समाप्ति		करण	समाप्ति		सू.उ.	सू.अ.	चन्द्रराशि	सूर्य स्पष्ट			अगस्त	यहाँ पर दिया गया, सभी समय, भा.स्टे.स्टा.में है जो सम्पूर्ण भारत में समान रूप से ग्राह्य रहेगा ।
		घं.	मि.		घं.	मि.		घं.	मि.		घं.	मि.	घ.मि.	घ.मि.	प्रवेश	स्टे.टा ५/३०				
०१	गुरु	२०	४४	आश्ले मघा	०६ २८	०७ ३८	वरिय	१२	१४	किंस्तु	०९	५१	०६ ०३	१८ ५९	सि.०६।०९	०३	२६	०५	13	-
०२	शुक्र	१८	५०	पू०फा	२७	४५	परिघ	०९	२८	बाल	०७	४०	०३	५८	सिंह	०३	२७	०३	14	चन्द्रदर्शन, गुरू का बाल्यत्व स ७।२१,बुधास्त पूर्व में ९।१५,रवियोग २७।४४
०३	शनि	१७	३२	उ०फा	२७	२८	शिव सिद्ध	०७ २९	०९ २१	गर	१७	२९	०४	५७	क.०९।३७	०३	२८	००	15	भ. २९।०६ से, मधुश्रवा तृतीया, संधारा ३, स्वर्णगौरी व हरियाली ३
०४	रवि	१६	५५	हस्त	२७	५३	साध्य	२८	०६	विष्टि	१६	५३	०४	५७	कन्या	०३	२८	५८	16	भ. १६।५३ तक, श्री विनायक चतुर्थीव्रत, दुर्वागणपति, श्री शिवमनसा
०५	सोम	१७	०३	चित्रा	२९	०१	शुभ	२७	२७	बाल	१७	००	०४	५६	तु.१६।२२	०३	२९	५६	17	श्री नागपंचमी व्रत, श्री महाकालेश्वर सवारी, सूर्य मघासिंह में ७।५८ वाहन
०६	मंगल	१७	५३	स्वाति	दि	रा	शुक्ल	२७	२१	तैति	१७	५१	०५	५५	तुला	०४	००	५३	18	श्री कल्कि जयंती, गुरू आश्लेषा १ में २७।१२
०७	बुध	१९	२२	स्वाति	०६	४९	ब्रह्म	२७	४२	गर	०६	३१	०५	५४	वृ.२६।३३	०४	०१	५१	19	भ. १९।२० से, गो. श्री तुलसीदास जयंती, रवियोग ६।४७ तक
०८	गुरु	२१	२१	विशा	०९	११	ऐन्द्र	२८	२३	विष्टि	०८	१६	०५	५३	वृश्चिक	०४	०२	४९	20	भ. ०८।१६ तक, श्री दुर्गाष्टमी, वक्री शनि रेव १ में १८।३०
०९	शुक्र	२३	३९	अनु	११	५५	वैधृति	२९	१६	बाल	१०	२६	०६	५२	वृश्चिक	०४	०३	४७	21	रवियोग ११।५४ से
१०	शनि	२६	०३	ज्येष्ठा	१४	५२	विष्कु	अ.	रा.	तैति	१२	४८	०६	५२	धनु१४।४९	०४	०४	४४	22	बुध मघासिंह में १९।३२
११	रवि	२८	२१	मूल	१७	४७	विष्कु	०६	१२	वणि	१५	११	०६	५१	धनु	०४	०५	४२	23	भ. १५।११ से २८।१९ तक, पवित्रा एकादशीव्रत स्मार्त (सिंघाड़ा)
१२	सोम	दि	रा	पू०षा	२०	३१	प्रीति	०७	०२	बव	१७	२३	०७	५०	म.२७।०९	०४	०६	४०	24	पवित्रा एकादशी व्रत (वैष्णव), श्री महाकालेश्वर सवारी
१२	मंगल	०६	२४	उ०षा	२२	५४	आयु	०७	३९	बाल	०६	२१	०७	४९	मकर	०४	०७	३८	25	भौमप्रदोष व्रत, पवित्रा द्वादशी, विष्णु पवित्रारोपण, शुक्र चित्रा में १२।५१
१३	बुध	०८	०२	श्रवण	२४	५१	सौभा	०७	५३	तैति	०७	५९	०७	४८	मकर	०४	०८	३६	26	रवियोग २४।४८ तक
१४	गुरू	०९	१२	धनिष्ठा	२६	१८	शोभ	०७	२६	वणि	०९	०९	०८	४७	कु.१३।३८	०४	०९	३४	27	भ. ०९।०९ से २१।३२ तक, सत्यव्रत पंचक प्रा., संस्कृत दिवस
१५	शुक्र	०९	५१	शत	२७	१६	अति	०७	३०	बव	०९	५८	०८	४६	कुम्भ	०४	१०	३२	28	श्रावणी पूर्णिमा व्रत, कृष्ण यजुर्वेदीय-अथर्वदीय श्रावणी उपाकर्म, रक्षाबंधन

दि.२८/०८/२०२६ स्टे.टा. ०५/३०

सू	चं	मं	बु	गु	शु	श	रा
०४	०८	०२	०४	०३	०५	११	१०
०६	१९	१४	०२	१७	२२	१९	०५
३८	१०	०२	५०	४६	११	५१	२९
२१	५७	३६	४८	०५	०४	२२	२३
५७	७२१	३८	१२०	१२	५२	०२	०३
५०	२४	४२	१२	४८	५६	४२	११
मघा	पूषा	आर्द्रा	मघा	श्ले१	हस्त	रेव२	धनि४
-	-	मा	मा	मा	मा	व	व

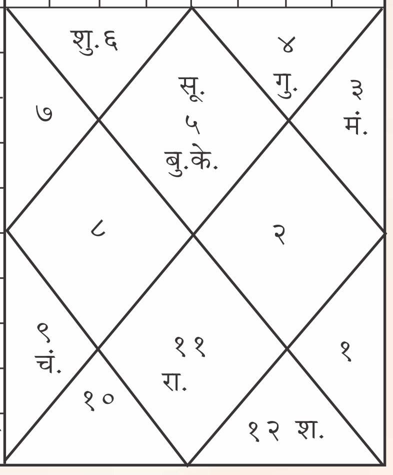

श्री विक्रम शुभ सम्वत् २०८३ शके १९४८ भाद्रपद कृष्ण पक्ष

दि.२९ अगस्त से ११ सितम्बर २०२६ तक

दक्षिणायन **शरद ऋतु**

तिथि	वार	समाप्ति		नक्षत्र	समाप्ति		योग	समाप्ति		करण	समाप्ति		सू.उ.	सू.अ.	चन्द्रराशि	सूर्य स्पष्ट			अगस्त सितम्बर	यहाँ पर दिया गया, सभी समय, भा.स्टे.स्टा.में है जो सम्पूर्ण भारत में समान रूप से ग्राह्य रहेगा ।
		घं.	मि.		घं.	मि.		घं.	मि.		घं.	मि.	घ.मि.	घ.मि.	प्रवेश	स्टे.टा ५/३०				
०१	शनि	०९	५७	पू०भा	२७	४५	सुकर्मा धृति	०६ २९	१४ २७	कौल	०९	५७	०६ ०९	१८ ४५	मी.२१।४०	०४	११	२९	29	चातुर्मास व्रत-दधिभक्षण त्याग, अशून्यशयन व्रत
०२	रवि	०९	४०	उ०भा	२७	४७	शूल	२७	४८	गर	०९	३७	०९	०८	मीन	०४	१२	२७	30	भ. २१।१७ से, सूर्य पू.फा. में २७।५८ वाहन गर्दभ वर्षा श्रे. सर्वार्थ सि.६।१२ से २७।४५
०३	सोम	०८	५४	रेवती	२७	२६	गण्ड	२५	५३	विष्टि	०८	५१	०९	०७	मकर	०४	१३	२५	31	भ.८।५१ तक, कज्जली ३, सतुआ ३, श्री संकष्ट ४, चन्द्रोदय २०।३६ श्री महाकालेश्वर सवारी
०४	मंगल	०७	४५	अश्वि	२६	४५	वृद्धि	२३	२७	बाल	०७	४२	०९	४२	मे.२७।२६	०४	१४	२३	01	सितम्बर मा.प्रा. अमृतसिद्धि ६।१३ से २६।४२ तक
०५	मंगल	३०	१०	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	२०	00	पंचमी का क्षय
०६	बुध	२८	२४	भर	२५	४५	ध्रुव	२१	१०	गर	१७	१९	१०	४१	मेष	०४	१५	२१	02	भ. २८।२६ से, चन्द्रषष्ठी, चन्द्रोदय २१।५८, हलषष्ठी, शुक्र तुला में १३।४६
०७	गुरु	२६	२८	कृति	२४	३२	व्याघ	१८	३५	विष्टि	१५	२८	१०	४१	वृष.०७।२८	०४	१६	१८	03	भ. १५।२८ तक, गुरू श्ले. २ में १७।३७
०८	शुक्र	२४	१६	रोहिणी	२३	०७	हर्षण	१५	४६	बाल	१३	२१	१०	४०	वृषभ	०४	१७	१६	04	श्रीकृष्ण जन्माष्टमी व्रत, दूर्वाष्टमी, कालाष्टमी
०९	शनि	२१	५६	मृग	२१	३३	वज्र	१२	४९	तैति	११	०५	११	३९	मि.१०।२१	०४	१८	१४	05	नन्दोत्सव, गोगानवमी, बुध उ.फा. में १६।३१
१०	रवि	१९	३२	आर्द्रा	१९	५५	सिद्धि	०९	४७	वणि	०८	४२	११	३८	मिथुन	०४	१९	१२	06	भ. ०८।४२ से १९।२९ तक
११	सोम	१७	०७	पुनर्वसु	१८	१६	व्यति वरिया	०६ २७	४३ ४०	बाल	१७	०४	११	३७	कर्.१२।४१	०४	२०	१०	07	अजाएकादशीव्रत (खारक), श्री महाकालेश्वर सवारी, बुध कन्या में १३।३४
१२	मंगल	१४	४६	पुष्य	१६	४२	परिघ	२४	४३	तैति	१४	४३	१२	३६	कर्क	०४	२१	०९	08	गौ वत्सद्वादशी, भौमप्रदोषव्रत, सर्वार्थसिद्धि १६।४० से ३०।१४ तक
१३	बुध	१२	३३	आश्ले	१५	१७	शिव	२१	५४	वणि	१२	३१	१२	३५	सिं.१५।१७	०४	२२	०७	09	भ. १२।३१ से २३।३० तक, शिवरात्रि व्रत, अघोरा चतुर्दशी
१४	गुरू	१०	३६	मघा	१४	०७	सिद्ध	१९	२०	शकु	१०	३४	१२	३४	सिंह	०४	२३	०५	10	पितृ अमावस्या पुण्य १०।३४ बाद, सिद्धपितृ अमावस्या, कुशोत्पाटिनी ३०
३०	शुक्र	०८	५९	पू०फा	१३	१९	साध्य	१७	०४	नाग	०८	५७	१३	३३	क.१९।११	०४	२४	०४	11	पिठोर अमावस्या, शुक्र स्वा. में २३।१५, सर्वार्थसिद्धि ६।१६ से १३।१६ तक

दि.०७/०९/२०२६ स्टे.टा. ०५/३०

सू	चं	मं	बु	गु	शु	श	रा
०४	०२	०२	०४	०३	०६	११	१०
२०	२५	२२	२९	२०	०३	१९	०४
१०	४४	५६	२४	४२	२८	०५	४४
२७	२९	२८	४१	५४	५६	२३	५५
५८	८५८	३७	१०५	१२	४२	०३	०३
१४	०५	३२	१४	१८	१२	४८	११
पूफा	पुन	पुन	उफा	श्ले२	चित्रा	रेव२	धनि४
-	-	मा	मा	मा	मा	व	व

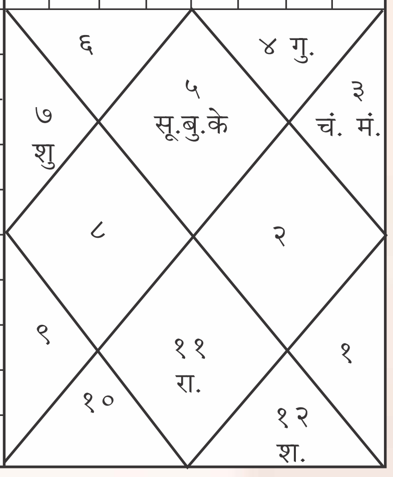

विक्रम पंचांग

विक्रम सम्वत् 2083

'रौद्र' नाम सम्वत्सर | • कलि सम्वत् 5127 • सृष्टि आरंभ 1955885127 | • राजा- बृहस्पति • मंत्री - मंगल

12 सितम्बर से 26 सितम्बर 2026

भाद्रपद शुक्ल पक्ष (शरद ऋतु)

27 सितम्बर से 10 अक्टूबर 2026

आश्विन कृष्ण पक्ष (शरद/हेमंत ऋतु)

	13 द्वितीया सितम्बर	20 नवमी सितम्बर	**रविवार**	27 प्रतिपदा सितम्बर	04 अष्टमी नवमी अक्टूबर
	14 तृतीया सितम्बर गणेश चतुर्थी हरतालिका तीज व्रत राष्ट्रीय हिंदी दिवस	21 दशमी सितम्बर तेजा दशमी	**सोमवार**	28 द्वितीया सितम्बर	05 दशमी अक्टूबर
	15 चतुर्थी सितम्बर ऋषि पंचमी	22 एकादशी सितम्बर जलझूलनी एकादशी व्रत	**मंगलवार**	29 तृतीया सितम्बर	06 एकादशी अक्टूबर इंदिरा एकादशी व्रत
	16 पंचमी सितम्बर	23 द्वादशी सितम्बर	**बुधवार**	30 चतुर्थी सितम्बर	07 द्वादशी अक्टूबर
	17 षष्ठी सितम्बर	24 त्रयोदशी सितम्बर प्रदोष व्रत	**गुरुवार**	01 पंचमी अक्टूबर	08 त्रयोदशी अक्टूबर प्रदोष व्रत
	18 सप्तमी सितम्बर	25 त्रयोदशी सितम्बर अनन्त चतुर्दशी पं. दीनदयाल उपाध्याय जयंती	**शुक्रवार**	02 षष्ठी अक्टूबर महात्मा गाँधी जयंती लाल बहादुर शास्त्री जयंती	09 चतुर्दशी अक्टूबर
12 प्रतिपदा सितम्बर गुरू ग्रंथ साहिब प्रकाश दिवस	19 अष्टमी सितम्बर राधाष्टमी	26 पूर्णिमा सितम्बर पूर्णिमा महालय आरंभ	**शनिवार**	03 सप्तमी अक्टूबर	10 अमावस्या अक्टूबर पितृमोक्ष अमावस्या

रात्रि का स्वामी और काल-चक्र की धुरी

चन्द्रमा मनसो जातः कालस्य च नियामकः। तिथिपक्षविभागेन लोकानां बोधकः सदा॥

"चंद्रमा मन से उत्पन्न हुआ माना गया है और वही काल का नियमन करने वाला है। तिथि और पक्ष के विभाजन के माध्यम से वह निरंतर लोक को समय का बोध कराता है।"

चंद्रमा के बगैर भारतीय काल-गणना की कल्पना अधूरी है। यदि सूर्य काल का स्थूल नियंता है, तो चंद्रमा उसका सूक्ष्म निर्देशक है। सूर्य हमें बताता है कि समय कितना बीता, जबकि चंद्रमा यह अनुभूति कराता है कि समय कैसा बीता। यही कारण है कि भारतीय परंपरा में चंद्र-आधारित गणना को केवल खगोलीय व्यवस्था नहीं, बल्कि जीवन-व्यवस्था माना गया है। वह केवल प्रकाश का एक खगोलीय पिंड नहीं, बल्कि भारतीय चेतना में रात्रि का स्वामी, मन का अधिष्ठाता, और काल-गणना का सूक्ष्म नियंता है। सूर्य जहां समय को प्रकट करता है, वहीं चंद्रमा समय को अनुभव कराता है। इसी कारण भारतीय परंपरा में दिन की अपेक्षा रात्रि अधिक रहस्यमयी, साधनात्मक और अंतर्मुखी मानी गई है, और उस रात्रि का अधिपति चंद्रमा है। भारतीय वैदिक दृष्टि में काल केवल घड़ी की सुइयों से मापा जाने वाला भौतिक तत्त्व नहीं है। काल चेतना की गति है, अनुभूति की लय है, और ब्रह्मांडीय श्वास-प्रश्वास का नाम है। इस काल-बोध में चंद्रमा की भूमिका अत्यंत केंद्रीय है। संपूर्ण वैदिक पंचांग, तिथि-गणना, व्रत-उपवास, पर्व-उत्सव, यज्ञ, और यहां तक कि मनुष्य के भावात्मक उतार-चढ़ाव तक चंद्र-चक्र से प्रभावित माने गए हैं। रात्रि भारतीय दर्शन में केवल अंधकार का समय नहीं है। यह विश्राम, अंतर्दृष्टि, ध्यान और साधना का काल है। सूर्य बाह्य जगत को प्रकाशित करता है, जबकि चंद्रमा अंतर्जगत को आलोकित करता है। इसी कारण चंद्रमा को 'निशापति' कहा गया रात्रि का स्वामी। उसकी शीतल किरणें तप्त मन को शांति देती हैं, उग्र भावनाओं को सौम्य बनाती हैं और चेतना को भीतर की ओर मोड़ती हैं।

रात्रि में जब स्थूल कर्म थम जाते हैं, तब सूक्ष्म प्रक्रियाएं सक्रिय होती हैं। योग, तंत्र और आयुर्वेद में रात्रि को अमृत-काल कहा गया है। चंद्रमा की उपस्थिति में यह अमृत-तत्त्व सक्रिय माना जाता है। यही कारण है कि अनेक साधनाएं, व्रत और अनुष्ठान रात्रि में, विशेषकर पूर्णिमा या अमावस्या की रात को किए जाते हैं। भारतीय शास्त्रों में स्पष्ट कहा गया है "चंद्रमा मनसो जातः।" अर्थात मन की उत्पत्ति चंद्र से मानी गई है। मन चंचल है, तरंगों से भरा हुआ है, और चंद्रमा भी निरंतर घटता-बढ़ता रहता है। यह समानता केवल काव्यात्मक नहीं, बल्कि गहन दार्शनिक संकेत है। जैसे-जैसे चंद्रमा की कलाएं बढ़ती हैं, मन में उत्साह, प्रसन्नता और सृजनशीलता का विस्तार होता है। और जैसे-जैसे चंद्र क्षीण होता है, मन अंतर्मुखी, गंभीर और कभी-कभी विषादग्रस्त हो जाता है। इसी कारण मानसिक स्थिति के अध्ययन में चंद्रमा को अत्यंत महत्त्व दिया गया है। भारतीय ज्योतिष में मन, भावना, स्मृति और कल्पना इन सभी का कारक चंद्रमा ही है। भारतीय काल-गणना मूलतः चंद्र-सौर परंपरा पर आधारित है। जहां वर्ष की गणना सूर्य से होती है, वहीं मास, तिथि और पक्ष की गणना चंद्रमा से। एक चंद्र मास, अमावस्या से अमावस्या या पूर्णिमा से पूर्णिमा तक की अवधि है। यही मास धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन का मूल ढांचा बनाता है। तिथि की अवधारणा विशुद्ध रूप से चंद्र-आधारित है। तिथि सूर्य और चंद्र के पारस्परिक कोणीय अंतर पर निर्भर करती है। इसीलिए तिथि स्थिर नहीं होती, वह कभी छोटी तो कभी बड़ी होती है। यह लचीलापन भारतीय काल-बोध की जीवंतता को दर्शाता है, जहां समय को जड़ नहीं बल्कि प्रवाही माना गया है। शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष केवल खगोलीय अवस्थाएं नहीं हैं, वे जीवन के प्रतीक हैं। शुक्ल पक्ष वृद्धि, प्रकाश, आरंभ और आशा का द्योतक है। कृष्ण पक्ष क्षय, अंतर्मुखता, विश्राम और आत्मचिंतन का संकेत देता है। मानव जीवन भी इन्हीं दो पक्षों के बीच झूलता रहता है। व्रत और पर्वों का निर्धारण इसी चंद्र-आधारित तिथि-पद्धति से होता है। एकादशी, पूर्णिमा, अमावस्या, चतुर्दशी ये सभी तिथियां चंद्रमा की विशिष्ट स्थितियों से जुड़ी हैं। इसका कारण यह है कि इन समयों में मन और प्रकृति के बीच विशेष सामंजस्य माना गया है। पुराणों में चंद्रमा को अमृत का अधिपति कहा गया है। समुद्र मंथन की कथा में चंद्रमा अमृत से जुड़ा हुआ है। आयुर्वेद में भी चंद्र को सोम कहा गया है, जो शीतल, पोषक और जीवनदायी है। शरीर में जो तरल तत्त्व हैं रस, रक्त, लसीका उन्हें सोम-तत्त्व से संबंधित माना गया है। रात्रि में, विशेषकर चंद्रप्रकाश में, प्रकृति में एक विशेष प्रकार की शांति और स्निग्धता व्याप्त होती है। यही कारण है कि प्राचीन काल में औषधियों का संग्रह, साधनाएं और कुछ विशेष प्रयोग चंद्र-प्रकाश में किए जाते थे। भारतीय कृषि परंपरा में भी चंद्रमा का विशेष स्थान है। बीज बोने, रोपाई करने और कटाई के लिए चंद्र-स्थितियों को ध्यान में रखा जाता था। माना जाता था कि चंद्रमा की बढ़ती कलाएं रस-संचार को बढ़ाती हैं, जिससे पौधों की वृद्धि बेहतर होती है। यह ज्ञान केवल अनुभवजन्य नहीं था, बल्कि प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व की चेतना से उपजा हुआ था। किसान आकाश को देखकर समय पहचानता था, और चंद्रमा उसका मौन मार्गदर्शक होता था।

योग और तंत्र में रात्रि को विशेष महत्त्व दिया गया है। चंद्र-नाड़ी, जिसे इड़ा कहा जाता है, शीतल और मानसिक ऊर्जा का प्रवाह करती है। जब यह नाड़ी सक्रिय होती है, तब ध्यान, धारणा और समाधि की संभावनाएं बढ़ जाती हैं। पूर्णिमा की रात्रि को मन अधिक ग्रहणशील माना जाता है, जबकि अमावस्या की रात्रि को गहन अंतर्मुखता का समय। इसी कारण ध्यान, जप और मौन-व्रत इन रात्रियों में विशेष फलदायी माने गए हैं। काल-गणना का एक पक्ष मृत्यु और क्षय से भी जुड़ा है। चंद्रमा का क्षय हमें स्मरण कराता है कि प्रत्येक वृद्धि के बाद क्षरण अवश्यंभावी है। यह बोध वैराग्य और विवेक को जन्म देता है। अमावस्या का अंधकार भय का नहीं, बल्कि शून्यता में प्रवेश का संकेत है जहां से पुनः नवसृजन होता है। भारतीय दर्शन में यही चक्रीय दृष्टि है सृष्टि, स्थिति और लय। चंद्रमा इस चक्र का सजीव प्रतीक है। लोक परंपराओं में चंद्रमा केवल देवता नहीं, सखा है। लोकगीतों में, लोरियों में, प्रेम-कथाओं में चंद्रमा साक्षी बनकर उपस्थित रहता है। रात्रि में चंद्र को देखकर मनुष्य अपने दुःख, अपनी आकांक्षाएं और अपने प्रश्न आकाश को सौंप देता है। यह लोक-बोध दर्शाता है कि चंद्रमा मानव जीवन से कितना गहरे जुड़ा हुआ है वह केवल ऊपर आकाश में नहीं, बल्कि भीतर मन में भी विराजमान है।

श्री विक्रम शुभ सम्वत् २०८३ शके १९४८ भाद्रपद शुक्ल पक्ष

दि.१२ सित. से २६ सितम्बर २०२६ तक

दक्षिणायन **शरद ऋतु**

तिथि	वार	समाप्ति घं.	मि.	नक्षत्र	समाप्ति घं.	मि.	योग	समाप्ति घं.	मि.	करण	समाप्ति घं.	मि.	सू.उ. घ.मि.	सू.अ. घ.मि.	चन्द्रराशि प्रवेश	सूर्य स्पष्ट स्टे.टा ५/३०			सितम्बर	**यहाँ पर दिया गया, सभी समय, भा.स्टे.स्टा.में है जो सम्पूर्ण भारत में समान रूप से ग्राह्य रहेगा ।**
०१	शनि	०७	४९	उ०फा	१२	५८	शुभ	१५	१२	बव	०७	४७	०६ १३	१८ ३२	कन्या	०४	२५	०४	12	चन्द्रदर्शन, साम, उपाकर्म, महापात दोष १०।०१ से १३।४७ तक
०२	रवि	०७	११	हस्त	१३	०९	शुक्ल	१३	४६	कौल	०७	०९	१३	३१	तु.२५।२९	०४	२६	०२	13	श्री वराहजयंती, श्री रामदेवजी बीज, श्री विश्वकर्मा जयंती, सूर्य उ.फा. में २१।४७
०३	सोम	०७	१०	चित्रा	१३	५८	ब्रह्म	१२	४९	गर	०७	०७	१४	३०	तुला	०४	२७	०१	14	भ. १९।२१ से, हरितालिका तृतीया व्रत, श्री गणेश चतुथीव्रत, कलंक चतुर्थीव्रत
०४	मंगल	०७	४७	स्वाति	१५	२४	ऐन्द्र	१२	२३	विष्टि	०७	४४	१४	२९	तुला	०४	२७	५९	15	भ. ०७।४४ तक, ऋषि पचंमीव्रत, श्री अंगिरा जयंती, रवियोग १५।२१ तक
०५	बुध	०९	०२	विशा	१७	२५	वैधृति	१२	२५	बाल	०९	००	१४	२८	वृ.१०।५२	०४	२८	५७	16	सर्वार्थसिद्धि १७२३ से, रवियोग १७।२३ से
०६	गुरु	१०	५१	अनु	१९	५६	विष्कु	१२	५२	तैति	१०	४८	१४	२७	वृश्चिक	०४	२९	५६	17	सूर्यषष्ठी, बलदेव ६, कृषक दिवस, सन्तान सप्तमी, मुक्त भरण ७, सूर्य कन्या में ७।५२
०७	शुक्र	१३	०४	ज्येष्ठा	२२	४७	प्रीति	१३	३७	वणि	१३	०१	१५	२६	ध.२२।४७	०५	००	५४	18	भ. १३।०१ से २६।१४ तक, मंगल कर्क में १६।३३
०८	शनि	१५	३०	मूल	२५	४५	आयु	१४	३१	बव	१५	२७	१५	२४	धनु	०५	०१	५३	19	श्रीदुर्गाष्टमी, श्रीराधाष्टमी व्रत, श्री महालक्ष्मी व्रतारम्भ, श्री दधीची जयंती
०९	रवि	१७	५४	पू०षा	२८	३७	सौभा	१५	२५	कौल	१७	५२	१५	२३	धनु	०५	०२	५२	20	श्री चन्द्रनवमी, ज्येष्ठा देवी व्रत, श्री भागवत सप्ताह प्रा., गुरू श्ले.३ में ६।५७
१०	सोम	२०	०४	उ०षा	दि	रा	शोभ	१६	०८	तैति	०६	५९	१६	२२	म.११।१७	०५	०३	५०	21	श्री दशावतार जयंती, तेजादशमी, बुध चित्रा में २२।४४
११	मंगल	२१	४६	उ०षा	०७	०९	अति	१६	३२	वणि	०८	५६	१६	२१	मकर	०५	०४	४९	22	भ. ८।५६ से २१।४३ तक, जलझुलनी डोल एकादशीव्रत (बालनककड़ी)
१२	बुध	२२	५३	श्रवण	०९	१२	सुक	१६	२९	बव	१०	२२	१६	२०	कु.२१।५९	०५	०५	४८	23	श्री वामन जयंती, श्रावण द्वारशी, भुवनेश्वरी जयंती, पंचक प्रा. २१।५७ से
१३	गुरू	२३	२१	धनि	१०	३८	धृति	१५	५७	कौल	११	१०	१७	१९	कुम्भ	०५	०६	४६	24	प्रदोष व्रत, गोत्रिरात्रव्रत प्रा., रवियोग १०।३६ से
१४	शुक्र	२३	१०	शत	११	२५	शूल	१४	५३	गर	११	१८	१७	१८	मी.२९।३५	०५	०७	४५	25	भ. २३।०७ से, श्री अनंतचतुर्दशीव्रत, पार्थिव गणेश विसर्जन
१५	शनि	२२	२१	पू०भा	११	३४	गण्ड	१३	२०	विष्टि	१०	४७	१७	१७	मीन	०५	०८	४४	26	भ. १०।४७ तक, पूर्णिमा-व्रत, भागवत सप्ताह पूर्ण, प्रोष्ठपदी-पार्वण पूर्णिमा श्राद्ध

दि.२१/०९/२०२६ स्टे.टा. ०५/३०

सू	चं	मं	बु	गु	शु	श	रा
०५	०८	०३	०५	०३	०६	११	१०
०३	२७	०१	२२	२३	११	१८	०४
४८	०७	३२	१५	३०	३३	०६	००
२९	३०	०५	३१	११	५५	५४	२२
५८	७२३	३६	८९	११	२४	०४	०३
३९	२३	०७	५३	२४	०६	३०	११
उफा	उषा	पुन	हस्त	श्ले३	स्वा	रेव१	धनि१
-	-	मा	मा	मा	मा	व	व

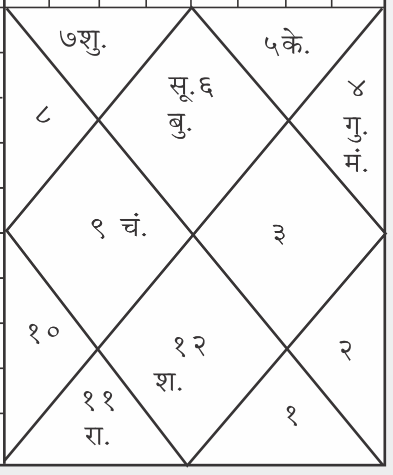

श्री विक्रम शुभ सम्वत् २०८३ शके १९४८ आश्विन कृष्ण पक्ष

दि.२७ सित. से १० अक्टूबर २०२६ तक

दक्षिणायन **शरद/हेमन्त ऋतु**

तिथि	वार	समाप्ति घं.	मि.	नक्षत्र	समाप्ति घं.	मि.	योग	समाप्ति घं.	मि.	करण	समाप्ति घं.	मि.	सू.उ. घ.मि.	सू.अ. घ.मि.	चन्द्रराशि प्रवेश	सूर्य स्पष्ट स्टे.टा ५/३०			सितम्बर अक्टूबर	**यहाँ पर दिया गया, सभी समय, भा.स्टे.स्टा.में है जो सम्पूर्ण भारत में समान रूप से ग्राह्य रहेगा ।**
०१	रवि	२१	०१	उ०भा	११	१०	वृद्धि	११	१९	बाल	०९	४२	०६ १८	१८ १६	मीन	०५	०९	४३	27	चामुर्मास-दुग्ध भक्षण त्याग, प्रतिपदा का श्राद्धा, सूर्य हस्त में १३।११ वाहन मूषक वर्षा मध्यम
०२	सोम	१९	१६	रेवती	१०	१९	ध्रुव व्याघ	०८ ३०	५६ १५	तैति	०८	०९	१८	१५	मे.१०।१९	०५	१०	४१	28	भ. ३०।१४ से, द्वितीया का श्राद्ध
०३	मंगल	१७	१३	अश्वि	०९	०६	हर्षण	२७	२३	विष्टि	१७	१०	१८	१४	मेष	०५	११	४०	29	भ. १७।१० तक, तृतीया का एवं भरणी श्राद्ध, श्री संकष्टचतुर्थी व्रत चन्द्रोदय
०४	बुध	१४	५८	भरणी कृतिका	०७ ३०	३९ ०५	वज्र	२४	२३	बाल	१४	५६	१९	१३	वृष.१३।१६	०५	१२	३९	30	चतुर्थी का श्राद्ध, सर्वार्थसिद्धि ७।२८ से ३०।२ तक
०५	गुरु	१२	३८	रोहिणी	२८	३०	सिद्धि	२१	२१	तैति	१२	३५	१९	१२	वृषभ	०५	१३	३८	01	अक्टूबर माह प्रा., कुमार पंचमी, पंचमी का श्राद्ध १२।३५ के बाद षष्ठी का श्राद्ध
०६	शुक्र	१०	१८	मृग	२६	५८	व्यति	१८	२०	वणि	१०	१५	१९	११	मि.१५।३९	०५	१४	३७	02	भ. १०।१५ से २१।०७ तक, सप्तमी का श्राद्ध, रवियोग २६।५५ तक
०७	शनि	०८	०३	आर्द्रा	२५	३२	वरिय	१५	२४	बव	०८	००	२०	१०	मिथुन	०५	१५	३६	03	कालाष्टमी, अष्टमी का श्राद्ध, श्री महालक्ष्मीव्रत पूर्ण, जीवत्पुत्रिका व्रत
०८	शनि	२९	५५	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	र्क.१८।३४	०५	१६	३५	00	अष्टमी का क्षय
०९	रवि	२७	५७	पुनर्वसु	२४	१६	परिघ	१२	३५	तैति	१६	५२	२०	०९	००	००	००	००	04	मातृनवमी, सौभाग्यवती एवं नवमी का श्राद्ध, सर्वार्थसिद्धि २४।१५ से
१०	सोम	२६	१०	पुष्य	२३	१२	शिव	०९	५४	वणि	१४	५९	२०	०९	कर्क	०५	१७	३४	05	भ. १४।५९ से २६।०८ तक, दशमी का श्राद्ध, सर्वार्थसिद्धि २३।०९ तक
११	मंगल	२४	३७	आश्ले	२२	२०	सिद्ध साध्य	०७ २९	२३ ०२	बव	१३	१९	२१	०८	सिं.२२।२०	०५	१८	३३	06	इन्दिरा एकादशीव्रत (कलाकंद-मिठाई), एकादशी का श्राद्ध, सर्वार्थ सिद्धी ०६।२४ से १२।१७
१२	बुध	२३	१९	मघा	२१	४३	शुभ	२६	५४	कौल	११	५४	२१	०७	सिंह	०५	१९	३३	07	द्वादशी एवं सन्यासियों को श्राद्ध, मघा श्राद्ध, महापात दोष २८।१८ से
१३	गुरू	२२	१९	पू०फा	२१	२३	शुक्ल	२५	०१	गर	१०	४४	२२	०६	क.२७।२०	०५	२०	३२	08	भ. २२।१६ से, प्रदोष व्रत, शिवरात्रि व्रत, त्रयोदशी का श्राद्ध, गुरू श्ले. ४ में
१४	शुक्र	२१	३८	उ०फा	२१	२२	ब्रह्म	२३	२३	विष्टि	०९	५३	२२	०५	कन्या	०५	२१	३१	09	भ. ०९।५३ तक, श्री कात्यायनी जयंती, केवल शस्त्राग्निविषजल व दुर्घटना में मृतको का श्राद्ध
३०	शनि	२१	२२	हस्त	२१	४५	ऐन्द्र	२२	०५	चतु	०९	२५	२२	०४	कन्या	०५	२२	३०	10	सर्वपितृ अमावस्या, अमा.का श्राद्ध, शनैश्चरी अमावस्या, पितृपक्ष पूर्ण, वाहन अश्व वर्षा म.

दि.०५/१०/२०२६ स्टे.टा. ०५/३०

सू	चं	मं	बु	गु	शु	श	रा
०५	०३	०३	०६	०३	०६	११	१०
१७	०६	०९	११	२६	१४	१७	०३
३२	२४	४६	३४	०३	१२	०१	१५
३०	२८	१८	०६	४६	०५	५३	५१
५९	७३५	३४	७३	१०	०५	०४	०३
०६	४०	२४	१२	१८	१२	२८	११
हस्त	पुष्य	पुष्य	स्वा.	श्ले३	स्वा.	रेव१	धनि३
-	-	मा	मा	मा	व	व	व

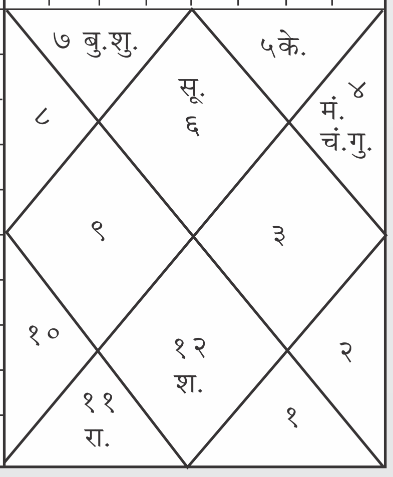

विक्रम पचांग

विक्रम सम्वत् 2083

‘रौद्र’ नाम सम्वत्सर | • कलि सम्वत् 5127 • सृष्टि आरंभ 1955885127 | • राजा- बृहस्पति • मंत्री - मंगल

11 अक्टूबर से 26 अक्टूबर 2026

आश्विन शुक्ल पक्ष (शरद/हेमंत ऋतु)

27 अक्टूबर से 09 नवम्बर 2026

कार्तिक कृष्ण पक्ष (हेमंत ऋतु)

11 अक्टूबर प्रतिपदा शारदीय नवरात्र आरम्भ	18 अक्टूबर अष्टमी अष्टमी पूजा	25 अक्टूबर चतुर्दशी शरद पूर्णिमा	रविवार		01 नवम्बर सप्तमी अहोई अष्टमी व्रत	08 नवम्बर चतुर्दशी दिपावली महालक्ष्मी पूजन
12 अक्टूबर द्वितीया	19 अक्टूबर अष्टमी दुर्गा अष्टमी व्रत	26 अक्टूबर पूर्णिमा महर्षि वाल्मीकी जयंती	सोमवार		02 नवम्बर अष्टमी	09 नवम्बर अमावस्या गोवर्धन पूजा सोमवती अमावस्या
13 अक्टूबर तृतीया	20 अक्टूबर नवमी विजयादशमी		मंगलवार	27 अक्टूबर प्रतिपदा द्वितीया	03 नवम्बर नवमी	
14 अक्टूबर चतुर्थी	21 अक्टूबर दशमी		बुधवार	28 अक्टूबर तृतीया	04 नवम्बर दशमी	
15 अक्टूबर पंचमी	22 अक्टूबर एकादशी पापांकुशा एकादशी व्रत		गुरुवार	29 अक्टूबर चतुर्थी करवाचौथ	05 नवम्बर एकादशी रमा एकादशी	
16 अक्टूबर षष्ठी	23 अक्टूबर द्वादशी		शुक्रवार	30 अक्टूबर पंचमी	06 नवम्बर द्वादशी प्रदोष व्रत, धनतेरस	
17 अक्टूबर सप्तमी	24 अक्टूबर त्रयोदशी		शनिवार	31 अक्टूबर षष्ठी श्रीमती इंदिरा गाँधी पुण्य तिथि	07 नवम्बर त्रयोदशी रूप चतुर्दशी	

क्षण और अनंत के बीच : नारद

कालो न बाधते भक्तं, भक्तिर्बाधति कालकम्। नारदस्य हृदि ज्ञातं, विष्णुर्नित्यो यतो ध्रुवम्॥

काल भक्त को बाँध नहीं सकता, अपितु सच्ची भक्ति ही काल को बाँध लेती है। यह सत्य नारद ने अपने हृदय में जाना,क्योंकि विष्णु शाश्वत हैं, अटल हैं और काल से परे हैं।

भारतीय ऋषि परंपरा में नारद एक ऐसे चरित्र हैं जिन्हें केवल देवर्षि, संदेशवाहक या वीणाधारी मुनि के रूप में देखना उनके वास्तविक दार्शनिक कद को छोटा करना होगा। नारद वस्तुतः कालबोध के सबसे जीवंत प्रतीक हैं। वे काल को न तो केवल गणना के रूप में समझते हैं, न ही उससे भय खाते हैं। नारद का समूचा व्यक्तित्व, उनकी यात्राएँ, उनके संवाद और उनकी कथाएँ समय के अनुभव, उसकी सापेक्षता और उसकी सीमा को उजागर करती हैं। नारद कहीं भी स्थिर नहीं हैं वे निरंतर गति में हैं, और यही गति उन्हें काल के भीतर रहते हुए भी काल का साक्षी बनाती है। भारतीय पुराण और स्मृति परंपरा में नारद विष्णु और कालबोध से जुड़े प्रसंग किसी एक ग्रंथ तक सीमित नहीं हैं, बल्कि वे अनेक ग्रंथों में अलग-अलग रूपों में प्रकट होते हैं। इन प्रसंगों का उद्देश्य कथा कहना नहीं, बल्कि काल की सापेक्षता और चेतना की भूमिका को स्पष्ट करना है। भागवत पुराण में नारद का चरित्र सर्वाधिक सशक्त रूप में उभरता है। यहाँ नारद केवल कथावाचक नहीं, बल्कि काल के साक्षी हैं। राजा परीक्षित और शुक संवाद की पृष्ठभूमि में नारद की परंपरा यह स्पष्ट करती है कि जीवन क्षणभंगुर है और काल के भीतर भक्ति ही एकमात्र स्थिर तत्व है। भागवत में विष्णु को काल का अधिष्ठाता बताया गया है, जबकि नारद उस कालबोध को लोकों में प्रसारित करने वाले ऋषि हैं। विष्णु पुराण में युग, मन्वंतर और कल्प की चर्चा के साथ नारद के संवाद मिलते हैं, जहाँ वे राजाओं और ऋषियों को बताते हैं कि युग परिवर्तन केवल समय का परिवर्तन नहीं, बल्कि धर्म और अधर्म के संतुलन का संकेत है। यहाँ विष्णु काल के नियंता हैं और नारद उसके प्रवक्ता।

नारद का जन्म ही इस बात का संकेत देता है कि वे सामान्य काल-बंधन में नहीं आते। वे ब्रह्मा के मानस पुत्र हैं। मानस-पुत्र का अर्थ केवल इतना नहीं कि वे बिना गर्भ के उत्पन्न हुए, बल्कि यह भी कि वे शारीरिक समयक्रम से परे एक चेतन सत्ता हैं। ब्रह्मा स्वयं सृष्टि और काल-गणना के अधिष्ठाता हैं। ऐसे में नारद का उनसे उत्पन्न होना यह संकेत देता है कि नारद काल की संरचना को भीतर से जानते हैं। वे सृष्टि के आरंभिक साक्षी हैं और बार-बार उसके प्रवाह को देखने वाले भी। नारद के जीवन में सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि वे त्रिकालदर्शी कहे जाते हैं, किंतु उनका त्रिकालदर्शन भविष्य जानने की भविष्यवाणी नहीं है। वे समय को पहले से घटित मानकर नहीं देखते, बल्कि वे यह जानते हैं कि काल संभावनाओं से भरा हुआ प्रवाह है। इसलिए वे अनेक कथाओं में ऐसी बातें कहते हैं जो सुनने वाले को भ्रमित कर देती हैं, किंतु बाद में वही कथन काल के सत्य के रूप में प्रकट होते हैं। नारद की वाणी अक्सर कटु, विडंबनापूर्ण या व्यंग्यपूर्ण लगती है, पर वह सदैव काल की गहरी समझ से निकली होती है। नारद और कालबोध की सबसे प्रसिद्ध कथा विष्णु से जुड़ी हुई है। इस कथा में नारद विष्णु से माया के स्वरूप को समझने की इच्छा प्रकट करते हैं। विष्णु उन्हें कुछ समय प्रतीक्षा करने को कहते हैं और जल लाने भेजते हैं। नारद जैसे ही जल लेने जाते हैं, वे एक अन्य लोक में प्रवेश कर जाते हैं। वहाँ उनका विवाह होता है, परिवार बसता है, पुत्र जन्म लेते हैं, राज्य स्थापित होता है। वे सुख-दुःख, हर्ष-शोक, सफलता-विफलता सब कुछ अनुभव करते हैं। वर्षों नहीं, बल्कि दशकों बीत जाते हैं। अंततः एक प्राकृतिक आपदा में सब कुछ नष्ट हो जाता है। जब नारद विलाप करते हुए पुनः विष्णु के पास लौटते हैं, तब विष्णु पूछते हैं “जल कहाँ है?” और नारद को ज्ञात होता है कि वास्तविक जगत में तो कुछ क्षण भी नहीं बीते।

यह कथा भारतीय कालबोध की आधारशिला है। यहाँ नारद यह नहीं सीखते कि समय भ्रम है, बल्कि यह सीखते हैं कि समय का अनुभव चेतना पर निर्भर करता है। जो चेतना सीमित है, उसके लिए समय लंबा और भारी है; जो चेतना व्यापक है, उसके लिए समय क्षण मात्र है। नारद इस अनुभव के बाद पहले जैसे नहीं रहते। वे समझ जाते हैं कि काल बाहर नहीं, भीतर घटित होता है। यही कारण है कि वे संसार में रहते हुए भी उससे बँधते नहीं। नारद का कालबोध उन्हें अहंकार से मुक्त करता है। अनेक कथाओं में नारद का अभिमान दिखाया जाता है, पर वास्तव में वह अभिमान भी एक शिक्षात्मक उपकरण है। जब नारद स्वयं को श्रेष्ठ भक्त मानते हैं और विष्णु उन्हें किसी साधारण गृहस्थ या स्त्री भक्त से मिलवाते हैं, तो नारद के लिए वह केवल विनम्रता का पाठ नहीं होता, बल्कि यह भी बोध होता है कि काल में भक्ति का मूल्य प्रदर्शन से नहीं, निरंतरता से तय होता है। जो व्यक्ति जीवन के सामान्य समयक्रम में ईश्वर को स्मरण करता है, वह काल के प्रवाह में भी स्थिर रहता है। नारद की यात्राएँ स्वयं काल की सीमाओं को तोड़ती हैं। वे स्वर्ग, पृथ्वी, पाताल तीनों लोकों में निर्बाध विचरण करते हैं। यह विचरण केवल भौगोलिक नहीं है, यह कालिक भी है। नारद अनेक युगों के पात्रों से संवाद करते हैं। वे सतयुग के आदर्शों को कलियुग के पतन से जोड़कर देखते हैं। उनके लिए युग परिवर्तन कोई अचानक घटना नहीं, बल्कि चेतना का क्रमिक क्षरण या उत्कर्ष है। इसलिए नारद किसी युग को पूर्णतः अच्छा या बुरा नहीं कहते। वे जानते हैं कि काल हर युग में समान है, बदलती है तो केवल मानव चेतना। महाभारत में नारद की उपस्थिति यह दर्शाती है कि वे इतिहास के नहीं, बल्कि इतिहास के भीतर बहते समय के साक्षी हैं। जब वे राजाओं को भविष्य के युद्धों के संकेत देते हैं, तब उनका उद्देश्य भय पैदा करना नहीं होता, बल्कि यह बताना होता है कि कर्म का परिणाम काल में अवश्य प्रकट होता है। काल दंड नहीं देता, वह केवल कर्म को प्रकट करता है। नारद इस सत्य को जानते हैं और बार-बार मनुष्यों को आगाह करते हैं कि समय को टाला जा सकता है, कर्म को नहीं। नारद का संबंध संगीत से भी कालबोध से जुड़ा है। उनकी वीणा केवल भक्ति का साधन नहीं, बल्कि लय का प्रतीक है। लय ही काल का अनुभव कराती है। जब लय टूटती है, तब अव्यवस्था आती है। नारद की वीणा यह सिखाती है कि जीवन में यदि आंतरिक लय बनी रहे, तो बाहरी काल की उथल-पुथल मनुष्य को विचलित नहीं कर सकती। संगीत क्षण में घटित होता है, पर उसका प्रभाव स्मृति में लंबे समय तक रहता है।

श्री विक्रम शुभ सम्वत् २०८३ शके १९४८ आश्विन शुक्ल पक्ष

दि.११ अक्टू. से २६ अक्टूबर २०२६ तक

दक्षिणायन **शरद/हेमन्त ऋतु**

तिथि	वार	समाप्ति		नक्षत्र	समाप्ति		योग	समाप्ति		करण	समाप्ति		सू.उ. घ.मि.	सू.अ. घ.मि.	चन्द्रराशि प्रवेश	सूर्य स्पष्ट स्टे.टा ५/३०			अक्टूबर	यहाँ पर दिया गया, सभी समय, भा.स्टे.स्टा.में है जो सम्पूर्ण भारत में समान रूप से ग्राहय रहेगा ।
		घं.	मि.		घं.	मि.		घं.	मि.		घं.	मि.								
०१	रवि	२१	३४	चित्रा	२२	३५	वैधृति	२१	०८	किंस्तु	०९	२२	०६ २३	१८ ०३	तु.१०।०६	०५	२३	३०	11	शारदीय नवरात्र प्रा. श्री अग्रसेन जयंती, मातामह का श्राद्ध
०२	सोम	२२	१६	स्वाति	२३	५५	विष्कु	२०	३५	बाल	०९	४८	२३	०२	तुला	०५	२४	२९	12	चन्द्रदर्शन, बुध विशाखा में १८।५०
०३	मंगल	२३	३१	विशा	२५	४५	प्रीति	२०	२६	तैति	१०	४७	२४	०१	वृ.१९।१५	०५	२५	२८	13	रवियोग २५।४४ से
०४	बुध	२५	१६	अनु	२८	०६	आयु	२०	४१	वणि	१२	१७	२४	००	वृश्चिक	०५	२६	२८	14	भ. १२।१७ से २५।१४ तक, श्री विनायक चतुर्थीव्रत, शुक्रास्त पश्चिम में
०५	गुरु	२७	२८	ज्येष्ठा	दि	रा	सौभा	२१	१७	बव	१४	१७	२४	१७ ५९	वृश्चिक	०५	२७	२७	15	श्री ललिता पंचमी व्रत
०६	शुक्र	२९	५७	ज्येष्ठा	०६	५०	शोभ	२२	०८	कौल	१६	३९	२५	५९	ध.०६।५०	०५	२८	२७	16	श्री सरस्वती आवाहन ६।४८ से, रवियोग ६।४८ से
०७	शनि	दि	रा	मूल	०९	४९	अति	२३	०५	गर	१९	१२	२५	५८	धनु	०५	२९	२६	17	श्री सरस्वती पूजन ९।४७ से, सूर्य तुला में १९।५१, मंगल आश्लेषा में
०७	रवि	०८	३१	पू०षा	१२	५१	सुक	२२	५८	वणि	०८	२८	२६	५७	म.१९।३५	०६	००	२६	18	भ. ८।२८ से २१।४२ तक, सवार्थ सिद्धी १२।५० से ३०।३८
०८	सोम	१०	५४	उ०षा	१५	४१	धृति	२४	३७	बव	१०	५२	२६	५६	मकर	०६	०१	२५	19	श्री दुर्गाष्टमी, महाष्टमी, श्री सरस्वती विसर्जन १५।३९ बाद, महानवमी
०९	मंगल	१२	५३	श्रवण	१८	०४	शूल	२४	५२	कौल	१२	५१	२७	५५	मकर	०६	०२	२५	20	महानवमी हो, नवरात्र उत्थापन, दशहरा (विजयादशमी)
१०	बुध	१४	१५	धनि	१९	५०	गण्ड	२४	३५	गर	१४	१२	२७	५४	कु.०७।००	०६	०३	२५	21	भ. २६।३६ से, श्री माधवाचार्य जयंती, पंचक प्रा. ७।०० से
११	गुरू	१४	५१	शत	२०	५१	वृद्धि	२३	४२	विष्टि	१४	४८	२८	५४	कुम्भ	०६	०४	२४	22	भ. १४।४८ तक, पापाकुंशा एकादशीव्रत (फूटकाचरी)
१२	शुक्र	१४	३९	पू०भा	२१	०५	ध्रुव	२२	११	बाल	१४	३६	२८	५३	मी.१५।०६	०६	०५	२४	23	प्रदोष व्रत, वक्री शुक्र चित्रा में २७।१७, रवियोग २१।४ से २७।१६ तक
१३	शनि	१३	४०	उ०भा	२०	३४	व्याघ	२०	०३	तैति	१३	३७	२९	५२	मीन	०६	०६	२४	24	सूर्य स्वाति में १२।५०, बुध वक्री १२।४४, रवियोग २०।३२ से
१४	रवि	११	५९	रेवती	१९	२४	हर्षण	१७	२४	वणि	११	५६	२९	५१	मे.१९।२४	०६	०७	२३	25	भ. ११।५६ से २२।५३ तक, श्री शरदपूर्णिमा-सत्यव्रत, कोजागर व्रत
१५	सोम	०९	४४	अश्वि	१७	४४	वज्र	१४	१९	बव	०९	४२	३०	५१	मेष	०६	०८	२३	26	सोमवती पूर्णिमा, श्री बाल्मीकि जयंती, कार्तिक स्नान प्रा.

दि.१९/१०/२०२६ स्टे.टा. ०५/३०

सू	चं	मं	बु	गु	शु	श	रा
०६	०९	०३	०६	०३	०६	११	१०
०१	०४	१७	२५	२८	०९	१५	०२
२३	५६	३५	०७	१९	३४	५७	३१
२९	२८	२३	१२	२९	०३	०३	२२
५९	७२१	३२	३१	०८	३३	०४	०३
३६	३७	२४	३५	५५	०८	२२	११
चित्रा	उषा	श्ले	विशा	श्ले४	स्वा.	उभा४	धनि३
-	-	मा	मा	मा	व	व	व

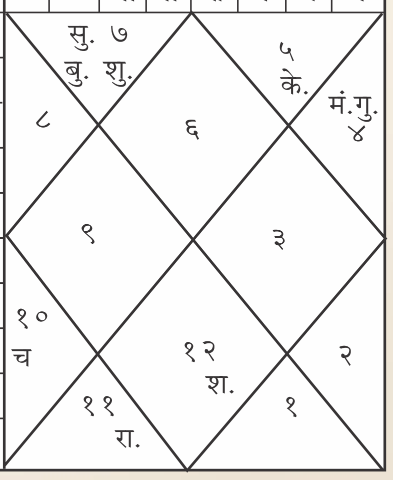

श्री विक्रम शुभ सम्वत् २०८३ शके १९४८ कार्तिक कृष्ण पक्ष

दि.२७ अक्टू. से ०९ नवम्बर २०२६ तक

दक्षिणायन **हेमन्त ऋतु**

तिथि	वार	समाप्ति		नक्षत्र	समाप्ति		योग	समाप्ति		करण	समाप्ति		सू.उ. घ.मि.	सू.अ. घ.मि.	चन्द्रराशि प्रवेश	सूर्य स्पष्ट स्टे.टा ५/३०			अक्टूबर नवम्बर	यहाँ पर दिया गया, सभी समय, भा.स्टे.स्टा.में है जो सम्पूर्ण भारत में समान रूप से ग्राहय रहेगा ।
		घं.	मि.		घं.	मि.		घं.	मि.		घं.	मि.								
०१	मंगल	०७	०४	भरणी	१५	४२	सिद्धि	१०	५३	कौल	०७	०२	०६ ३०	१७ ५०	वृ.२१।०७	०६	०९	२३	27	कार्तिक मास में द्विदल (दाल) भक्षण त्याग, सर्वार्थसिद्धि १५।४० से
०२	मंगल	२८	१०	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	00	द्वितीय का क्षय
०३	बुध	२५	०९	कृति	१३	२८	व्यति वरिया	०७ २७	१८ ४०	वणि	१४	३७	३१	४९	वृषभ	०६	१०	२३	28	भ. १४।३७ से २५।०७ तक, सर्वार्थसिद्धि दिन-रात
०४	गुरु	२२	१३	रोहि	११	१४	परिघ	२४	०६	बव	११	३८	३१	४९	मि.२२।०९	०६	११	२३	29	करकरवा ४ श्री संकष्टातुर्थी व्रत चन्द्रोदय २०।३३
०५	शुक्र	१९	२८	मृग	०९	०७	शिव	२०	४१	कौल	०८	४३	३२	४८	मिथुन	०६	१२	२२	30	-
०६	शनि	१७	००	आर्द्रा पुनर्वसु	०७ २९	१४ ४२	सिद्ध	१७	३१	वणि	१६	५८	३२	४७	कर्क.२४।००	०६	१३	२२	31	भ. १६।५८ से २७।५२ तक
०७	रवि	१४	५४	पुष्य	२८	३३	साध्य	१४	३९	बव	१४	५२	३३	४७	कर्क	०६	१४	२२	01	कालाष्टमी, अहोई अष्टमी (काली पूजा) नवम्बर मास. प्रा.
०८	सोम	१३	१३	आश्ले	२७	४९	शुभ	१२	०६	कौल	१३	११	३३	४६	सिं.२७।४९	०६	१५	२२	02	वक्री बुध स्वा में. २९।५८, महापात दोष २०।१८ से २४।३६ तक
०९	मंगल	११	५७	मघा	२७	२९	शुक्ल	०९	५४	गर	११	५५	३४	४६	सिंह	०६	१६	२२	03	भ. २३।२६ से
१०	बुध	११	०६	पू०फा	२७	३३	ब्रह्म ऐन्द्र	०८ ३०	०१ २६	विष्टि	११	०३	३४	४५	सिंह	०६	१७	२३	04	भ. ११।०३ तक
११	गुरू	१०	३८	उ०फा	२७	५८	वैधृति	२९	०९	बाल	१०	३६	३५	४४	क.०९।३७	०६	१८	२३	05	रमाएकादशी (केला) गोवत्स द्वादशी
१२	शुक्र	१०	३३	हस्त	२८	४३	विष्कु	२८	१०	तैति	१०	३१	३६	४४	कन्या	०६	१९	२३	06	प्रदोष व्रत, धनतेरस, यम के निमीत्त दिपदान
१३	शनि	१०	५१	चित्रा	२९	५२	प्रीति	२७	२७	वणि	१०	४८	३६	४३	तु.१७।१८	०६	२०	२३	07	रूपचौदस, भद्रा १०।४८ से २३।०५, धनवन्तरी जयंती
१४	रवि	११	३१	स्वाति	दि	रा	आयु	२७	०३	शकु	११	२८	३७	४३	तुला	०६	२१	२३	08	श्री महालक्ष्मी पूजन, दीपावली प्रदोष काल में १७।४१ से १९।५३
३०	सोम	१२	३४	स्वाति	०७	२७	सौभा	२६	५७	नाग	१२	३२	३७	४३	वृश्चि.२६।५१	०६	२२	२३	09	सोमवती अमावस्या, १२।३२ के बाद श्री गोवर्द्धनपुजा अन्नकुट महोत्सव, गोक्रीड़ा

दि.०९/११/२०२६ स्टे.टा. ०५/३०

सू	चं	मं	बु	गु	शु	श	रा
०६	०६	०३	०६	०४	०५	११	१०
२२	१९	२८	१२	००	२९	१४	०१
२१	००	१८	५२	५९	०८	३५	२४
४१	४८	२९	४६	०५	२८	११	३५
६०	७४२	२८	४७	०६	११	०३	०३
१७	०१	१६	३२	०३	०६	११	११
विशा	स्वा	श्ले	स्वा	मघा१	चित्रा	उभा४	धनि३
-	-	मा	व	मा	व	व	व

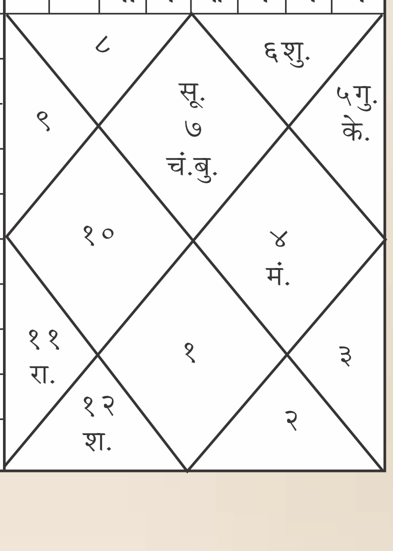

विक्रम पंचांग

विक्रम सम्वत् 2083

‘रौद्र’ नाम सम्वत्सर • कलि सम्वत् 5127 • सृष्टि आरंभ 1955885127 • राजा- बृहस्पति • मंत्री - मंगल

10 नवम्बर से 24 नवम्बर 2026

कार्तिक शुक्ल पक्ष (हेमंत ऋतु)

25 नवम्बर से 08 दिसम्बर 2026

अगहन कृष्ण पक्ष (हेमंत ऋतु)

	15 षष्ठी नवम्बर राष्ट्रीय जनजाति गौरव दिवस भगवान बिरसा मुण्डा जयंती	**22** त्रयोदशी नवम्बर प्रदोष व्रत	**रविवार**		**29** पंचमी नवम्बर	**06** त्रयोदशी दिसम्बर प्रदोष व्रत
	16 सप्तमी नवम्बर	**23** चतुर्दशी नवम्बर वैकुण्ठ चतुर्दशी (हरिहर मिलन)	**सोमवार**		**30** षष्ठी सप्तमी नवम्बर	**07** चतुर्दशी दिसम्बर
10 प्रतिपदा नवम्बर	**17** अष्टमी नवम्बर	**24** पूर्णिमा नवम्बर गुरूनानक जयंती	**मंगलवार**		**01** अष्टमी दिसम्बर कालभैरव अष्टमी	**08** अमावस्या दिसम्बर अमावस्या
11 द्वितीया नवम्बर भाई दूज	**18** नवमी नवम्बर		**बुधवार**	**25** प्रतिपदा नवम्बर	**02** नवमी दिसम्बर	
12 तृतीया नवम्बर	**19** दशमी नवम्बर		**गुरुवार**	**26** द्वितीया नवम्बर	**03** दशमी दिसम्बर डॉ. राजेन्द्र प्रसाद जयंती	
13 चतुर्थी नवम्बर	**20** एकादशी नवम्बर देव प्रबोधनी एकादशी (स्मार्त)		**शुक्रवार**	**27** तृतीया नवम्बर	**04** एकादशी दिसम्बर उत्पन्ना एकादशी	
14 पंचमी नवम्बर सौभाग्य पंचमी	**21** द्वादशी नवम्बर देव प्रबोधनी एकादशी (वैष्णव)		**शनिवार**	**28** चतुर्थी नवम्बर	**05** द्वादशी दिसम्बर	

ऋषि मार्कंडेय और महाकाल

मृत्युञ्जयाय नमः शिवाय, कालान्तकाय नमो नमः। मार्कण्डेयप्राणरक्षार्थं, प्रादुर्भूतो महेश्वरः।।

मृत्यु को जीतने वाले शिव को नमस्कार है, काल का भी अंत करने वाले शिव को बार-बार प्रणाम है। मार्कंडेय के प्राणों की रक्षा के लिए महेश्वर स्वयं प्रकट हुए।

मार्कंडेय ऋषि का नाम आते ही सनातन परंपरा में एक ऐसा प्रसंग जीवित हो उठता है, जहाँ मृत्यु, समय और भय आमने-सामने खड़े दिखाई देते हैं, और उनके बीच एक किशोर तपस्वी अडिग भाव से खड़ा रहता है। यह कथा केवल दीर्घायु होने की नहीं है, बल्कि काल के सत्य को पहचानने की कथा है। मार्कंडेय न तो काल से भागते हैं, न उसे जीतने का दावा करते हैं; वे उसे पहचानते हैं और यही पहचान उन्हें महाकाल तक ले जाती है। शिव पुराण में शिव का कालांतक स्वरूप स्पष्ट होता है, जहाँ वे यम को रोककर यह स्थापित करते हैं कि काल का नियम शरीर पर लागू है, आत्मा पर नहीं। मार्कंडेय पुराण में यही प्रसंग आगे चलकर काल, प्रलय और चिरंजीविता के बोध से जुड़ता है। मार्कंडेय का जन्म स्वयं काल की सीमा का संकेत लेकर आता है। उनके माता-पिता मृकण्डु ऋषि और मरुद्वती ने कठोर तप किया था। तप के फलस्वरूप उन्हें यह विकल्प मिला कि वे या तो अल्पायु किंतु महान पुत्र पाएं, या दीर्घायु किंतु साधारण पुत्र। मृकण्डु ने बिना हिचक अल्पायु किंतु तेजस्वी पुत्र का चयन किया। यहीं से मार्कंडेय के जीवन में काल एक अनिवार्य उपस्थिति बन जाता है। उनके जन्म के साथ ही यह निश्चित हो जाता है कि उनका शरीर सीमित समय के लिए है। पर यही सीमा आगे चलकर उन्हें असीम की ओर ले जाती है। बाल्यावस्था से ही मार्कंडेय का झुकाव संसार की ओर नहीं, बल्कि तप और ध्यान की ओर होता है। वे खेल-कूद और सामाजिक आकर्षणों से दूर रहते हैं। उनके भीतर एक अजीब-सी जागरूकता है जैसे उन्हें अपने जीवन की अवधि का बोध हो। यह बोध भय में नहीं बदलता, बल्कि गहन एकाग्रता में बदल जाता है। वे शिव की उपासना करते हैं, पर यह उपासना किसी वरदान की माँग नहीं है। यह उपासना उस सत्ता की ओर झुकाव है जो जन्म-मृत्यु के पार है।

जब मार्कंडेय की आयु पूरी होने का समय आता है, तब यह केवल एक व्यक्तिगत घटना नहीं रहती। यह क्षण काल के प्रतिनिधि यम और महाकाल शिव के बीच का साक्षात् सामना बन जाता है। यम अपने पाश के साथ आते हैं। उनके लिए यह एक नियत कर्म है जो जन्मा है, उसे जाना ही है। यम दंडदाता नहीं, व्यवस्था के पालनकर्ता हैं। इस बिंदु पर भारतीय कालबोध अत्यंत सूक्ष्म हो जाता है। मृत्यु कोई दुष्ट शक्ति नहीं, बल्कि काल की स्वाभाविक प्रक्रिया है। मार्कंडेय उस समय शिवलिंग से लिपटे होते हैं। यह दृश्य अत्यंत प्रतीकात्मक है। एक ओर यम हैं। काल के नियम का प्रतिनिधित्व करते हुए। दूसरी ओर शिवलिंग से लिपटा हुआ एक बालकजो स्वयं को उस सत्ता से जोड़ चुका है जो काल का भी काल है। यम जब पाश फेंकते हैं, तो वह केवल मार्कंडेय को नहीं, शिवलिंग को भी स्पर्श करता है। यही वह क्षण है जब शिव प्रकट होते हैं महाकाल के रूप में। यह प्रसंग केवल एक भक्त की रक्षा की कथा नहीं है। यह काल की सीमा और उसकी असीमता का साक्षात् दर्शन है। शिव यम को रोकते हैं। कुछ परंपराओं में वे यम का संहार करते हैं, कुछ में उन्हें शिक्षा देते हैं। पर मूल भाव यही है कि काल का नियम आत्मा पर लागू नहीं होता। शरीर नश्वर है, पर जो शिव में स्थित हो गया, वह काल के दायरे में नहीं रहता। यह कथा "शिव पुराण" में विस्तार से मिलती है और महाकाल की अवधारणा को स्पष्ट करती है। महाकाल का अर्थ केवल “महान काल” नहीं है। इसका अर्थ है वह सत्ता जिसके भीतर काल घटित होता है। शिव यहाँ मृत्यु को नकारते नहीं, बल्कि उसे सीमित करते हैं। यम को यह बोध कराया जाता है कि वे भी एक व्यवस्था के अंग हैं, और उस व्यवस्था का मूल केंद्र शिव हैं। इसीलिए शिव को कालों का भी काल कहा गया है। मार्कंडेय की कथा में यह भाव अत्यंत स्पष्ट हो जाता है कि भक्ति मृत्यु को रोकती नहीं, मृत्यु के भय को नष्ट कर देती है। इस प्रसंग का उल्लेख "मार्कंडेय पुराण" में भी मिलता है, जहाँ मार्कंडेय स्वयं काल और प्रलय के साक्षी के रूप में आगे बढ़ते हैं। मार्कंडेय पुराण में एक और अत्यंत महत्वपूर्ण प्रसंग आता है प्रलय का। महाप्रलय के समय जब समस्त सृष्टि जलमग्न हो जाती है, तब मार्कंडेय एक वटवृक्ष के पत्ते पर एक बालक को लेटे हुए देखते हैं। वह बालक विष्णु हैं। यह दृश्य समय की सीमा को पूरी तरह तोड़ देता है। एक ओर प्रलय समय का पूर्ण विराम। दूसरी ओर बालक विष्णु नव सृष्टि की संभावना। यहाँ मार्कंडेय केवल दर्शक नहीं हैं। वे प्रलय को देख रहे हैं, पर उससे नष्ट नहीं हो रहे। यह इस बात का संकेत है कि जिन्होंने काल के सत्य को पहचान लिया, वे प्रलय के भी साक्षी बन सकते हैं। मार्कंडेय पुराण का यह प्रसंग बताता है कि मार्कंडेय का जीवन केवल एक मृत्यु-विजय तक सीमित नहीं है। वे युगों तक जीवित रहते हैं, प्रलयों को देखते हैं, सृष्टियों को उगते-डूबते देखते हैं। यही कारण है कि उन्हें चिरंजीवी कहा जाता है।

महाभारत में भी मार्कंडेय का उल्लेख मिलता है, जहाँ वे पांडवों को उपदेश देते हैं। वे उन्हें बताते हैं कि समय किसी के पक्ष में स्थायी नहीं रहता। राज्य, वैभव, सुख सब काल के साथ बदलते हैं। पर धर्म और सत्य ऐसे तत्त्व हैं जो काल के प्रवाह में भी टिके रहते हैं। यहाँ मार्कंडेय का स्वर किसी भविष्यवक्ता का नहीं, बल्कि एक ऐसे साक्षी का है जिसने समय के अनेक चक्र देखे हैं। यह प्रसंग ,"महाभारत" में मार्कंडेय की गहराई को उजागर करता है। मार्कंडेय की दृष्टि में महाकाल का अर्थ भय नहीं है। उनके लिए महाकाल आश्रय हैं। शिव की उपासना उन्हें मृत्यु से बचाने का साधन नहीं, बल्कि मृत्यु को समझने का माध्यम बनती है। यही कारण है कि शिव के प्रकट होने के बाद भी मार्कंडेय अमरता का अहंकार नहीं पालते। वे जानते हैं कि अमरता शरीर की नहीं, बोध की होती है। शरीर यदि बच भी गया, तो उसका मूल्य तभी है जब चेतना कालातीत हो। मार्कंडेय और महाकाल की कथा भारतीय समय-दृष्टि को एक अत्यंत महत्वपूर्ण संकेत देती है। यहाँ समय कोई दुश्मन नहीं, बल्कि शिक्षक है। जो समय से डरता है, वह बंधन में पड़ता है। जो समय को पहचानता है, वह उससे मुक्त हो जाता है। मार्कंडेय का तप इसी पहचान का परिणाम है। वे जानते हैं कि जीवन सीमित है, इसलिए वे उसे व्यर्थ नहीं गँवाते। यही बोध उन्हें बाल्यावस्था में ही परिपक्व बना देता है। भागवत परंपरा में भी मार्कंडेय का उल्लेख आता है, विशेषतः उस प्रसंग में जहाँ वे प्रलय और विष्णु के बालस्वरूप का दर्शन करते हैं। यह कथा "भागवत पुराण" में काल और भक्ति के संबंध को अत्यंत कोमल रूप में प्रस्तुत करती है।

श्री विक्रम शुभ सम्वत् २०८३ शके १९४८ कार्तिक शुक्ल पक्ष

दि. १० से २४ नवम्बर २०२६ तक

दक्षिणायन **हेमन्त ऋतु**

तिथि	वार	समाप्ति		नक्षत्र	समाप्ति		योग	समाप्ति		करण	समाप्ति		सू.उ. घ.मि.	सू.अ. घ.मि.	चन्द्रराशि प्रवेश	सूर्य स्पष्ट स्टे.टा ५/३०			नवम्बर	यहाँ पर दिया गया, सभी समय, भा.स्टे.स्टा.में है जो सम्पूर्ण भारत में समान रूप से ग्राह्य रहेगा ।
		घं.	मि.		घं.	मि.		घं.	मि.		घं.	मि.								
०१	मंगल	१४	००	विशा	०९	१७	शोभ	२७	०८	बव	१४	००	०६ ४१	१७ ४०	वृश्चिक	०६	२३	२२	10	चन्द्रदर्शन, मातान्तरण अन्नकूट व गोवर्द्धन पूजा
०२	बुध	१५	५२	अनु	११	३६	अति	२७	३८	कौल	१५	५४	४१	४०	वृश्चिक	०६	२४	२२	11	भाईदूज, यमद्वितीया, चित्रगुप्त पूजा, विश्वकर्मा पूजा, बुधोदय पूर्व में८।५
०३	गुरू	१८	०८	ज्ये	१४	१७	सुक	२८	२४	गर	१८	१०	४२	४०	ध.१४।१९	०६	२५	२३	12	मंगल मघासिंह में २०।१५,
०४	शुक्र	२०	४१	मूल	१७	१५	धृति	२९	२१	वणि	०७	२४	४२	३९	धनु	०६	२६	२३	13	भ.७।२४ से २०।४३ तक, श्री विनायक चतुर्थीव्रत, बुध मार्गी
०५	शनि	२३	२२	पूषा	२०	२२	शूल	३०	२०	बव	१०	०३	४३	३९	म.२७।११	०६	२७	२३	14	सौभाग्य पंचमी, पाण्डव ५,
०६	रवि	२६	००	उषा	२३	२७	गण्ड	अ.	रा.	कौल	१२	४४	४४	३९	मकर	०६	२८	२४	15	सूर्यषष्ठी, छठपूजा,सर्वार्थसिद्धि ६।४४ से २३।२९ तक
०७	सोम	२८	१८	श्रव	२६	१५	गण्ड	०७	१४	गर	१५	१४	४५	३९	मकर	०६	२९	२४	16	भ. २८।२० से, सूर्य वृश्चिक में १९।४२, सर्वार्थसिद्धि ६४५ से २६।१७ तक
०८	मंगल	३०	०३	धनि	२८	३३	वृद्धि	०७	५२	विष्टि	१७	१८	४६	३९	कुं.१५।३०	०७	००	२५	17	भ. १७।१८ तक, श्री दुर्गाष्टमी, गोपाष्टमी, पंचक प्रा. १५।३० से
०९	बुध	अ.	रा.	शत	३०	०८	ध्रुव	०८	०३	बाल	१८	४२	४७	३८	कुम्भ	०७	०१	२५	18	कूष्माण्ड (अक्षय) नवमी, आँवला नवमी
०९	गुरू	०७	०४	पूभा	अ.	रा.	व्या हर्ष	०७ ३०	४२ ४०	कौल	०७	०६	४७	३८	मी.२४।५०	०७	०२	२६	19	सूर्य अनुराधा में २७।३, रवियोग २७।०२ तक
१०	शुक्र	०७	१४	पूभा	०६	५५	वज्र	२८	५४	गर	०७	१६	४८	३८	मीन	०७	०३	२६	20	भ. १९।०० से ३०।३२तक, देवप्रबोधिनी एकादशीव्रत स्मार्त (बिल्बपत्र)
११	शुक्र	३०	३०	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	00	एकादशी का क्षय
१२	शनि	२८	५५	उभा रेवती	०६ २९	५१ ५५	सिद्धि	२६	२९	बव	१७	५०	४८	३८	मे.२९।५५	०७	०४	२७	21	देवप्रबोधिनी एकादशीव्रत वैष्णव, तुलसी विवाह, चातुर्मास्य व्रत नियम समाप्त
१३	रवि	२६	३५	अश्वि	२८	१६	व्य	२३	२७	कौल	१५	५२	४९	३८	मेष	०७	०५	२७	22	प्रदोषव्रत, शुक्र तुला में १७।२, सर्वार्थसिद्धि ६।४९ से २८।१६ तक
१४	सोम	२३	४१	भर	२६	०१	वरी	१९	५६	गर	१३	१४	४९	३८	मेष	०७	०६	२८	23	भ. २३।४३से, वैकुण्ठचतुर्दशी (मध्यरात्रि में हरिहरमिलाप)
१५	मंगल	२०	२१	कृति	२३	२४	परि	१६	०४	विष्टि	१०	०८	०६ ५०	१७ ३७	वृ.७।२४	०७	०७	२८	24	भ. १०।०५ तक, कार्तिक पूर्णिमा-सत्य व्रत, श्री गुरूनानक जयंती

दि.२३/११/२०२६स्टे.टा. ०५/३०							
सू	चं	मं	बु	गु	शु	श	रा
०७	००	०४	०६	०४	०६	११	१०
०६	१४	०४	१७	०२	००	१३	००
२७	०४	३३	०८	०८	०९	४९	४०
५३	५८	१२	०५	४१	४६	१०	०४
६०	८८३	२४	७१	०३	२०	०१	०३
३७	५०	४२	२०	४०	४७	५३	११
अनु	भर	मघा	स्वा	मघा१	चित्रा	उभा४	धनि३
-	-	मा	मा	मा	मा	व	व

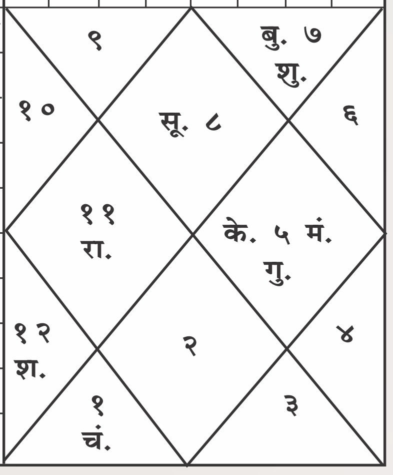

श्री विक्रम शुभ सम्वत् २०८३ शके १९४८ मार्गशीर्ष कृष्ण पक्ष

दि. २५ नवम्बर से ०८ दिसम्बर २०२६ तक

दक्षिणायन **हेमन्त ऋतु**

तिथि	वार	समाप्ति		नक्षत्र	समाप्ति		योग	समाप्ति		करण	समाप्ति		सू.उ. घ.मि.	सू.अ. घ.मि.	चन्द्रराशि प्रवेश	सूर्य स्पष्ट स्टे.टा ५/३०			नवत्बर दिसम्ब	यहाँ पर दिया गया, सभी समय, भा.स्टे.स्टा.में है जो सम्पूर्ण भारत में समान रूप से ग्राह्य रहेगा ।
		घं.	मि.		घं.	मि.		घं.	मि.		घं.	मि.								
०१	बुध	१६	४८	रोहि	२०	३४	शिव	१२	००	कौल	१६	५०	०६ ५१	१७ ३७	वृष	०७	०८	२९	25	बुध विशाखा में १३।३४, सर्वार्थसिद्धि दिन-रात
०२	गुरू	१३	१३	मृग	१७	४५	सिद्ध साध्य	०७ २७	५० ४४	गर	१३	१५	५१	३७	मि.०७।११	०७	०९	३०	26	भ. २३।३० से
०३	शुक्र	०९	४७	आर्द्रा	१५	०७	शुभ	२३	४९	वष्टि	०९	४९	५२	३७	मिथुन	०७	१०	३०	27	भ. ०९।४७ तक, श्री संकष्टचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय २०।३२
०४	शुक्र	३०	३८	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	00	चतुर्थी का क्षय
०५	शनि	२७	५५	पुन	१२	४८	शुक्ल	२०	१६	कौल	१७	१५	५३	३७	क.०७।२२	०७	११	३१	28	महापात दोष १८।२० से २३।५० तक
०६	रवि	२५	४५	पुष्य	११	००	ब्रह्म	१७	०७	गर	१४	४८	५४	३७	कर्क	०७	१२	३२	29	भ.२५।४७ से, रवि पुष्य ६।५४ से ११।०० तक, रवियोग ११।०१ से
०७	सोम	२४	१०	श्ले	०९	४०	ऐन्द्र	१४	२५	विष्टि	१२	५५	५४	३७	सिं०९।४२	०७	१३	३३	30	भ.१२।५५ तक, रवियोग ९।४२ तक
०८	मंगल	२३	१२	मघा	०९	००	वैधृ	१२	१३	बाल	११	३८	५५	३८	सिंह	०७	१४	३३	01	श्री कालभैरवाष्टमी, श्री कालभैरव जयंती, दिसम्बर मास प्रारंभ
०९	बुध	२२	५०	पूफा	०८	५३	विष्कु	१०	३०	तैति	१०	५९	५६	३८	कं.१४।५९	०७	१५	३४	02	बुध वृश्चिक में १७।२६, सूर्य ज्येष्ठा में ७।२७
१०	गुरू	२३	०२	उफा	०९	२२	प्रीति	०९	१५	वणि	१०	५४	५६	३८	कन्या	०७	१६	३५	03	भ. १०।५४ से २३।०४ तक
११	शुक्र	२३	४५	हस्त	१०	२१	आयु	०८	२१	बव	११	२१	५७	३८	तु.२३।०३	०७	१७	३६	04	उत्पत्ति एकादशीव्रत (बादाम), बुध अनु. में २३।१७
१२	शनि	२४	५०	चित्रा	११	४७	सौभा	०७	५१	कौल	१२	१६	५८	३८	तुला	०७	१८	३७	05	राहु धनि.२ मकर में, केतु श्ले.४ कर्क में २०।७,
१३	रवि	२६	२०	स्वा	१३	३६	शोभ	०७	२९	गर	१३	३५	५९	३८	तुला	०७	१९	३८	06	भ. २६।२२ से, प्रदोषव्रत
१४	सोम	२८	११	विशा	१५	४६	अति	०७	२५	विष्टि	१५	१५	०६ ५९	३८	वृ.०९।१३	०७	२०	३९	07	भ. १५।१४ तक, श्री शिवरात्रि व्रत, सर्वार्थसिद्धि १५।४९ से ३०।५९ तक
३०	मंगल	३०	२०	अनु	१८	१४	सुक	०८	०४	चतु	१७	१५	०७ ००	१७ ३९	वृश्चिक	०७	२१	३९	08	भौमवती अमावस्या, बुधास्त पूर्व में ९।१४

दि.०७/१२/२०२६स्टे.टा. ०५/३०							
सू	चं	मं	बु	गु	शु	श	रा
०७	०६	०४	०७	०४	०६	११	०९
२०	२८	०९	०६	०२	०७	१३	२९
३८	०६	४९	४४	४३	३१	४२	५५
३९	०३	०२	१७	४६	४८	३५	३४
६०	६६८	१९	९१	०१	४२	००	०३
५७	५३	४६	०५	०७	०३	२६	११
ज्ये	विशा	मघा	अनु	मघा१	स्वा	उभा४	धनि३
-	-	मा	मा	मा	मा	व	व

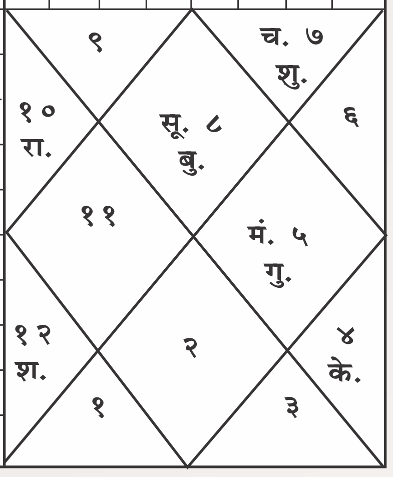

विक्रम पचांग

विक्रम सम्वत् 2083

'रौद्र' नाम सम्वत्सर | • कलि सम्वत् 5127 • सृष्टि आरंभ 1955885127 | • राजा- बृहस्पति • मंत्री - मंगल

09 दिसम्बर से 23 दिसम्बर 2026

अगहन शुक्ल पक्ष (हेमंत/शिशिर ऋतु)

24 दिसम्बर से 7 जनवरी 2027

पौष कृष्ण पक्ष (शिशिर ऋतु)

	13 चतुर्थी दिसम्बर	20 एकादशी दिसम्बर मोक्षदा एकादशी	**रविवार**		27 चतुर्थी दिसम्बर	03 एकादशी जनवरी सफला एकादशी
	14 पंचमी दिसम्बर	21 द्वादशी दिसम्बर प्रदोष व्रत	**सोमवार**		28 पंचमी दिसम्बर	04 द्वादशी जनवरी
	15 षष्ठी दिसम्बर सरदार पटेल पुण्य तिथि, चम्पा षष्ठी	22 त्रयोदशी दिसम्बर	**मंगलवार**		29 षष्ठी दिसम्बर	05 त्रयोदशी जनवरी प्रदोष व्रत
09 प्रतिपदा दिसम्बर	16 सप्तमी दिसम्बर	23 चतुर्दशी दिसम्बर किसान दिवस, पूर्णिमा व्रत	**बुधवार**		30 सप्तमी दिसम्बर	06 चतुर्दशी जनवरी
10 प्रतिपदा दिसम्बर	17 अष्टमी दिसम्बर	24 पूर्णिमा दिसम्बर	**गुरुवार**	24 प्रतिपदा दिसम्बर	31 अष्टमी दिसम्बर हनुमान अष्टमी	07 अमावस्या जनवरी अमावस्या
11 द्वितीया दिसम्बर	18 नवमी दिसम्बर		**शुक्रवार**	25 द्वितीया दिसम्बर क्रिसमस अटल बिहारी वाजपेयी जयंती	01 नवमी जनवरी	
12 तृतीया दिसम्बर	19 दशमी दिसम्बर		**शनिवार**	26 तृतीया दिसम्बर महाराजा छत्रसाल पुण्य तिथि	02 दशमी जनवरी	

काल के साक्षी सप्तऋषि

सप्तर्षयः कालस्य साक्षिणः, युगप्रवर्तकाः स्मृत्याः च ध्रुवे स्थित्वा नक्षत्रमालया सह कालचक्रस्य गमनं पश्यन्ति। ते न कालात् भिद्यन्ते, न कालेन बाध्यन्तेकालं एव धर्मेण धारयन्ति।।

सप्तऋषि काल के साक्षी और युगों की स्मृति के धारक हैं। वे ध्रुव के निकट स्थित होकर नक्षत्रों के साथ कालचक्र की गति को देखते हैं। वे न तो काल से पृथक हैं और न ही काल से बंधे हुए वे धर्म के द्वारा स्वयं काल को धारण करते हैं। प्रत्येक ऋषि एक विशेष गुण, एक विशेष दृष्टि और एक विशेष काल-संबंधी भूमिका का प्रतिनिधित्व करता है। मरीचि सृष्टि की आरंभिक स्पंदनशीलता के प्रतीक हैं, अत्रि तप और प्रकाश के, अंगिरा अग्नि और ज्ञान के, पुलस्त्य स्मृति और परंपरा के, पुलह संरक्षण और स्थायित्व के, क्रतु कर्म और यज्ञीय अनुशासन के, तथा वसिष्ठ संतुलन, धर्म और राजर्षि परंपरा के।

भारतीय चेतना में यदि काल प्रवाह एक नदी है, तो सप्तऋषि उसके तट हैं। स्थिर, अचल और मार्गदर्शक। सप्त ऋषियों के नाम इस प्रकार परंपरागत रूप से स्वीकार किए जाते हैं,मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वसिष्ठ। इन सातों ऋषियों का स्वरूप केवल व्यक्ति-विशेष तक सीमित नहीं है, बल्कि वे चेतना की सात धाराओं के प्रतीक हैं। भारतीय परंपरा में समय केवल घड़ी या गणना की इकाई नहीं है, बल्कि वह एक जीवंत तत्त्व है, जो सृष्टि, स्थिति और संहार की निरंतर प्रक्रिया से जुड़ा है। इस समय तत्त्व को 'काल' कहा गया है, और काल को न केवल मापने का विषय माना गया, बल्कि उसे साक्षी, नियंता और धर्म का अधिष्ठान भी समझा गया। इसी व्यापक दृष्टि में सप्त ऋषियों की अवधारणा उभरती है। सप्त ऋषि केवल महान तपस्वी या ऋग्वैदिक मंत्रद्रष्टा नहीं हैं, बल्कि वे काल की स्मृति, युगों की निरंतरता और धर्म की स्थिरता के संरक्षक माने गए हैं। भारतीय खगोल-परंपरा में सप्त ऋषि मंडल को आकाश में एक स्थिर नक्षत्र समूह के रूप में देखा गया, जो ध्रुव तारे के चारों ओर परिक्रमा करता है। यह परिक्रमा केवल खगोलीय घटना नहीं है, बल्कि कालचक्र का प्रतीक है। ध्रुव अचल है, सप्त ऋषि गतिमान हैं। यह गति ही काल है। इस प्रकार सप्त ऋषि काल के प्रवाह में रहते हुए भी धर्म और सत्य की धुरी के चारों ओर परिक्रमा करते हैं। यही कारण है कि उन्हें 'काल के साक्षी' कहा गया है। पुराणों में यह धारणा मिलती है कि प्रत्येक मन्वंतर में सप्त ऋषि बदलते हैं, किंतु सप्त ऋषि की संख्या और उनकी भूमिका बनी रहती है। यह विचार अत्यंत गहरा है। इसका अर्थ यह है कि काल बदलता है, युग बदलते हैं, मनुष्य और समाज बदलते हैं, परंतु धर्म, ज्ञान और तप की सात धाराएँ निरंतर प्रवाहित होती रहती हैं। सप्त ऋषि इस निरंतरता के प्रतीक हैं। वे किसी एक युग तक सीमित नहीं, बल्कि युगों के सेतु हैं। इस दृष्टि से वे काल के रक्षक कहे जा सकते हैं, क्योंकि वे काल को नष्ट नहीं होने देते, उसे विस्मृति में नहीं जाने देते।

भारतीय परंपरा में स्मृति का अत्यंत महत्त्व है। जो स्मृति खो देता है, वह अपने मूल से कट जाता है। सप्त ऋषि स्मृति के अधिष्ठाता हैं। वे वेदों के द्रष्टा हैं, मंत्रों के संवाहक हैं और ज्ञान के परंपरागत प्रवाह के रक्षक हैं। काल की सबसे बड़ी चुनौती विस्मृति है। पुराने मूल्यों का, अनुभवों का और सत्य का खो जाना। सप्त ऋषि इस विस्मृति के विरुद्ध खड़े हैं। इसीलिए उन्हें काल और समय की रक्षा करने वाला माना गया। वसिष्ठ का उदाहरण विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वे केवल तपस्वी नहीं, बल्कि राजाओं के गुरु हैं। इसका अर्थ यह है कि काल केवल वन और आश्रम में नहीं बहता, वह राजसत्ता, समाज और राजनीति में भी प्रवाहित होता है। वसिष्ठ इस काल को धर्म के साथ जोड़ते हैं। वे बताते हैं कि समय का सही उपयोग तभी संभव है जब वह धर्म से जुड़ा हो। यदि समय धर्म से कट जाए, तो वह केवल विनाश की ओर ले जाता है। अत्रि ऋषि का संबंध प्रकाश और तप से है। प्रकाश काल का ही एक रूप है। ज्ञान का प्रकाश, विवेक का प्रकाश। अत्रि यह संकेत देते हैं कि काल को समझने के लिए केवल बाहरी गणना पर्याप्त नहीं, आंतरिक तप और जागरूकता भी आवश्यक है। अंगिरा ऋषि अग्नि के प्रतीक हैं। अग्नि परिवर्तन का माध्यम है। काल भी परिवर्तन है। अंगिरा यह दर्शाते हैं कि काल का सही अर्थ परिवर्तन को स्वीकार करने और उसे यज्ञ की तरह पवित्र बनाने में है। पुलस्त्य और पुलह स्मृति और संरक्षण के प्रतीक हैं। वे यह बताते हैं कि काल के प्रवाह में सब कुछ बह जाता है, किंतु जो संरक्षित किया जाता है, वही परंपरा बनता है। क्रतु ऋषि कर्म और यज्ञ से जुड़े हैं। वे यह स्पष्ट करते हैं कि समय का मूल्य कर्म से है। जो कर्म समय के अनुरूप और धर्मसम्मत होता है, वही काल को सार्थक बनाता है।

सप्त ऋषियों को काल का रक्षक इस अर्थ में भी कहा गया कि वे मनुष्यता को यह स्मरण कराते हैं कि समय केवल उपभोग के लिए नहीं है। आधुनिक दृष्टि में समय को अक्सर संसाधन या वस्तु की तरह देखा जाता है। जिसे खर्च किया जा सकता है। भारतीय दृष्टि में समय साधना है। सप्त ऋषि इस साधना के आदर्श हैं। उनका जीवन स्वयं काल के प्रति एक अनुशासन है न अधिक, न कम; न विलास, न पलायन। यह भी माना जाता है कि सप्त ऋषि मानव समाज के नैतिक कैलेंडर हैं। जैसे पंचांग तिथियों और नक्षत्रों का ज्ञान देता है, वैसे ही सप्त ऋषि धर्म और अधर्म की तिथियाँ बताते हैं। जब समाज धर्म से विचलित होता है, तब कथाओं में कहा गया है कि ऋषियों का तेज क्षीण होने लगता है। यह प्रतीक है कि काल का संतुलन बिगड़ रहा है। जब तप और सत्य पुनः स्थापित होते हैं, तब सप्त ऋषियों का तेज पुनः प्रकट होता है। काल के संदर्भ में सप्त ऋषियों की अवधारणा हमें यह भी सिखाती है कि समय को बाँटा नहीं जा सकता। अतीत, वर्तमान और भविष्य अलग-अलग नहीं हैं; वे एक ही प्रवाह के तीन बिंदु हैं। सप्त ऋषि इस प्रवाह के ज्ञाता हैं। वे अतीत की स्मृति रखते हैं, वर्तमान को धर्म से जोड़ते हैं और भविष्य को सुरक्षित करते हैं। इसीलिए उन्हें युगद्रष्टा कहा गया।

भारतीय संस्कृति में यह विश्वास गहरा है कि जब-जब धर्म संकट में होता है, तब ऋषि परंपरा पुनः सक्रिय होती है। यह सक्रियता बाहरी हस्तक्षेप नहीं, बल्कि चेतना का जागरण है। सप्त ऋषि इसी जागरण के प्रतीक हैं। वे हमें यह याद दिलाते हैं कि काल से भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है। काल तब भयावह बनता है जब हम उससे कट जाते हैं। जब हम उसे धर्म, स्मृति और तप से जोड़ते हैं, तब वही काल मुक्ति का मार्ग बन जाता है। इस प्रकार सप्त ऋषि न तो केवल आकाश के नक्षत्र हैं और न ही केवल ग्रंथों के पात्र। वे काल की अवधारणा के जीवंत प्रतीक हैं।

श्री विक्रम शुभ सम्वत् २०८३ शके १९४८ मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष

दि. ०९ से २३ दिसम्बर २०२६ तक

उत्तरायण/दक्षिणायन हेमन्त/शिशिर ऋतु

तिथि	वार	समाप्ति घं.	समाप्ति मि.	नक्षत्र	समाप्ति घं.	समाप्ति मि.	योग	समाप्ति घं.	समाप्ति मि.	करण	समाप्ति घं.	समाप्ति मि.	सू.उ. घ.मि.	सू.अ. घ.मि.	चन्द्रराशि प्रवेश	सूर्य स्पष्ट स्टे.टा ५/३०			दिसम्बर	यहाँ पर दिया गया, सभी समय, भा.स्टे.स्टा.में है जो सम्पूर्ण भारत में समान रूप से ग्राह्य रहेगा ।
०१	बुध	अ.	रा.	ज्ये	२१	००	धृति	०८	३७	किंस्तु	१९	३२	०७ ००	१७ ३९	ध.२१।००	०७	२२	४०	09	-
०१	गुरू	०८	४४	मूल	२३	५६	शूल	०९	२२	बव	०८	४६	०१	३९	धनु	०७	२३	४१	10	चन्द्रदर्शन, शनि मार्गी २९।३
०२	शुक्र	११	२१	पूषा	२७	०२	गण्ड	१०	१६	कौल	११	२३	०१	३९	धनु	०७	२४	४२	11	रवियोग २७।५ तक
०३	शनि	१४	०४	उषा	३०	१०	वृद्धि	११	१५	गर	१४	०६	०२	४०	म.०९।५१	०७	२५	४३	12	भ. २७।२८ से, गुरू वक्री ३०।३० रवियोग ३०।१२ तक
०४	रवि	१६	४६	श्रव	अ.	रा.	ध्रुव	१२	१३	विष्टि	१६	४८	०३	४०	मकर	०७	२६	४४	13	भ. १६।४८ तक, श्री विनायक चतुर्थी व्रत, बुध ज्ये. में १७।१८
०५	सोम	१९	१५	श्रव	०९	१०	व्या	१३	०२	बाल	१९	१६	०४	४०	कुं.२२।३६	०७	२७	४५	14	विवाह पंचमी (श्री राम जानकी विवाहोत्सव), पंचक प्रा. २२।३६ से
०६	मंगल	२१	१९	धनि	११	५१	हर्ष	१३	३६	कौल	०८	२२	०४	४१	कुम्भ	०७	२८	४६	15	स्कन्द (गुह) षष्ठी, चम्पाषष्ठी, रवियोग ११।५३ तक
०७	बुध	२२	४४	शत	१४	०१	वज्र	१३	४४	गर	१०	०८	०५	४१	कुम्भ	०७	२९	४७	16	भ. २२।४६ से, मित्र (भानु) सप्तमी, सूर्य मूलधनु में १०।२४, मलमास प्रा.
०८	गुरू	२३	२४	पूभा	१५	२९	सिद्धि	१३	२०	विष्टि	११	१२	०५	४१	मी.०९।१३	०८	००	४८	17	भ.११।१२ तक
०९	शुक्र	२३	१२	उभा	१६	०८	व्य	१२	१७	बाल	११	२७	०६	४२	मीन	०८	०१	४९	18	अमृतसिद्धि १६।११ से २३।१४ तक तत्पश्चात् सर्वार्थसिद्धि ३१।५ तक
१०	शनि	२२	०८	रेव	१५	५६	वरी	१०	३३	तैति	१०	४९	०६	४२	मे.१५।५८	०८	०२	५१	19	पंचक स. १५।५८ पर, मंगल पू.फा. में १०।१९
११	रवि	२०	१३	अश्वि	१४	५४	परि शिव	०८ २९	१० ०७	वणि	०९	१८	०७	४३	मेष	०८	०३	५२	20	भ. ९।१८ से २०।१५ तक, मोक्षदा एकादशी (राजगरा), श्री गीता जयंती
१२	सोम	१७	३५	भर	१३	०७	सिद्ध	२५	३०	बाल	१७	३७	०७	४३	वृ. १८।३६	०८	०४	५३	21	सोमप्रदोष व्रत, सायन मकर में रवि २६।१९, उत्तरायण व शिशिर ऋतु प्रारंभ
१३	मंगल	१४	२२	कृति	१०	४४	साध्य	२	३०	तैति	१४	२४	०७	४४	वृष	०८	०५	५४	22	बुध मूलधनु में ७।३९, शुक्र दिशा में १३।५१, सर्वार्थसिद्धि ७।७ से
१४	बुध	१०	४५	रोहि मृग	००	५६ ५३	शुभ	१७	१३	वणि	१०	४७	०७ ०८	१७ ४४	मि.१८।२६	०८	०६	५५	23	भ. १०।४७ से २०।५३ तक, अगहनी पूर्णिमा-सत्यव्रत, श्री दत्तोत्रेय जयंती
१५	बुध	३०	५५	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	00	पूर्णिमा का क्षय

दि.२१/१२/२०२६स्टे.टा. ०५/३०

सू	चं	मं	बु	गु	शु	श	रा
०८	००	०४	०७	०४	०६	११	०९
०४	२२	१३	२८	०२	१८	१३	२९
५२	०१	४५	१८	४१	४६	४७	११
५४	५०	०६	०५	०३	४१	१०	०४
६१	८८१	१३	९३	०१	५४	०१	०३
०५	४०	१२	३४	४२	१०	०५	११
मूल	भर	पूफा	ज्ये	मघा१	स्वा	उभा४	धनि२
-	-	मा	मा	व	मा	मा	व

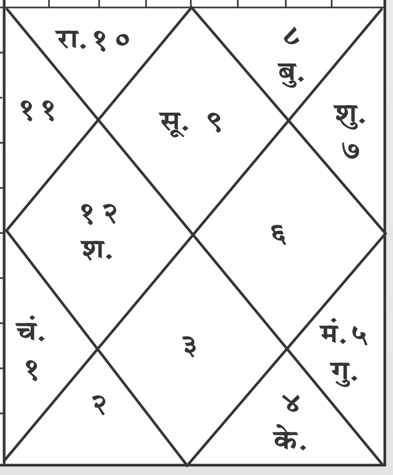

श्री विक्रम शुभ सम्वत् २०८३ शके १९४८ पौष कृष्ण पक्ष

दि. २४ दिसम्बर २०२६ से ०७ जनवरी २०२७ तक

उत्तरायण शिशिर ऋतु

तिथि	वार	समाप्ति घं.	समाप्ति मि.	नक्षत्र	समाप्ति घं.	समाप्ति मि.	योग	समाप्ति घं.	समाप्ति मि.	करण	समाप्ति घं.	समाप्ति मि.	सू.उ. घ.मि.	सू.अ. घ.मि.	चन्द्रराशि प्रवेश	सूर्य स्पष्ट स्टे.टा ५/३०			दिसम्ब जनवरी	यहाँ पर दिया गया, सभी समय, भा.स्टे.स्टा.में है जो सम्पूर्ण भारत में समान रूप से ग्राह्य रहेगा ।
०१	गुरू	२७	०४	आर्दा	२५	४५	शुक्ल	१२	४८	बाल	१७	०२	०७ ०८	१७ ४५	मिथुन	०८	०७	५६	24	सर्वार्थसिद्धि २५।४८ से
०२	शुक्र	२३	२४	पुन	२२	४८	ब्रह्म ऐन्द्र	०८ २८	२९ १५	तैति	१३	१५	०९	४५	क.१७।३२	०८	०८	५७	25	सर्वार्थसिद्धि २२।५० तक
०३	शनि	२०	०३	पुष्य	२०	११	वैधृ	२४	२०	वणि	०९	४३	१०	४६	कर्क	०८	०९	५८	26	भ. ९।४३ से २०।५ तक, श्री संकष्ट चतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय २०।२९
०४	रवि	१७	११	श्ले	१८	०३	विष्कु	२०	५१	बाल	१७	१३	१०	४६	सिं.१८।०५	०८	१०	५९	27	-
०५	सोम	१४	५६	मघा	१६	३१	प्रीति	१७	५३	तैति	१४	५८	११	४७	सिंह	०८	१२	००	28	रवियोग १६।३४ से
०६	मंगल	१३	२३	पूफा	१५	४१	आयु	१५	२९	वणि	१३	२५	११	४७	कं.२१।३६	०८	१३	०१	29	भ.१३।२५ से २४।५५तक, सूर्य पूर्वाषाढा में १२।४२
०७	बुध	१२	३५	उफा	१५	३५	सौभा	१३	३९	बव	१२	३७	११	४८	कन्या	०८	१४	०३	30	कालाष्टमी, बुध पूषा में १८।३०, सर्वार्थसिद्धि १५३८ से ३१।११ तक
०८	गुरू	१२	३१	हस्त	१६	११	शोभ	१२	२३	कौल	१२	३३	१२	४८	तु.२८।४७	०८	१५	०४	31	श्री हनुमान अष्टमी
०९	शुक्र	१३	०८	चित्रा	१७	२८	अति	११	४२	गर	१३	१०	१२	४९	तुला	०८	१६	०५	01	भ.२५।४३ से, जनवरी २०२७ प्रारंभ, शुक्र वृश्चिक में २३।२१
१०	शनि	१४	२२	स्वा	१९	१८	सुक	११	२७	विष्टि	१४	२४	१२	४९	तुला	०८	१७	०६	02	भ. १४।२४ तक, सर्वार्थसिद्धि ०७।१२ से १९।२०तक, महापात दोष २८।७
११	रवि	१६	०६	विशा	२१	३५	धृति	११	३५	बाल	१६	०८	१२	५०	वृ.१५।००	०८	१८	०७	03	सफला एकादशीव्रत (तिल-शक्कर), महापात दोष ११।२४ तक
१२	सोम	१८	१४	अनु	२४	१३	शूल	१२	०१	तैति	१८	१६	१२	५१	वश्चिक	०८	१९	०८	04	शुक्र अनुराधा में ३०।३, सर्वार्थसिद्धि ७।१२ से २४।१५ तक
१३	मंगल	२०	३८	ज्ये	२७	०५	गण्ड	१२	४१	गर	०७	२६	१३	५१	ध.२७।०७	०८	२०	१०	05	भ. २०।४० से, भौमप्रदोष व्रत, शिवरात्रि व्रत
१४	बुध	२३	१२	मूल	३०	०६	वृद्धि	१३	३०	विष्टि	०९	५६	१३	५२	धनु	०८	२१	११	06	भ. ९।५६ तक
३०	गुरू	२५	५२	पूषा	अ.	रा.	ध्रुव	१४	२४	चतु	१२	३४	०७ १३	१७ ४४	धनु	०८	२२	१२	07	पौषी अमावस्या पुण्य, बुध उ.षा. में २४।८

दि.०४/०१/२०२७ स्टे.टा. ०५/३०

सू	चं	मं	बु	गु	शु	श	रा
०८	०७	०४	०८	०४	०७	११	०९
१९	०७	१५	२०	०२	०२	१४	२८
०८	१७	५५	३०	००	१७	१३	२६
३०	४१	३६	१३	३४	११	०४	२८
६१	७१९	०४	९७	०४	६१	०२	०३
११	०२	२३	२१	१६	२३	३५	११
पूषा	अलु	पूफा	पूषा	मघा१	विशा	उभा४	धनि२
-	-	मा	मा	व	मा	मा	व

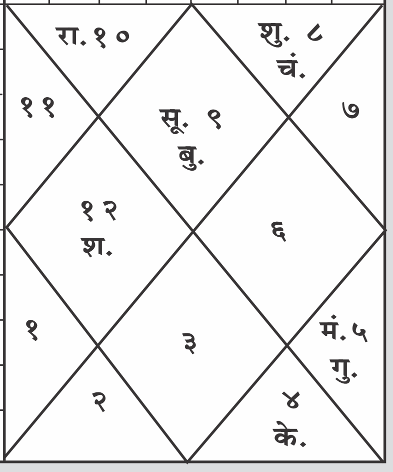

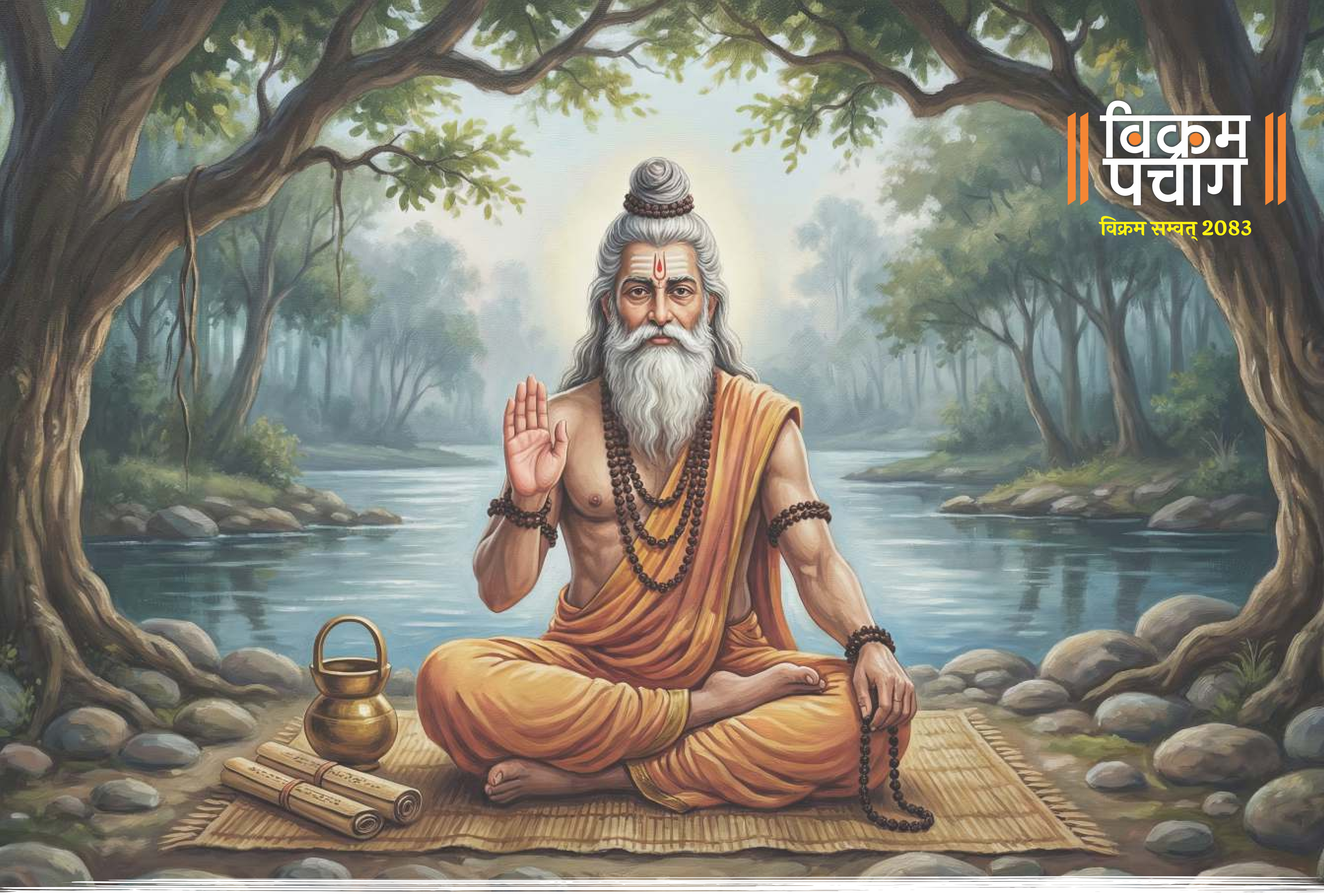

‘रौद्र’ नाम सम्वत्सर | • कलि सम्वत् 5127 • सृष्टि आरंभ 1955885127 | • राजा- बृहस्पति • मंत्री - मंगल

08 जनवरी से 22 जनवरी 2027

पौष शुक्ल पक्ष (शिशिर ऋतु)

23 जनवरी से 6 फरवरी 2027

माघ कृष्ण पक्ष (शिशिर ऋतु)

	10 जनवरी तृतीया	17 जनवरी दशमी	**रविवार**		24 जनवरी द्वितीया	31 जनवरी दशमी
	11 जनवरी चतुर्थी	18 जनवरी एकादशी पुत्रदा एकादशी	**सोमवार**		25 जनवरी तृतीया चतुर्थी	01 फरवरी दशमी
	12 जनवरी पंचमी महर्षि महेश योगी जयंती	19 जनवरी द्वादशी	**मंगलवार**		26 जनवरी पंचमी गणतंत्र दिवस	02 फरवरी एकादशी
	13 जनवरी षष्ठी	20 जनवरी त्रयोदशी प्रदोष व्रत	**बुधवार**		27 जनवरी षष्ठी	03 फरवरी द्वादशी
	14 जनवरी सप्तमी	21 जनवरी चतुर्दशी	**गुरुवार**		28 जनवरी सप्तमी लाला लाजपत राय जयंती	04 फरवरी त्रयोदशी
08 जनवरी प्रतिपदा	15 जनवरी अष्टमी	22 जनवरी पूर्णिमा पूर्णिमा व्रत	**शुक्रवार**		29 जनवरी अष्टमी	05 फरवरी चतुर्दशी
09 जनवरी द्वितीया	16 जनवरी नवमी		**शनिवार**	23 जनवरी प्रतिपदा सुभाषचन्द्र बोस जयंती	30 जनवरी नवमी महात्मा गाँधी पुण्य तिथि	06 फरवरी अमावस्या मौनी अमावस्या

याज्ञवल्क्य और भारतीय काल-बोध

अहोरात्रे विभजते सूर्यः, मासान् चन्द्रः प्रजायते । संवत्सरं तु देवाः, कालो ह्येष प्रजापतेः (याज्ञवल्क्य परंपरा शुक्ल यजुर्वेद)

सूर्य अहोरात्र (दिन और रात) का विभाजन करता है,चंद्रमा मासों की उत्पत्ति करता है, देवताओं द्वारा संवत्सर (वर्ष) की गणना की जाती है,और यही काल प्रजापति का स्वरूप कहा गया है।

महर्षि याज्ञवल्क्य और काल-गणना भारतीय दार्शनिक परंपरा का ऐसा विषय है जहाँ दर्शन, ब्रह्मविद्या और गणितीय-खगोलीय चेतना एक-दूसरे में घुलती दिखाई देती हैं। याज्ञवल्क्य केवल उपनिषदकालीन मनीषी नहीं थे, बल्कि वे उस बौद्धिक धारा के प्रतिनिधि हैं जिसने समय को केवल माप की इकाई न मानकर ब्रह्म के स्वरूप के रूप में समझने का प्रयास किया। याज्ञवल्क्य का प्रमुख उल्लेख शतपथ ब्राह्मण और बृहदारण्यक उपनिषद में मिलता है। शतपथ ब्राह्मण में यज्ञ, अग्नि, वर्ष, ऋतु, मास और अहोरात्र के माध्यम से समय की जो संरचना प्रस्तुत की गई है, वह काल-गणना की वैदिक दृष्टि को स्पष्ट करती है। यहाँ काल को चक्रात्मक माना गया है। दिन-रात, पक्ष, मास, ऋतु और संवत्सर ये सभी एक-दूसरे से संबद्ध हैं और यज्ञात्मक ब्रह्मांड की लय को प्रकट करते हैं। याज्ञवल्क्य की दृष्टि में संवत्सर केवल 365 दिनों का गणितीय योग नहीं है, बल्कि वह कालपुरुष का एक पूर्ण चक्र है। शतपथ ब्राह्मण में संवत्सर को प्रजापति के समान माना गया है जिसके अंग मास हैं, श्वास-प्रश्वास अहोरात्र हैं और गति ऋतुएँ हैं। यह अवधारणा आगे चलकर भारतीय कालगणना की बुनियाद बनी, जहाँ समय स्थिर रेखा नहीं बल्कि निरंतर आवर्तनशील चक्र है। बृहदारण्यक उपनिषद् में याज्ञवल्क्य काल को और अधिक सूक्ष्म स्तर पर ले जाते हैं। यहाँ समय को इंद्रियग्राह्य घटनाओं से ऊपर उठाकर चेतना के साथ जोड़ा गया है। याज्ञवल्क्य बताते हैं कि सूर्य के उदय-अस्त से दिन-रात का बोध होता है, किंतु वास्तविक अर्थ में काल का अनुभव मन और प्राण की गति से जुड़ा है। इस प्रकार काल बाह्य खगोलीय घटना भी है और आंतरिक अनुभूति भी।

एक प्रसंग शुक्ल यजुर्वेद की परंपरा से जुड़ा है। कहा जाता है कि याज्ञवल्क्य ने यज्ञों के लिए उपयुक्त समय-निर्धारण में सूर्य और चंद्र की गति को निर्णायक माना। किसी सोमयज्ञ के अवसर पर यज्ञकर्ता द्वारा पूछे जाने पर उन्होंने स्पष्ट किया कि यज्ञ का प्रारंभ केवल तिथि देखकर नहीं, बल्कि नक्षत्र और चंद्र की स्थिति देखकर किया जाना चाहिए। इस प्रसंग में याज्ञवल्क्य ने यह बताया कि यदि चंद्रमा अपेक्षित नक्षत्र में न हो, तो यज्ञ का फल अपूर्ण रह जाता है। यह घटना दर्शाती है कि उनके यहाँ काल गणना व्यावहारिक और अनुष्ठान-आधारित थी। याज्ञवल्क्य के समय में चंद्रमास और सौरवर्ष के अंतर को लेकर मतभेद थे। एक सभा में यह प्रश्न उठा कि वर्ष की गणना केवल बारह चंद्रमासों से की जाए या सूर्य की गति को भी जोड़ा जाए। याज्ञवल्क्य ने वहाँ यह उदाहरण दिया कि यदि केवल चंद्रमास माने जाएँ, तो ऋतुएँ क्रम से हट जाएँगी और कृषि तथा यज्ञ दोनों का संतुलन बिगड़ जाएगा। इसी प्रसंग में अधिमास की स्वीकृति का संकेत मिलता है, जहाँ अतिरिक्त मास जोड़कर काल को पुनः ऋतुचक्र के अनुरूप किया जाता है। एक श्रौत अनुष्ठान में यह विवाद उत्पन्न हुआ कि रात्रि का अंत कब माना जाए सूर्य के प्रथम प्रकाश से या पूर्ण उदय से। याज्ञवल्क्य ने इस पर सूर्य के उदय-काल को आधार बनाते हुए अहोरात्र की स्पष्ट सीमा निर्धारित की और कहा कि यज्ञीय क्रियाओं में काल की एक क्षण की भी त्रुटि अनिष्टकारी हो सकती है। इस प्रसंग से उनकी सूक्ष्म काल-सजगता प्रकट होती है। एक उल्लेखनीय प्रसंग ऋतु-विभाजन को लेकर भी मिलता है। याज्ञवल्क्य ने छह ऋतुओं का निर्धारण केवल परंपरा से नहीं, बल्कि सूर्य के संक्रमण (संक्रांति) के आधार पर किया। उन्होंने बताया कि उत्तरायण और दक्षिणायण के मध्य बिंदुओं से ऋतुओं की गणना अधिक सटीक होती है। इस निर्देश का प्रयोग बाद में यज्ञ-पंचांगों और सामाजिक पर्वों में किया गया। इन सभी प्रसंगों से स्पष्ट होता है कि याज्ञवल्क्य की काल गणना किसी अमूर्त विचार पर नहीं, बल्कि यज्ञ, कृषि, ऋतु और खगोलीय घटनाओं के प्रत्यक्ष अनुभव पर आधारित थी। उनके लिए समय कोई अनुमान नहीं, बल्कि देखी-परखी और अनुशासित व्यवस्था थी, जिसे सही ढंग से समझे बिना वैदिक कर्म संभव नहीं माना जाता था। याज्ञवल्क्य के संवादों में यह संकेत स्पष्ट है कि काल ब्रह्म से भिन्न नहीं है। जब वे मैत्रेयी से कहते हैं कि आत्मा के ज्ञान से ही सब कुछ जाना जाता है, तब उसमें काल भी सम्मिलित है। अर्थात समय का सत्य स्वरूप आत्मबोध के बिना नहीं समझा जा सकता। यह विचार आगे चलकर सांख्य, योग और वेदांत में विकसित हुआ, जहाँ काल को प्रकृति का गुण या ब्रह्म की शक्ति माना गया। काल-गणना के व्यावहारिक पक्ष में भी याज्ञवल्क्य का प्रभाव दिखता है। वैदिक समाज में यज्ञों की तिथियाँ, ऋतुचक्र, अधिमास की अवधारणा और सूर्य-चंद्र गति का समन्वय ये सभी उसी परंपरा से विकसित हुए जिसमें याज्ञवल्क्य जैसे मनीषियों का योगदान था। पंचांग की परंपरा, जिसमें तिथि, वार, नक्षत्र, योग और करण आते हैं, उसी वैदिक-उपनिषदकालीन कालबोध का विकसित रूप है।

महत्वपूर्ण यह है कि याज्ञवल्क्य के यहाँ काल भय का कारण नहीं, बल्कि बोध का माध्यम है। जहाँ सामान्य दृष्टि में समय क्षय करता है, वहीं उपनिषदिक दृष्टि में वही समय साधना और ज्ञान का अवसर देता है। काल को जानना, वास्तव में ब्रह्म को जानने की दिशा में एक कदम है। इस प्रकार याज्ञवल्क्य और काल-गणना का संबंध केवल गणितीय या खगोलीय नहीं है, बल्कि वह दार्शनिक, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक है। भारतीय परंपरा में जो कालबोध विकसित हुआ। चक्रात्मक, सजीव और चेतन उसके मूल में याज्ञवल्क्य जैसे ऋषियों की गहरी अंतर्दृष्टि निहित है। वैदिक और उपनिषद् परंपरा में काल कोई निष्प्राण गणना नहीं, बल्कि सजीव तत्त्व है। याज्ञवल्क्य इसी सजीवता के सबसे प्रखर प्रवक्ता हैं। उनके चिंतन में काल, कर्म और चेतना तीनों एक ही ताने-बाने के सूत्र हैं। यदि काल को अलग कर दिया जाए तो कर्म अर्थहीन हो जाता है और यदि चेतना को अलग कर दिया जाए तो काल केवल यांत्रिक क्रम बनकर रह जाता है। याज्ञवल्क्य के समय तक वैदिक कालगणना एक विकसित अवस्था में पहुँच चुकी थी। अहोरात्र, पक्ष, मास, ऋतु और संवत्सर केवल कृषि या यज्ञ की सुविधा के लिए नहीं थे, बल्कि वे ऋत की अभिव्यक्ति थे। ऋत अर्थात वह ब्रह्मांडीय नियम जिसके अनुसार सूर्य, चंद्र, नक्षत्र, ऋतुएँ और मानव जीवन सब एक लय में गतिमान हैं। याज्ञवल्क्य इस ऋत को काल के माध्यम से समझाते हैं।

श्री विक्रम शुभ सम्वत् २०८३ शके १९४८ पौष शुक्ल पक्ष

दि. ०८ से २२ जनवरी २०२७ तक

उत्तरायण **शिशिर ऋतु**

तिथि	वार	समाप्ति घं.	मि.	नक्षत्र	समाप्ति घं.	मि.	योग	समाप्ति घं.	मि.	करण	समाप्ति घं.	मि.	सू.उ. घ.मि.	सू.अ. घ.मि.	चन्द्रराशि प्रवेश	सूर्य स्पष्ट स्टे.टा ५/३०			जनवरी	यहाँ पर दिया गया, सभी समय, भा.स्टे.स्टा.में है जो सम्पूर्ण भारत में समान रूप से ग्राह्य रहेगा ।
०१	शुक्र	२८	३२	पूषा	०९	११	व्या	१५	२०	किस्तु	१५	१४	०७ १३	१७ ५३	म.१५।५९	०८	२३	१३	08	-
०२	शनि	३१	०५	उषा	१२	१४	हर्ष	१६	१३	बाल	१७	५२	१४	४५	मकर	०८	२४	१४	09	चन्द्रदर्शन, बुध मकर में २४।३७, सर्वार्थसिद्धि १२१७ से ३१।१३ तक
०३	रवि	अ.	रा.	श्रव	१५	१०	वज्र	१७	०१	तैति	२०	२०	१४	५५	कुं.२८।३५	०८	२५	१५	10	मंगल वक्री १८।२९, रवियोग १५।१३ से, पंचक प्रा. २८।३५ से
०३	सोम	०९	२७	धनि	१७	५२	सिद्धि	१७	३५	गर	०९	२९	१४	५५	कुम्भ	०८	२६	१७	11	भ.२२।३२ से, श्री विनायक चतुर्थीव्रत, सूर्य उ.षा. में १४।३८
०४	मंगल	११	२७	शत	२०	१२	व्य	१७	५५	विष्टि	११	२९	१४	५६	कुम्भ	०८	२७	१८	12	भ. ११।२९तक, रवियोग २०।१४ तक
०५	बुध	१३	०१	पूभा	२२	०३	वरी	१७	५२	बाल	१३	०२	१४	५७	मी.१५।४०	०८	२८	१९	13	रवियोग २२।०६ से
०६	गुरू	१३	५७	उभा	२३	१७	परि	१७	२०	तैति	१३	५९	१४	५७	मीन	०८	२९	२०	14	सूर्य मकर में २१।९, पुण्यकाल अगले दिन, सर्वार्थसिद्धि २३।२०से३१।१३त
०७	शुक्र	१४	१२	रेव	२३	५०	शिव	१६	१६	वणि	१४	१४	१४	५८	मे.२३।५१	०९	००	२१	15	भ.१४।१४ से २६।०४तक, मकर संक्रांति का पुण्यकाल सूर्योदय से दिनभर
०८	शनि	१३	४१	अश्वि	२३	३७	सिद्ध	१४	३६	बव	१३	४३	१४	१७ ५९	मेष	०९	०१	२२	16	श्री दुर्गाष्टमी, रवियोग २३।४० से, महापात दोष ३०।५५ से
०९	रवि	१२	२५	भर	२२	४०	साध्य	१२	२१	कौल	१२	२७	१४	१८ ००	वृ.२८।२२	०९	०२	२३	17	शुक्र ज्येष्ठा में १०।२०, महापात दोष १२।३०तक
१०	सोम	१०	२५	कृति	२१	०३	शुभ शुक्ल	०९ ३०	३४ १३	गर	१०	२७	१४	१८ ००	वृष	०९	०३	२५	18	भ. २१।१३ से पुत्रदा एकादशी व्रत स्मार्त (गोछाछ), सर्वार्थसिद्धि २१।०६ से
११	मंगल	०७	४८	रोहि	१८	५२	ब्रह्म	२६	२५	विष्टि	०७	५०	१४	०१	मि.२९।३८	०९	०४	२५	19	भ. ०७।५० तक, पुत्रदा एकादशी व्रत वैष्णव
१२	मंगल	२८	४०	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	00	द्वादशी का क्षय
१३	बुध	२५	१०	मृग	१६	१५	ऐन्द्र	२२	२१	कौल	१४	५९	१४	०२	मिथुन	०९	०५	२७	20	प्रदोष व्रत, सर्वार्थसिद्धि ७।१४ से १६।१७ तक, रवियोग १६।१८ से
१४	गुरू	२१	२८	आर्द्रा	१३	२२	वैधृ	१८	०६	गर	११	२२	१४	०३	कं.२९।१०	०९	०६	२८	21	भ. २१।३० से, सूर्य अभिजित् में १०।१९, सर्वार्थसिद्धि १३।२५ से
१५	शुक्र	१७	५५	पुन	१०	२३	विष्कु	१३	४८	विष्टि	०७	३८	०७ १३	१८ ०३	कर्क	०९	०७	२९	22	भ. ७।३८ तक, पूर्णिमा-सत्य व्रत, श्री शाकंभरी जयंती, माघ स्नान प्रा.

दि.१८/०१/२०२७स्टे.टा. ०५/३०

सू	चं	मं	बु	गु	शु	श	रा
०९	०१	०४	०९	०४	०७	११	०९
०३	००	१५	१३	००	१७	१४	२७
२४	४०	४९	४५	४६	०७	५८	४२
३७	५०	४७	१८	०५	४७	४१	०३
६१	८६५	०६	१०१	०६	६५	०४	०३
०४	४६	११	०५	२२	४०	०२	११
उषा	कृति	पूफा	श्रव	मघा१	ज्ये	उभा४	धनि२
-	-	व	मा	व	मा	मा	व

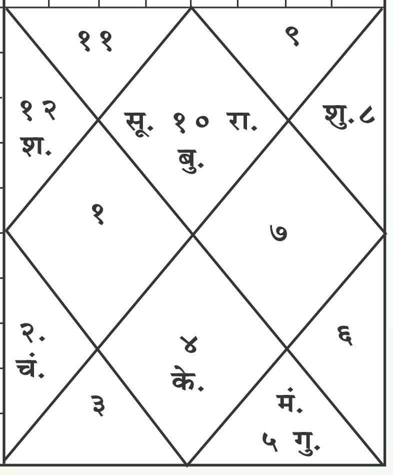

श्री विक्रम शुभ सम्वत् २०८३ शके १९४८ माघ कृष्ण पक्ष

दि. २३ जनवरी से ०६ फरवरी २०२७ तक

उत्तरायण **शिशिर ऋतु**

तिथि	वार	समाप्ति घं.	मि.	नक्षत्र	समाप्ति घं.	मि.	योग	समाप्ति घं.	मि.	करण	समाप्ति घं.	मि.	सू.उ. घ.मि.	सू.अ. घ.मि.	चन्द्रराशि प्रवेश	सूर्य स्पष्ट स्टे.टा ५/३०			जनवरी फरवरी	यहाँ पर दिया गया, सभी समय, भा.स्टे.स्टा.में है जो सम्पूर्ण भारत में समान रूप से ग्राह्य रहेगा ।
०१	शनि	१४	११	पुष्य श्ले	०७ २८	०० ५४	प्रीति आयु	०९ २९	३८ ३९	कौल	१४	१३	०७ १३	१८ ०४	सिं२८।५३	०९	०८	३०	23	बुध धनिष्ठा में २२।५१
०२	रवि	१०	५५	मघा	२६	४६	सौभा	२६	०१	गर	१०	५७	१३	०५	सिंह	०९	०९	३१	24	भ. २१।३०से, वक्री गुरू श्ले ४ कर्क में २५।३१, सूर्य श्रवण में १७।००
०३	सोम	०८	०९	पूफा	२५	४२	शोभ	२२	५२	विष्टि	०८	११	१२	०५	कं.३०।४५	०९	१०	३२	25	भ. ८।११ तक, श्री संकष्टचतुर्थी व्रत, चन्द्रोदय २१।१९
०४	सोम	३०	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	०९	००	००	00	चतुर्थी का क्षय
०५	मंगल	२८	३१	उफा	२४	४०	अति	२०	१६	कौल	१७	११	१२	०६	कन्या	०९	११	३३	26	भारतीय गणतंत्र दिवस
०६	बुध	२७	५२	हस्त	२३	३९	सुक	१८	१७	गर	१६	०८	१२	०७	कन्या	०९	१२	३४	27	भ. २७।५४ से, बुध कुम्भ में २७।३५, सर्वार्थसिद्धि ७।१२ से २३।५६ तक
०७	गुरू	२८	०१	चित्रा	२४	४१	धृति	१६	५६	विष्टि	१५	५२	१२	०७	तु.१२।०८	०९	१३	३५	28	भ. १५।५२ तक, श्री रामानन्दाचार्य जयंती, रवियोग २४।३२ तक
०८	शुक्र	२८	५६	स्वा	२५	४४	शूल	१६	११	बाल	१६	२५	१२	०८	तुला	०९	१४	३६	29	कालाष्टमी, शुक्र मूलधनु में १८।४१, महापात दोष ११।४ तक
०९	शनि	३०	३२	विशा	२७	४९	गण्ड	१६	०१	तैति	१७	४२	१२	०९	वृ.२१।२१	०९	१५	३७	30	-
१०	रवि	अ.	रा.	अनु	३०	४६	वृद्धि	१६	१७	वणि	१९	३४	१२	०९	वृश्चिक	०९	१६	३७	31	भ. १९।३४ से, वक्री मंगल मघा में १५।५८
१०	सोम	०८	३९	ज्ये	अ.	५८	ध्रुव	१६	५४	विष्टि	०८	४१	११	१०	वृश्चिक	०९	१७	३८	01	भ. ०८।४१ तक, फरवरी मास प्रारंभ, बुध शत. में २५।७
११	मंगल	११	०८	ज्ये	०९	०३	व्या	१७	४५	बाल	११	१०	११	११	ध.०९।२१	०९	१८	३९	02	षट्लिया एकादशीव्रत (खोपरा)
१२	बुध	१३	४८	मूल	१२	११	हर्ष	१८	४३	तैति	१३	५०	१०	११	धनु	०९	१९	४०	03	प्रदोष व्रत
१३	गुरू	१६	३०	पूषा	१५	१८	वज्र	१९	४०	वणि	१६	३२	१०	१२	म.२२।१८	०९	२०	४१	04	भ. १६।३२ से २९।५० तक, शिवरात्रि व्रत
१४	शुक्र	१९	०३	उषा	१८	२६	सिद्धि	२०	३१	शकु	१९	०५	०९	१३	मकर	०९	२१	४२	05	सर्वार्थसिद्धि १८।३३ से
३०	शनि	२१	२४	श्रव	२१	३३	व्य	२१	१२	चतु	०८	१६	०७ ०९	१८ १३	मकर	०९	२२	४३	06	शनैश्चरी अमावस्या पुण्य, मौनी अमावस्या, प्रयागराज में गंगा स्नान

दि.०१/०२/२०२७स्टे.टा. ०५/३०

सू	चं	मं	बु	गु	शु	श	रा
०९	०७	०४	१०	०३	०८	११	०९
१७	१६	१३	०५	२९	०२	१६	२६
३८	१०	१०	४१	०६	४७	०२	५७
३०	५८	४५	१८	५४	०६	०३	२९
६०	७१४	१७	७१	०७	६८	०५	०३
५६	३०	०३	५३	४३	३१	१०	११
श्रव	ज्ये	मघा	धनि	श्ले४	मूल	उभा४	धनि२
-	-	व	मा	व	मा	मा	व

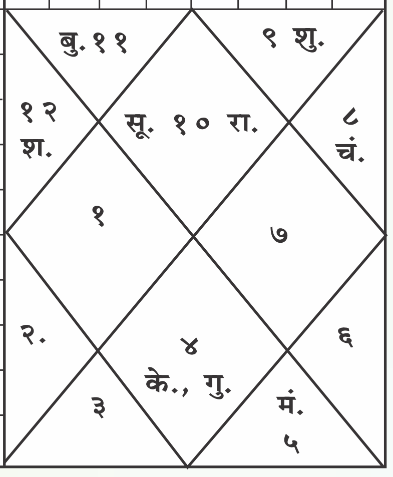

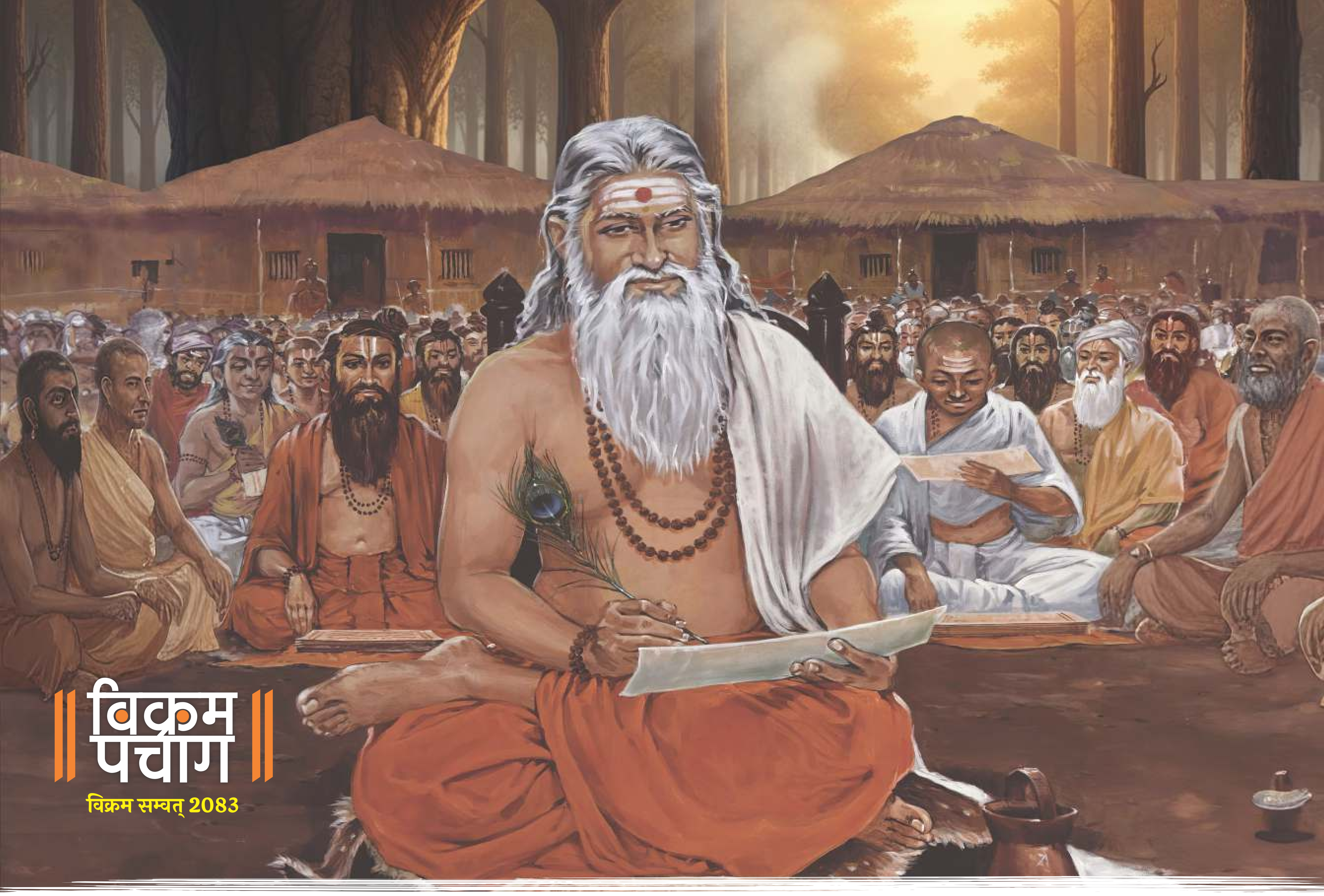

|| विक्रम पचांग ||

विक्रम सम्वत् 2083

'रौद्र' नाम सम्वत्सर	• कलि सम्वत् 5127 • सृष्टि आरंभ 1955885127	• राजा- बृहस्पति • मंत्री - मंगल

07 फरवरी से 20 फरवरी 2027

माघ शुक्ल पक्ष (शिशिर ऋतु)

21 फरवरी से 8 मार्च 2027

फाल्गुन शुक्ल पक्ष (बसंत ऋतु)

	07 प्रतिपदा फरवरी	14 अष्टमी फरवरी	**रविवार**	21 प्रतिपदा फरवरी	28 अष्टमी फरवरी	07 चतुर्दशी मार्च
	08 द्वितीया फरवरी	15 नवमी फरवरी	**सोमवार**	22 द्वितीया फरवरी	01 नवमी मार्च	08 अमावस्या मार्च सोमवती अमावस्या अतंर्राष्ट्रीय महिला दिवस
	09 तृतीया फरवरी	16 दशमी फरवरी	**मंगलवार**	23 तृतीया फरवरी	02 दशमी मार्च	
	10 चतुर्थी फरवरी	17 एकादशी फरवरी जया एकादशी	**बुधवार**	24 चतुर्थी फरवरी	03 एकादशी मार्च	
	11 पंचमी फरवरी बसंत पंचमी	18 द्वादशी फरवरी प्रदोष व्रत	**गुरुवार**	25 पंचमी फरवरी	04 एकादशी मार्च	
	12 षष्ठी फरवरी	19 त्रयोदशी फरवरी गुरू गोलवरकर जयंती	**शुक्रवार**	26 षष्ठी फरवरी	05 द्वादशी मार्च प्रदोष व्रत	
	13 सप्तमी फरवरी नर्मदा जयंती	20 चतुर्दशी पूर्णिमा फरवरी डाण्डा रोपणी पूर्णिमा	**शनिवार**	27 सप्तमी फरवरी	06 त्रयोदशी मार्च	

आचार्य शौनक का वैदिक काल-बोध

कालः सृजति भूतानि, कालः संहरते प्रजाः। कालः सुप्तेषु जागर्ति, कालो हि दुरतिक्रमः॥ (महाभारत, वनपर्व)

काल ही समस्त प्राणियों की सृष्टि करता है, काल ही प्रजा का संहार करता है। जब सब सोते हैं, तब भी काल जागता रहता है। काल ऐसा तत्त्व है, जिसे कोई भी लाँघ नहीं सकता।

आचार्य शौनक वैदिक युग के उन मनीषियों में हैं, जिनका व्यक्तित्व किसी एक ग्रंथ या एक विषय तक सीमित नहीं किया जा सकता। वे ऋग्वैदिक परंपरा के सुव्यवस्थापक, अनुष्ठान-विद्या के आचार्य और वैदिक ज्ञान को लोक तथा परंपरा में प्रवाहित रखने वाले महत्त्वपूर्ण आचार्य माने जाते हैं। शौनक का नाम आते ही वैदिक साहित्य में अनुशासन, क्रमबद्धता और परंपरागत ज्ञान-संरक्षण का बोध होता है। परंपरा के अनुसार आचार्य शौनक का संबंध नैमिषारण्य से माना जाता है, जो वैदिक अध्ययन, यज्ञ और कथा-परंपरा का एक प्रमुख केंद्र था। नैमिषारण्य केवल वन नहीं, बल्कि ज्ञान की वह भूमि थी जहाँ ऋषि-मुनि दीर्घकाल तक निवास कर वेद, ब्राह्मण और स्मृति परंपराओं का संरक्षण और विस्तार करते थे। शौनक इसी परंपरा के प्रतिनिधि आचार्य थे, जिनके नेतृत्व में ऋग्वैदिक ज्ञान को व्यवस्थित रूप में समझने और आगे पहुँचाने का कार्य हुआ। आचार्य शौनक को विशेष रूप से ऋग्वेद की अनुक्रमणिका और शाखा-परंपरा से जोड़ा जाता है। वैदिक काल में वेदों की विशाल संहिता को सुरक्षित रखना और पीढ़ी-दर-पीढ़ी शुद्ध रूप में पहुँचाना एक अत्यंत कठिन कार्य था। शौनक ने इस चुनौती को स्वीकार करते हुए ऋग्वेद की ऋचाओं, सूक्तों, ऋषियों और देवताओं के क्रम को स्पष्ट किया। यह कार्य केवल सूचीकरण नहीं था, बल्कि वैदिक ज्ञान को समझने की कुंजी प्रदान करने जैसा था। शौनक का व्यक्तित्व अनुष्ठान और यज्ञ के साथ गहराई से जुड़ा हुआ है। वे उन आचार्यों में हैं, जिनके लिए वेद केवल पाठ्य सामग्री नहीं, बल्कि जीवन-पद्धति थे। यज्ञ, आहुति, मंत्रोच्चार, छन्द और काल इन सबका समन्वय उनके चिंतन का केंद्र है। इसीलिए उनकी परंपरा में वैदिक ज्ञान सैद्धांतिक कम और व्यावहारिक अधिक दिखाई देता है। शौनक के यहाँ विद्या वही है, जो जीवन और कर्म से जुड़ी हो।

काल-गणना, ऋतु-चक्र और नक्षत्र-बोध जैसे विषय शौनक के नाम से किसी स्वतंत्र ग्रंथ के रूप में उपलब्ध नहीं हैं, किंतु उनकी परंपरा में यह सब अंतर्निहित रूप से विद्यमान है। यह इस बात का संकेत है कि शौनक का दृष्टिकोण विश्लेषणात्मक से अधिक समग्र था। वे विषयों को अलग-अलग खंडों में बाँटने की अपेक्षा उन्हें यज्ञ और वैदिक जीवन के एक अखंड प्रवाह के रूप में देखते थे। आचार्य शौनक का महत्व इस बात में भी है कि वे वैदिक ज्ञान को केवल ऋषियों तक सीमित नहीं रखते, बल्कि उसे शास्त्रीय परंपरा का अंग बनाते हैं। उनकी भूमिका एक ऐसे सेतु की है, जो प्रारंभिक वैदिक ऋषि-परंपरा और बाद की ब्राह्मण, कल्प तथा स्मृति परंपरा को जोड़ता है। इसी कारण शौनक को वैदिक संस्कृति के संरक्षक और व्यवस्थापक आचार्य के रूप में विशेष सम्मान प्राप्त है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि आचार्य शौनक वैदिक युग के ऐसे मनीषी हैं, जिनका योगदान ग्रंथ-रचना से अधिक परंपरा-निर्माण में है। वे उस ज्ञान-धारा के प्रतिनिधि हैं, जहाँ वेद, यज्ञ, काल और जीवन एक-दूसरे से अलग नहीं, बल्कि एक ही चेतना के विभिन्न रूप हैं। आचार्य शौनक वैदिक परंपरा के ऐसे आचार्य हैं, जिनका नाम आते ही वैदिक वाङ्मय की अनुशासनबद्ध संरचना, अनुष्ठानिक मर्यादा और काल-बोध की सुस्पष्ट अनुभूति सामने आ जाती है। शौनक को प्रायः ऋग्वैदिक अनुक्रमण, अनुष्ठान-विधि और ब्राह्मणीय परंपरा के संवाहक के रूप में जाना जाता है, किंतु उनके चिंतन का एक गहन पक्ष वह है जहाँ काल कोई अमूर्त दार्शनिक सत्ता नहीं रहता, बल्कि यज्ञ, ऋतु, नक्षत्र और वाणी के साथ निरंतर प्रवाहित होता हुआ जीवंत तत्त्व बन जाता है। शौनक के यहाँ काल न तो केवल गणना है और न ही मात्र खगोलीय परिघटना; वह जीवन, अनुष्ठान और ब्रह्मांडीय क्रम का सामंजस्य है। वैदिक दृष्टि में काल को समझने के लिए शौनक जिस भूमि पर खड़े दिखाई देते हैं, वह भूमि यज्ञ की है। यज्ञ वैदिक जीवन का केंद्र है और यज्ञ स्वयं काल के बिना असंभव है। शौनक परंपरा में प्रत्येक यज्ञ का अपना निश्चित समय है, अपना ऋतु-संबंध है, अपना नक्षत्र-संबंध है और अपनी आहुतियों का क्रम है। इस क्रमबद्धता में ही काल का वास्तविक स्वरूप प्रकट होता है। काल यहाँ बहता हुआ है, ठहरा हुआ नहीं; वह क्रिया के साथ चलता है, कर्म के साथ जागृत रहता है। यही कारण है कि शौनक के ग्रंथों और उनसे जुड़ी परंपराओं में काल की चर्चा प्रत्यक्ष रूप से न होकर भी सर्वत्र व्याप्त है। संवत्सर की अवधारणा शौनक के काल-बोध का मूल स्तंभ है। संवत्सर को वे मात्र दिनों का जोड़ नहीं मानते, बल्कि उसे यज्ञात्मक पूर्णता का प्रतीक मानते हैं। एक संवत्सर में ऋतुओं का आवर्तन, मासों का क्रम, पक्षों का परिवर्तन और अहोरात्र का निरंतर प्रवाह यह सब मिलकर एक ऐसे चक्र का निर्माण करता है, जिसे वैदिक मन देवताओं के यज्ञ-चक्र के रूप में देखता है। शौनक परंपरा में संवत्सर वह इकाई है जिसमें मानव यज्ञ और दैवी यज्ञ एक-दूसरे से जुड़ जाते हैं। मनुष्य जब संवत्सर भर अनुष्ठान करता है, तो वह उसी काल-चक्र में प्रवेश करता है जिसमें देवता विचरते हैं।

नक्षत्र-व्यवस्था शौनक के काल-बोध को खगोलीय आधार प्रदान करती है। वैदिक समाज के लिए आकाश केवल देखने की वस्तु नहीं था, वह समय बताने वाला ग्रंथ था। शौनक परंपरा में नक्षत्रों के उदय और अस्त के साथ ऋतुओं का बोध, यज्ञों के मुहूर्त और दीक्षा-काल का निर्धारण किया जाता है। यहाँ काल आँखों से देखा जाता है। आकाश में, ताराओं में, चंद्रमा की गति में। यह काल-बोध अनुभवजन्य है, केवल गणितीय नहीं। शौनक की दृष्टि में नक्षत्र काल को बाँटते नहीं, बल्कि उसे लय देते हैं। अहोरात्र का विभाजन भी शौनक के यहाँ साधारण प्राकृतिक घटना नहीं है। दिन और रात यज्ञ के चरण हैं। प्रातःकाल देवताओं के आह्वान का समय है, जब वाणी जागृत होती है और स्तुति का प्रवाह आरंभ होता है। मध्याह्न वह काल है जहाँ कर्म की तीव्रता होती है, हविष्य अर्पित किया जाता है और यज्ञ अपनी पूर्ण ऊर्जा में होता है। संध्या का समय समर्पण और संयोग का है, जहाँ दिन की क्रिया रात की शांति में विलीन होती है। इस प्रकार अहोरात्र शौनक के काल-बोध में एक जीवित अनुष्ठान बन जाता है। शौनक की काल-दृष्टि का एक सूक्ष्म लेकिन अत्यंत महत्त्वपूर्ण पक्ष छन्द और वाणी से जुड़ा है।

श्री विक्रम शुभ सम्वत् २०८३ शके १९४८ माघ शुक्ल पक्ष

दि. ०७ से २० फरवरी २०२७ तक

उत्तरायण **शिशिर ऋतु**

तिथि	वार	समाप्ति घं.	मि.	नक्षत्र	समाप्ति घं.	मि.	योग	समाप्ति घं.	मि.	करण	समाप्ति घं.	मि.	सू.उ. घ.मि.	सू.अ. घ.मि.	चन्द्रराशि प्रवेश	सूर्य स्पष्ट स्टे.टा ५/३०			फरवरी	यहाँ पर दिया गया, सभी समय, भा.स्टे.स्टा.में है जो सम्पूर्ण भारत में समान रूप से ग्राहय रहेगा ।
०१	रवि	२३	३८	धनि	२३	३९	वरी	२१	३८	किस्तु	१०	२९	०७ ०८	१८ १४	कु.१०।३६	०९	२३	४४	07	पंचक प्रा. १०।३६ से गुप्त नवरात्र प्रा.
०२	सोम	२५	५६	शत	२५	४५	परि	२१	४९	बाल	१२	२०	०८	१५	कुम्भ	०९	२४	४५	08	चन्द्रदर्शन, शनि रेवती १ में ७।४६
०३	मंगल	२६	०१	पूभा	२७	५९	शिव	२१	४१	तैति	१३	४७	०७	१५	मी.२१।१७	०९	२५	४५	09	गौरी तृतीया, बुध वक्री २३।७, सर्वार्थसिद्धि २७।४१ से ३१।६ तक
०४	बुध	२७	५३	उभा	२८	५२	सिद्ध	२१	११	वणि	१४	५६	०७	१६	मीन	०९	२६	४६	10	भ. १४।५६ से २७।५ तक, वरदतिलकुन्दचतुर्थी व्रत, विनायक चतुर्थी व्रत
०५	गुरू	२७	२८	रेव	२९	५४	साध्य	२०	१८	बव	१५	१६	०६	१७	मे.२९।४२	०९	२७	४६	11	श्री वसंत पंचमी, श्री सरस्वती पूजन, श्री पंचमी, खटवांग जयंती, पंचक स.२९।४२
०६	शुक्र	२७	४६	अश्वि	२९	५५	शुभ	१९	०१	कौल	१५	१३	०५	१७	मेष	०९	२८	४७	12	बुधास्त पश्चिम में १६।४१, सर्वार्थसिद्धि २९।५६ तक, रवियोग २९।५६ तक
०७	शनि	२६	३३	भर	२९	५४	शुक्ल	१७	१७	गर	१४	३६	०५	१८	मेष	०९	२९	४८	13	भ.२६।०७ से, श्री नर्मदा जयंती, रथ-आरोग्य सप्तमी, सूर्य कुंभ में १०।८
०८	रवि	२४	०१	कृति	२८	५२	ब्रह्म	१५	०८	विष्टि	१३	२८	०४	१८	वृ.११।२८	१०	००	४९	14	भ. १३।२८ तक, भीष्माष्टमी, रवियोग २८।४८ से
०९	सोम	२२	०८	रोहि	२७	४८	ऐंद्र	१२	३१	बाल	११	४७	०४	१९	वृष	१०	०१	५०	15	गुप्त नवरात्र पूर्ण सर्वार्थसिद्धि ७।४ से २६।२६ तक बाद में अमृतसिद्धि ३१।०२
१०	मंगल	२०	११	मृग	२५	४४	वैध विष्कु	०९ ३०	३४ १३	तैति	०९	३५	०३	१९	मि.१४।३४	१०	०२	५०	16	भ. ३०।५८ से, रवियोग २५।३८ तक
११	बुध	१७	१३	आर्द्रा	२३	३९	प्रीति	२६	३६	विष्टि	१७	३२	०२	२०	मिथुन	१०	०३	५१	17	भ. १७।३२ तक, जया एकादशीव्रत (गन्ने का रस), वक्री बुध धनि. में २२।४
१२	गुरू	१४	३६	पुन	२१	३३	आयु	२२	४९	बाल	१४	२८	०१	२१	क.१५।४३	१०	०४	५१	18	भीष्मद्वादशी, प्रदोष व्रत, सर्वार्थसिद्धि ७।०१ से २१।६ तक, बाद में गुरूपुष्य
१३	शुक्र	११	३३	पुष्य	१८	२६	सौभा	१८	४९	तैति	११	१५	०१	२१	कर्क	१०	०५	५२	19	सूर्य शतभिषा में २४।३७, वक्री गुरू श्ले ०३ में २४।३७, रवियोग १८।३६ तक
१४	शनि	०८	२८	श्ले	१६	२०	शोभ	१५	०७	वणि	०८	००	०७ ००	१८ २२	सिंह१६।०८	१०	०६	५२	20	भ. ०८।००से१८।२५ तक, दाण्डारोपिणी पूर्णिमा-श्री सत्यव्रत
१५	शनि	२८	४१	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	00	पूर्णिमा का क्षय

दि.१५/०२/२०२७स्टे.टा. ०५/३०							
सू	चं	मं	बु	गु	शु	श	रा
१०	०१	०४	१०	०३	०८	११	०९
०१	१०	०८	०९	२७	१८	१७	२६
४९	२५	२२	२०	१६	५७	२०	१३
३९	२९	१२	४१	२३	०५	११	०४
६०	८४८	२३	५५	०७	७०	२६	०३
३६	५०	२३	०४	५२	०५	०४	११
धनि	रोहि	मघा	शत	श्ले४	पूषा	रेव१	धनि१
-	-	व	व	व	मा	मा	व

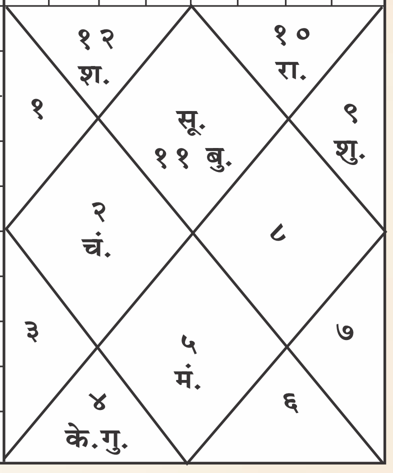

श्री विक्रम शुभ सम्वत् २०८३ शके १९४८ फाल्गुन कृष्ण पक्ष

दि. २१ फरवरी से ०८ मार्च २०२७ तक

उत्तरायण **बसन्त ऋतु**

तिथि	वार	समाप्ति घं.	मि.	नक्षत्र	समाप्ति घं.	मि.	योग	समाप्ति घं.	मि.	करण	समाप्ति घं.	मि.	सू.उ. घ.मि.	सू.अ. घ.मि.	चन्द्रराशि प्रवेश	सूर्य स्पष्ट स्टे.टा ५/३०			फरवरी मार्च	यहाँ पर दिया गया, सभी समय, भा.स्टे.स्टा.में है जो सम्पूर्ण भारत में समान रूप से ग्राहय रहेगा ।
०१	रवि	२६	४६	मघा	१३	४९	अति	११	२५	बाल	१५	२६	०६ ५९	१८ २२	सिंह	१०	०७	५३	21	शुक्र उ.षा. में १९।२५
०२	सोम	२३	३९	पूफा	११	५३	सक्र धृति	०८ २९	०२ ००	तैति	१२	४८	५९	२३	कं.१७।३०	१०	०८	५३	22	-
०३	मंगल	२१	३५	उफा	१०	२६	शूल	२६	२४	वणि	१०	३९	५८	२३	कन्या	१०	०९	५४	23	भ. १०।३९ से २१।४९ तक वक्री बुध मकर में २८।४४
०४	बुध	२०	३२	हस्त	०९	३७	गण्ड	२४	२५	बव	०९	०९	५७	२४	तु.२१।३०	१०	१०	५४	24	श्री संकष्टचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय २१।५८, शुक्र मकर में १५।१६
०५	गुरू	२१	३३	चित्रा	०९	३१	वृद्धि	२३	०३	कौल	०८	२३	५६	२४	तुला	१०	११	५४	25	-
०६	शुक्र	२०	३२	स्वा	१०	११	ध्रुव	२२	१५	गर	०८	२४	५५	२५	वृ.२९।१४	१०	१२	५५	26	भ.२०।४३ से, श्री यशोदा जयंती, रवियोग १०।१४ से
०७	शनि	२१	३५	विशा	११	३८	व्या	२२	०७	विष्टि	०९	१४	५५	२५	वृश्चिक	१०	१३	५५	27	भ. ९।१४ तक, रवियोग ११।४० तक
०८	रवि	२३	४०	अनु	१३	४५	हर्ष	२२	२६	बाल	१०	४६	५४	२६	वृश्चिक	१०	१४	५५	28	कालाष्टमी
०९	सोम	२६	४६	ज्ये	१६	२५	वज्र	२३	०९	तैति	१२	५४	५३	२७	ध.१६।२७	१०	१५	५६	01	मार्च मास प्रारंभ
१०	मंगल	२८	५२	मूल	१९	२५	सिद्धि	२४	०५	वणि	१५	२५	५२	२७	धनु	१०	१६	५६	02	भ. १५।२५ से २८।४५ तक
११	बुध	अ.	५८	पूषा	२२	३२	व्य	२५	०४	बव	१८	०५	५१	२७	म.२९।२०	१०	१७	५६	03	बुध मार्गी १८।२
११	गुरू	०७	०१	उषा	२५	३४	वरी	२६	०१	बाल	०७	२४	५०	२८	मकर	१०	१८	५६	04	विजया एकादशीव्रत (पेड़ा), शुक्र श्रवण में २५।३९
१२	शुक्र	०९	०५	श्रव	२८	१९	परि	२६	४०	तैति	०९	५४	४९	२८	मकर	१०	१९	५६	05	प्रदोष व्रत, सूर्य पू.भा. में. ६।५७, सर्वार्थसिद्धि ६।४९ से २८।२१ तक
१३	शनि	१२	११	धनि	३०	४०	शिव	२७	०३	वणि	१२	०४	४८	२९	कुं.१७।३५	१०	२०	५७	06	भ. १२।४ से २४।५९ तक, श्री महाशिवरात्रिव्रत
१४	रवि	१३	१५	शत	अ.	रा.	सिद्ध	२७	०४	शकु	१३	४६	४७	२९	कुम्भ	१०	२१	५७	07	-
३०	सोम	१४	१८	शत	०८	३३	साध्य	२६	४२	नाग	१४	५९	०६ ४६	१८ ३०	मी.२७।४०	१०	२२	५७	08	सोमवती अमावस्या पुण्य

दि.२२/०२/२०२७स्टे.टा. ०५/३०							
सू	चं	मं	बु	गु	शु	श	रा
१०	०४	०४	१०	०३	०८	११	०९
०८	२२	०५	०१	२६	२७	१८	२५
५३	४९	३५	५३	२२	०९	०३	५०
१८	०२	५४	१७	०२	४१	५३	४७
६०	८५६	२३	६०	०७	७०	०६	०३
२५	२३	४३	०६	३४	४८	२९	११
शत	पूफा	मघा	धनि	श्ले३	उषा	रेव१	धनि१
-	-	व	मा	व	मा	मा	व

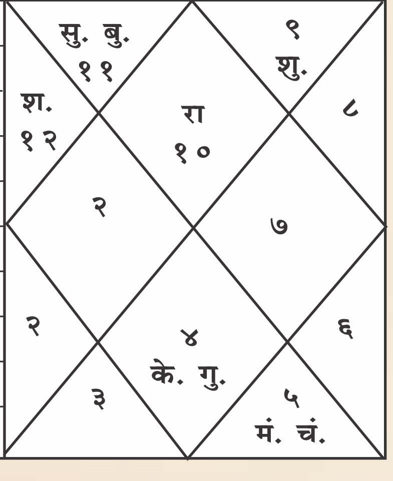

'रौद्र' नाम सम्वत्सर | ● कलि सम्वत् 5127 ● सृष्टि आरंभ 1955885127 | ● राजा- बृहस्पति ● मंत्री - मंगल

9 मार्च से 22 मार्च 2027
फाल्गुन शुक्ल पक्ष (बसंत ऋतु)

23 मार्च से 6 अप्रैल 2027
चैत्र कृष्ण पक्ष (बसंत ऋतु)

	14 षष्ठी मार्च	**21** चतुर्दशी मार्च	**रविवार**		**28** षष्ठी मार्च	**04** त्रयोदशी अप्रैल प्रदोष व्रत
	15 सप्तमी मार्च होलाष्टक आरंभ	**22** पूर्णिमा मार्च धुलेड़ी	**सोमवार**		**29** सप्तमी मार्च शील सप्तमी पूजन	**05** चतुर्दशी अप्रैल
09 प्रतिपदा मार्च	**16** अष्टमी मार्च		**मंगलवार**	**23** प्रतिपदा मार्च भगतसिंह , सुखदेव, राजगुरू शहीद दिवस	**30** अष्टमी मार्च शीतला अष्टमी	**06** अमावस्या अप्रैल अमावस्या
10 द्वितीया मार्च फुलेरा दूज	**17** नवमी दशमी मार्च		**बुधवार**	**24** द्वितीया मार्च	**31** नवमी मार्च	
11 तृतीया मार्च	**18** एकादशी मार्च आमलमी एकादशी		**गुरुवार**	**25** तृतीया मार्च	**01** दशमी अप्रैल दशामाला पूजन	
12 चतुर्थी मार्च	**19** द्वादशी मार्च		**शुक्रवार**	**26** चतुर्थी मार्च	**02** एकादशी अप्रैल पापमोचनी एकादशी	
13 पंचमी मार्च	**20** त्रयोदशी मार्च प्रदोष व्रत		**शनिवार**	**27** पंचमी मार्च रंग पंचमी	**03** द्वादशी अप्रैल	

काल का मापक, माया का ज्ञाता

कालः सृजति भूतानि कालः संहरते पुनः। कालस्य वशगा सर्वे न कालो वशमागतः।।

“काल ही समस्त प्राणियों की सृष्टि करता है और काल ही उनका संहार करता है। संपूर्ण जगत काल के अधीन है, परंतु काल स्वयं किसी के अधीन नहीं होता।”

भारतीय परंपरा में जब भी “असुर” शब्द आता है, तो सामान्यतः उसे नकारात्मक अर्थों में देखा जाता है। परंतु यह दृष्टि अधूरी है। असुर शब्द का मूल अर्थ केवल देव-विरोधी नहीं, बल्कि वह चेतना भी है जो प्रकृति, पदार्थ और नियमों को प्रत्यक्ष अनुभव और गणना के माध्यम से समझती है। इसी व्यापक अर्थ में मायासुर का स्थान अत्यंत विशिष्ट है। वह केवल पौराणिक कथाओं का पात्र नहीं, बल्कि भारतीय काल-गणना और वैज्ञानिक दृष्टि की एक भूली हुई धारा का प्रतिनिधि है। मायासुर को परंपरा में “माया का ज्ञाता” कहा गया है। यहाँ माया का अर्थ भ्रम नहीं, बल्कि मापन, संरचना और रूपांतरण की शक्ति है। जो व्यक्ति माया को समझ लेता है, वह समय और स्थान दोनों को समझने लगता है। मायासुर की विद्या इसी बोध से उपजी थी। उसने काल को किसी दैवी रहस्य की तरह नहीं, बल्कि प्रकृति के नियम की तरह देखा ऐसा नियम जिसे समझा जा सकता है, मापा जा सकता है और जीवन में उतारा जा सकता है। पौराणिक संकेत बताते हैं कि मायासुर की सभ्यताएँ समय के अनुशासन पर आधारित थीं। उसके नगर केवल ईंट और पत्थर से नहीं बने थे, बल्कि सूर्य की गति, चंद्र की कलाओं और ऋतु-चक्रों के साथ तालमेल में रचे गए थे। दिन और रात, प्रकाश और अंधकार ये सब उसके लिए केवल प्रतीक नहीं, बल्कि काल-गणना के उपकरण थे। इसी कारण उसे भारतीय परंपरा का एक आदिम काल-वैज्ञानिक भी कहा जा सकता है।

मायासुर की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उसने सूर्य और चंद्रमा को देवता से पहले समय-सूचक के रूप में देखा। सूर्य उसके लिए दिन का मापक था। छाया, दिशा और कोण के माध्यम से। वहीं चंद्रमा रात और मास का सूक्ष्म संकेतक था। कलाओं और नक्षत्रों के माध्यम से। इस संयुक्त दृष्टि से उसने काल को स्थूल और सूक्ष्म दोनों स्तरों पर समझा। यही दृष्टि आगे चलकर पंचांग, तिथि-नक्षत्र और सौर-चंद्र समन्वय में दिखाई देती है। देव परंपरा में काल प्रायः अनुष्ठान से जुड़ा रहा। यज्ञ, व्रत और पर्व के माध्यम से। जबकि मायासुर की परंपरा में काल जीवन-व्यवस्था से जुड़ा था। कृषि, जल-संचय, निर्माण और विश्राम सब कुछ समय के वैज्ञानिक ज्ञान पर आधारित था। यह अंतर ही देव और असुर के संघर्ष का गूढ़ कारण भी माना जा सकता है। यह संघर्ष शक्ति का नहीं, बल्कि दृष्टि का था। महाभारत में वर्णित मयसभा का प्रसंग मायासुर की काल-दृष्टि का प्रतीकात्मक उदाहरण है। वहाँ जल भूमि जैसा और भूमि जल जैसी प्रतीत होती है। यह केवल भ्रम नहीं, बल्कि यह संकेत है कि समय और स्थान भी देखने वाले की चेतना के अनुसार बदलते हैं। मायासुर इस सत्य को जानता था कि काल स्थिर नहीं, बल्कि सापेक्ष है और यही आधुनिक विज्ञान की भी मूल मान्यता है। समय के साथ मायासुर की गणनात्मक और वैज्ञानिक परंपरा को “माया” कहकर उपेक्षित कर दिया गया। जो धारा काल को मापने और समझने का साहस करती थी, उसे आध्यात्मिक कथा के नीचे दबा दिया गया। परंतु उसका प्रभाव पूरी तरह समाप्त नहीं हुआ। भारतीय ज्योतिष, वास्तु और पंचांग में जो गणितीय और खगोलीय सटीकता दिखाई देती है, वह उसी भूली हुई धारा की स्मृति है।

मायासुर को यदि केवल असुर कहकर देखा जाए, तो हम भारतीय ज्ञान-परंपरा के एक महत्वपूर्ण पक्ष को खो देते हैं। वह वास्तव में एक आचार्य था काल का, माया का और प्रकृति के नियमों का। उसने सिखाया कि समय से डरना नहीं, उसे समझना चाहिए। मायासुर को पौराणिक ग्रंथों, वास्तु-शास्त्र, खगोल विद्या और लोककथाओं में मायासुर को केवल दानव नहीं, बल्कि माया, गणना और समय के विज्ञान का अधिष्ठाता माना गया है। मायासुर का उल्लेख महाभारत, विष्णु पुराण, मत्स्य पुराण और लोक परंपराओं में विभिन्न रूपों में मिलता है। वह देवताओं का विरोधी अवश्य था, परंतु अज्ञान का प्रतीक नहीं। भारतीय दृष्टि में असुर का अर्थ “जो प्राण में रमा हो” भी माना गया है। अर्थात् जो भौतिक जगत, प्रकृति और उसके नियमों का सूक्ष्म अध्ययन करे। इसी कारण मायासुर को प्रथम वैज्ञानिक चेतना के रूप में भी देखा जाता है। कहा जाता है कि जिस काल में देवताओं की गणना यज्ञ, तिथि और नक्षत्रों तक सीमित थी, उसी काल में मायासुर ने समय को गणितीय, खगोलीय और स्थापत्य रूप में बाँधने का प्रयास किया। यही कारण है कि उसके द्वारा रचित सभ्यताएँ चाहे वह मायापुर हो, त्रिपुर हो या अन्य असुरी नगर समय और दिशा के अद्भुत संतुलन पर आधारित थीं।

मायापुर को लेकर जो कथाएँ मिलती हैं, वे सीधे किसी एक ग्रंथ में नहीं, बल्कि लोकस्मृति, स्थापत्य संकेतों और प्रतीकात्मक कथाओं में बिखरी हुई हैं। कहा जाता है कि मायापुर कोई साधारण नगर नहीं था, बल्कि काल-नगर था। ऐसा नगर जहाँ दिन, रात, ऋतु और युगों की गणना भवनों की छाया, द्वारों की दिशा और जल-प्रवाह से होती थी। सूर्योदय और सूर्यास्त केवल दृश्य नहीं, बल्कि गणना के बिंदु थे। कथाओं के अनुसार मायापुर में ऐसे स्तंभ थे जिनकी छाया देखकर समय मापा जाता था। यह छाया-घड़ी का आदिम रूप था। इन स्तंभों की ऊँचाई, कोण और स्थिति इस प्रकार निर्धारित थी कि वर्ष के अलग-अलग दिनों में छाया का स्थान बदलता रहे और उसी से ऋतु परिवर्तन का संकेत मिले। यह अवधारणा आगे चलकर वैदिक सूर्य-सिद्धांत और ज्योतिषीय गणनाओं में विकसित हुई। मायासुर की सबसे बड़ी विशेषता थी काल को माया के रूप में समझना। वह जानता था कि समय स्थिर नहीं है, बल्कि देखने वाले की चेतना पर निर्भर करता है। यही कारण है कि उसके द्वारा निर्मित सभ्यताएँ भ्रम और यथार्थ के बीच स्थित थीं। महाभारत में वर्णित मयसभा इसका प्रतीक है, जहाँ जल भूमि जैसा और भूमि जल जैसी प्रतीत होती थी। यह केवल स्थापत्य कौशल नहीं, बल्कि काल-बोध का दार्शनिक प्रयोग था यह दिखाने के लिए कि जो दिख रहा है, वही सत्य नहीं। कुछ विद्वानों का मत है कि मायासुर ने काल को तीन स्तरों में बाँटा दृश्य काल, गणितीय काल और चेतन काल। दृश्य काल वह है जिसे हम दिन-रात, सूर्योदय-सूर्यास्त के रूप में देखते हैं। गणितीय काल वह है जिसे तिथि, नक्षत्र, मास और वर्ष में बाँधा गया। जबकि चेतन काल वह है, जो अनुभूति से जुड़ा है। जहाँ एक क्षण युग बन जाता है और युग क्षण। मायापुर की कथाओं में कहा जाता है कि वहाँ एक ऐसा जलकुंड था, जिसमें आकाश का प्रतिबिंब स्पष्ट दिखाई देता था।

श्री विक्रम शुभ सम्वत् २०८३ शके १९४८ फाल्गुन शुक्ल पक्ष

दि. ०९ से २२ मार्च २०२७ तक

उत्तरायण **बसन्त ऋतु**

तिथि	वार	समाप्ति घं.	मि.	नक्षत्र	समाप्ति घं.	मि.	योग	समाप्ति घं.	मि.	करण	समाप्ति घं.	मि.	सू.उ. घ.मि.	सू.अ. घ.मि.	चन्द्रराशि प्रवेश	सूर्य स्पष्ट स्टे.टा ५/३०			मार्च	यहाँ पर दिया गया, सभी समय, भा.स्टे.स्टा.में है जो सम्पूर्ण भारत में समान रूप से ग्राहय रहेगा ।
०१	मंगल	१५	३९	पूभा	०९	५६	शुभ	२५	५६	बव	१५	४१	०६ ४५	१८ ३०	मीन	१०	२३	५७	09	चन्द्रदर्शन, सर्वार्थसिद्धि ९।५९ से ३०।४३ तक, महापात दोष १८।८से२२।९ तक
०२	बुध	१५	५१	उभा	१०	५१	शुक्ल	२४	४८	कौल	१५	४३	४४	३१	मीन	१०	२४	५७	10	फूलेरा बीज, श्री रामकृष्ण परमहंस जयंती
०३	गुरू	१५	३६	रेव	११	१८	ब्रह्म	२३	२०	गर	१५	३८	४३	३१	मे.११।२०	१०	२५	५७	11	भ. २७।२० से, वक्री मंगल श्ले कर्क में २४।१६, पंचक स. ११।२० पर
०४	शुक्र	१४	५५	अश्वि	११	२०	ऐन्द्र	२१	३२	विष्टि	१४	५७	४२	३१	मेष	१०	२६	५७	12	भ. १४।५७ तक, श्री विनायक चतुर्थीव्रत, अमृतसिद्धि ६।४२ से ११।२२ तक
०५	शनि	१३	५३	भर	११	०१	वैधृ	१९	२८	बाल	१३	५५	४१	३२	वृ.१६।५५	१०	२७	५७	13	श्री याज्ञवल्क्य जयंती, रवियोग ११।४ से
०६	रवि	१२	३०	कृति	१०	२१	विष्कु	१७	०८	तैति	१२	३२	४०	३२	वृष	१०	२८	५६	14	रवियोग १०।२३ तक
०७	सोम	१०	४९	रोहि	०९	२४	प्रीति	१४	३५	वणि	१०	५१	३९	३२	मि.२०।५१	१०	२९	५६	15	भ.१०।५१ से २१।५५ तक, होलाष्टक १०।५२ से प्रा., सूर्य मीन में ६।५९
०८	मंगल	०८	५३	मृग	०८	११	आयु	११	४८	बव	०८	५५	३८	३३	मिथुन	११	००	५६	16	श्री दुर्गाष्टमी, रवियोग ८।१४ से
०९	बुध	०६	४२	आर्द्रा पुन	०६ २९	४४ ०५	सौभा शोभ	०८ २९	५३ ४७	कौल	०६	४४	३६	३३	क.२३।३३	११	०१	५६	17	रवियोग २९।०७ तक
१०	बुध	२८	२०	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	००	00	दशमी का क्षय
११	गुरू	२५	४९	पुष्य	२७	१९	अति	२६	३२	वणि	१५	०७	३७	३४	कर्क	११	०२	५६	18	भ. १५।०७ से २५।५१ तक, आमलकी एकादशीव्रत (ऑवला)
१२	शुक्र	२३	१५	श्ले	२५	२९	सुक	२३	१७	बव	१२	३५	३६	३४	सिं.२५।३१	११	०३	५५	19	बुध शत. से ११।५१
१३	शनि	२०	४३	मघा	२३	४२	धृति	२०	०४	कौल	१०	०१	३५	३५	सिंह	११	०४	५५	20	शनिप्रदोषव्रत, रवियोग २३।४५से, सायन मेष में रवि २५।५६
१४	रवि	१८	२०	पूफा	२२	०५	शूल	१६	५७	गर	०७	३२	३४	३५	कं.२७।४५	११	०५	५५	21	भ. १८।२२ से २९।१५ तक, होली, होलिका दहन प्रदोषकाल में १८।३५ से
१५	सोम	१६	११	उफा	२०	४४	गण्ड	१४	०२	बव	१६	१३	०६ ३३	१८ ३५	कन्या	११	०६	५४	22	फाल्गुनी पूर्णिमाव्रत, धूलेण्डी (धूलोत्सव) श्री चैतन्य महाप्रभु जयंती

दि.२२/०३/२०२७स्टे.टा. ०५/३०

सू	चं	मं	बु	गु	शु	श	रा
११	०५	०३	१०	०३	१०	११	०९
०६	०१	२७	०९	२३	००	२१	२४
५४	०२	२३	४६	३१	३२	१९	२१
११	२९	३४	१८	११	०५	५३	४०
५९	८४३	०७	७२	०४	७२	०७	०३
३२	४२	४०	१०	०४	०६	२२	११
उभा	उफा	श्ले	शत	श्ले३	धनि	रेव२	धनि१
-	-	व	मा	व	मा	मा	व

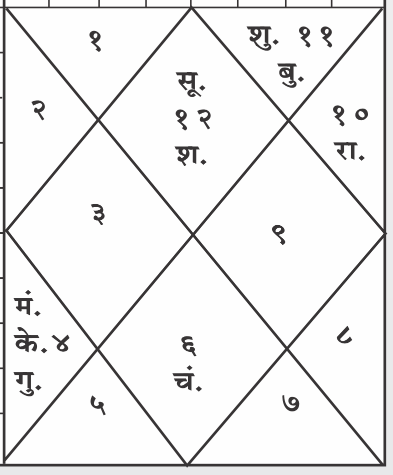

श्री विक्रम शुभ सम्वत् २०८३ शके १९४८ चैत्र कृष्ण पक्ष

दि. २३ मार्च से ०६ अप्रेल २०२७ तक

उत्तरायण **बसन्त ऋतु**

तिथि	वार	समाप्ति घं.	मि.	नक्षत्र	समाप्ति घं.	मि.	योग	समाप्ति घं.	मि.	करण	समाप्ति घं.	मि.	सू.उ. घ.मि.	सू.अ. घ.मि.	चन्द्रराशि प्रवेश	सूर्य स्पष्ट स्टे.टा ५/३०			मार्च अप्रेल	यहाँ पर दिया गया, सभी समय, भा.स्टे.स्टा.में है जो सम्पूर्ण भारत में समान रूप से ग्राहय रहेगा ।
०१	मंगल	१४	२७	हस्त	१९	४८	वृद्धि	११	२५	कौल	१४	२९	०६ ३२	१८ ३५	कन्या	११	०७	५४	23	आम्रकुसुमप्राशन, वसन्तोत्सव, वक्री गुरू श्ले २ में २०।२९
०२	बुध	१३	१२	चित्रा	१९	२३	ध्रुव	०९	१३	गर	१३	१४	३१	३६	तु.०७।३२	११	०८	५३	24	भ. २४।५१से, श्री चिन्तामण गणेश यात्रा
०३	गुरू	१२	३६	स्वा	१९	३८	व्या हर्ष	०७ ३०	३२ २०	विष्टि	१२	३८	३०	३६	तुला	११	०९	५३	25	भ.१२।३८ तक, श्री संकष्ट चतुर्थीव्रत, चंद्रोदय २१।३९
०४	शुक्र	१२	४२	विशा	२०	३४	वज्र	२९	४३	बाल	१२	४४	२९	३६	वृ.१४।१७	११	१०	५२	26	-
०५	शनि	१३	३२	अनु	२२	१३	सिद्धि	२९	४०	तैति	१३	३४	२८	३६	वृश्चिक	११	११	५२	27	रंगपंचमी, शुक्र शतभिषा में ७।५१, रवियोग २२।१६ से
०६	रवि	१५	०३	ज्ये	२४	३०	व्य	३०	०६	वणि	१५	०५	२७	३७	ध.२४।३२	११	१२	५१	28	भ. १५।५ से २८।४ तक, सर्वार्थसिद्धि २४।३३ से ३०।२५ तक
०७	सोम	१७	०९	मूल	२७	१६	वरी	अ.	रा.	बव	१७	११	२६	३७	धनु	११	१३	५०	29	श्री शील सप्तमी (श्री शीतलामाता पूजन), कालाष्टमी, बुध प्रूभा में २५।०१
०८	मंगल	१९	३८	पूषा	३०	१८	वरी	०६	५३	कौल	१९	४०	२५	३८	धनु	११	१४	५०	30	शीतलाष्टमी
०९	बुध	२२	१५	उषा	अ.	रा.	परि	०७	५१	तैति	०८	५८	२४	३८	म.१३।०८	११	१५	४९	31	श्री चिन्तामण गणेश यात्रा, सूर्य रेवती में २६।१३
१०	गुरू	२४	४३	उषा	०९	२३	शिव	०८	५०	वणि	११	३१	२३	३९	मकर	११	१६	४८	01	भ.११।३३ से २४।४५ तक, श्री दशामाता पूजन, अप्रेल मा.प्रा. मंगलमार्गी११।३८
११	शुक्र	२६	५०	श्रव	१२	१४	सिद्ध	०९	४०	बव	१३	५२	२२	३९	कुं.२५।३३	११	१७	४७	02	पापमोचिनी एकादशीव्रत (चारोली), पंचक प्रारंभ २५।३३ से
१२	शनि	२८	२५	धनि	१४	४०	साध्य	१०	०८	कौल	१५	४४	२१	३९	कुम्भ	११	१८	४७	03	-
१३	रवि	२९	२१	शत	१६	३१	शुभ	१०	१२	गर	१७	००	२०	४०	कुम्भ	११	१९	४६	04	भ. २९।२३ से, प्रदोष व्रत, वारूणी योग सूर्योदय से १६।३३ तक
१४	सोम	२९	३९	पूभा	१७	४५	शुक्ल	०९	४६	विष्टि	१७	३७	१९	४०	मी.११।१२	११	२०	४५	05	भ. १७।३७ तक, शिवरात्रि व्रत, बुध मीन में १६।१३
३०	मंगल	२९	१९	उभा	१८	२१	ब्रह्म	०८	४९	चतु	१७	३५	०६ १८	१८ ४१	मीन	११	२१	४४	06	भौमवती अमावस्या पुण्य, सर्वार्थसिद्धि ६।१८ से १८।२३ तक

दि.०५/०४/२०२७स्टे.टा. ०५/३०

सू	चं	मं	बु	गु	शु	श	रा
११	१०	०३	१०	०३	१०	११	०९
२०	२६	२६	२९	२२	१७	२३	२३
४४	४७	४५	१७	५१	२४	०५	३७
५६	१४	२४	२३	२९	२८	०२	११
५९	७७०	०२	९४	०१	७२	०७	०३
०६	३२	४६	३०	२३	२८	३५	११
रेव	पूभा	श्ले	पूभा	श्ले२	शत	रेव२	धनि१
-	-	व	मा	व	मा	मा	व

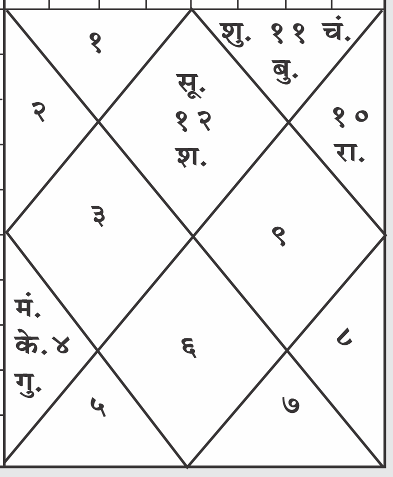

कालचक्र में रची गई सृष्टि का शिल्पी

कालः सृजति भूतानि कालः संहरते पुनः। कालस्य वशगा सर्वे न कश्चित् कालकारणम्॥

“काल ही समस्त प्राणियों की उत्पत्ति करता है और काल ही उनका संहार करता है। सम्पूर्ण जगत काल के अधीन है; कोई भी काल से परे या काल का कारण नहीं है।”

भारतीय परंपरा में विश्वकर्मा केवल देवताओं के शिल्पी नहीं हैं, वे सृष्टि की उस सूक्ष्म योजना के अधिष्ठाता माने जाते हैं जिसमें रूप, माप, अनुपात और काल चारों एक-दूसरे से अविच्छिन्न हैं। जिस प्रकार भवन ईंट-पत्थर से नहीं, बल्कि माप और क्रम से खड़ा होता है, उसी प्रकार ब्रह्मांड भी केवल तत्त्वों से नहीं, समय की गणना से स्थिर होता है। इसीलिए विश्वकर्मा को “समय का वास्तुकार” कहना भारतीय दृष्टि में अत्यंत संगत है। वे केवल निर्माण नहीं करते; वे काल के साथ निर्माण करते हैं। ऐसा निर्माण जो युगों तक टिके, ऋतुओं के साथ श्वास ले और ग्रहों की गति के साथ स्पंदित हो। विश्वकर्मा का उल्लेख ऋग्वैदिक सूक्तों से लेकर पुराणों तक फैला हुआ है। कहीं वे देवताओं के नगर रचते हैं, कहीं आयुध गढ़ते हैं, कहीं ब्रह्मांडीय यंत्रों के सूत्रधार हैं। पर इन सब प्रसंगों के मूल में जो तत्व स्थायी रूप से उपस्थित है, वह है कालबोध समय की समझ, समय की मर्यादा और समय की लय।

सृष्टि की गति, जन्म-मरण का चक्र, युगों का आवर्तन सब काल के ही आयाम हैं। विश्वकर्मा का शिल्प इस कालबोध के बिना अधूरा है। पुराणों में वर्णन आता है कि जब देवताओं को आवास चाहिए, तो केवल स्थान का चयन नहीं होता; मुहूर्त, नक्षत्र, तिथि और ग्रहयोग देखे जाते हैं। यह प्रक्रिया बताती है कि निर्माण से पहले काल की गणना अनिवार्य है। विश्वकर्मा इसी गणना के ज्ञाता हैं। वास्तुशास्त्र में दिशाएँ सूर्य की गति से निर्धारित होती हैं। पूर्व का महत्व सूर्योदय से जुड़ा है; दक्षिण का संबंध यम और मध्याह्न से; उत्तर कुबेर और रात्रि-उत्तरायण से। यह दिशाबोध वस्तुतः दिवस-रात्रि की कालगणना का ही स्थापत्य रूप है। विश्वकर्मा की रचनाएँ इसलिए दीर्घजीवी मानी गईं क्योंकि वे कालचक्र के अनुरूप थीं। पुराणों में युगों का विस्तृत वर्णन है। सत, त्रेता, द्वापर और कलि। प्रत्येक युग की अपनी काल-मात्रा, अपना धर्म और अपना स्थापत्य स्वभाव बताया गया है। सत्ययुग में सरल, विशाल और स्थायी निर्माण; त्रेतायुग में यज्ञकुंडों और नगरों का विस्तार; द्वापर में राजमहलों और दुर्गों का उत्कर्ष; और कलियुग में संकुचन और जटिलता। यह परिवर्तन केवल सामाजिक नहीं, कालिक है। विश्वकर्मा हर युग में उसी युग के काल-स्वभाव के अनुसार रचना करते हैं। कथाओं में आता है कि त्रेतायुग में लंका का निर्माण केवल सोने से नहीं, बल्कि उस समय की काल-ऊर्जा के अनुरूप किया गया था। इसलिए वह नगर अद्भुत तेजस्वी था। द्वापर में द्वारका समुद्र, चंद्रमा और ज्वार-भाटे की कालिक लय से जुड़ा नगर विश्वकर्मा की काल-समझ का श्रेष्ठ उदाहरण है। द्वारका का विनाश भी काल के नियम से हुआ; जब युग बदला, तो नगर का समुद्र में लीन होना उसी काल-न्याय का संकेत था। विश्वकर्मा द्वारा निर्मित आयुध वज्र, सुदर्शन, त्रिशूल केवल हथियार नहीं, काल-प्रतीक हैं। सुदर्शन चक्र का घूर्णन समय की चक्राकार गति का बिंब है। वज्र की त्वरित प्रहार-शक्ति क्षणिक काल का संकेत देती है, जबकि त्रिशूल भूत-वर्तमान-भविष्य का समन्वय है। इन आयुधों का निर्माण भी शास्त्रानुसार शुभ मुहूर्त में होता है। यहाँ शिल्प और काल एक-दूसरे में विलीन हो जाते हैं। कुछ पौराणिक प्रसंगों में विश्वकर्मा को यंत्रों का रचयिता कहा गया है। ऐसे यंत्र जो खगोलीय गणनाओं में सहायक हों। भारतीय परंपरा में यंत्र केवल धातु का उपकरण नहीं, काल-गणना का साधन भी हैं। सूर्यघटिका, घटी-यंत्र, नक्षत्र-मंडल ये सब समय को मापने और समझने के प्रयास हैं, जिनके मूल में विश्वकर्मा की बौद्धिक परंपरा मानी जाती है।

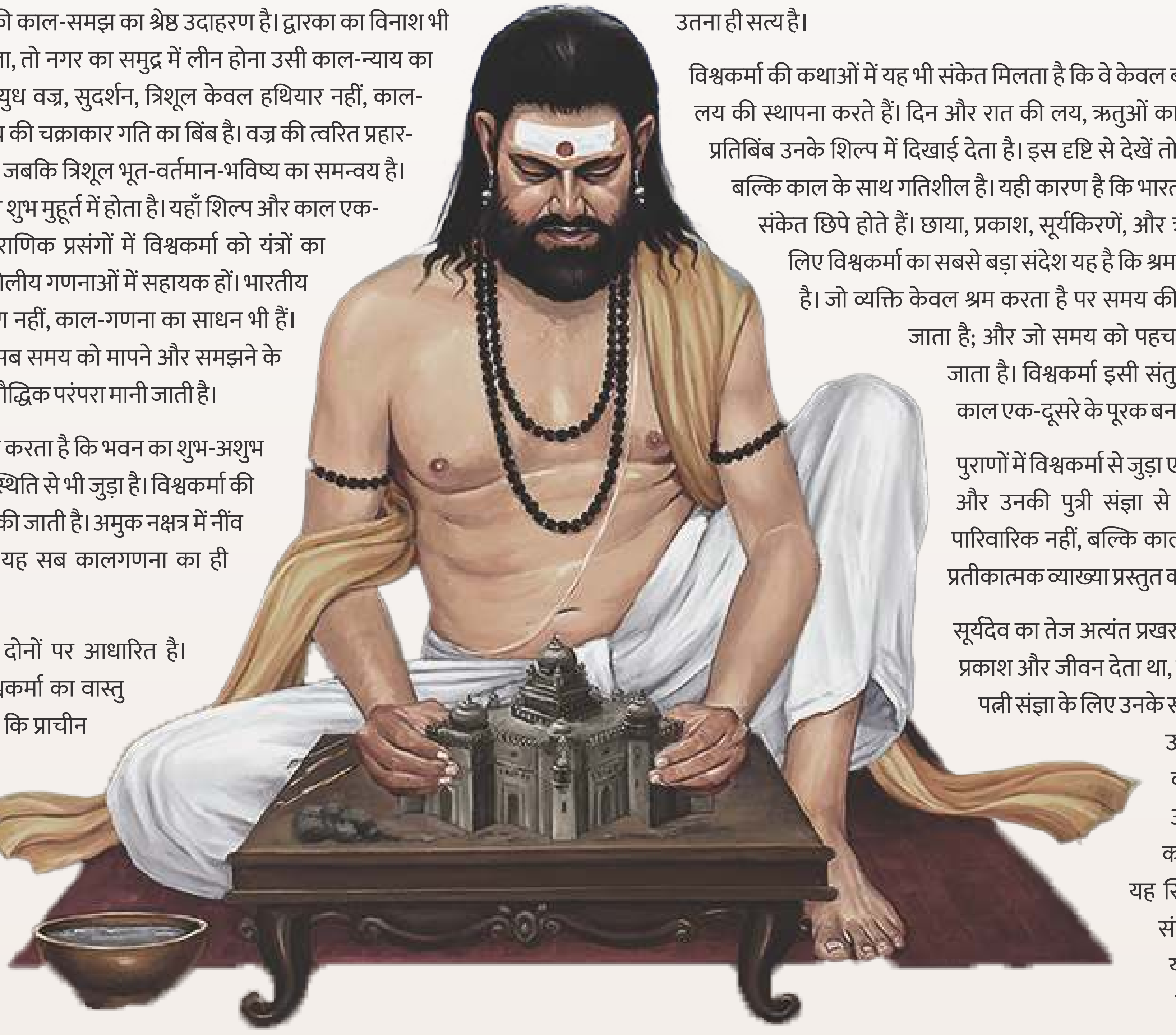

वास्तु, ग्रह और नक्षत्र। वास्तुशास्त्र स्पष्ट करता है कि भवन का शुभ-अशुभ प्रभाव केवल दीवारों से नहीं, ग्रहों की स्थिति से भी जुड़ा है। विश्वकर्मा की परंपरा में निर्माण से पहले नक्षत्र-शुद्धि की जाती है। अमुक नक्षत्र में नींव डालना, अमुक तिथि में छत चढ़ाना यह सब कालगणना का ही व्यावहारिक रूप है।

भारतीय काल-गणना चंद्र और सूर्य दोनों पर आधारित है। तिथियाँ चंद्रमा से, ऋतुएँ सूर्य से। विश्वकर्मा का वास्तु इन दोनों को साधता है। यही कारण है कि प्राचीन मंदिरों में सूर्य की किरणें विशेष तिथियों पर गर्भगृह तक पहुँचती हैं। यह संयोग नहीं, काल-वास्तु की योजना है।

ऋग्वेद में विश्वकर्मा को “सर्वस्य कर्ता” कहा गया है सबका रचयिता। यजुर्वेद और अथर्ववेद में भी उनका उल्लेख शिल्प और यज्ञीय संरचनाओं के संदर्भ में आता है। विष्णु पुराण, भागवत पुराण, महाभारत सबमें उनके प्रसंग हैं। इन ग्रंथों में बार-बार यह संकेत मिलता है कि विश्वकर्मा का ज्ञान केवल भौतिक नहीं, कालिक है।

महाभारत के प्रसंगों में जब नगरों और सभागृहों का वर्णन आता है, तो उनके निर्माण की विधि में समय की शुद्धि अनिवार्य बताई गई है। भागवत पुराण में द्वारका के निर्माण-विनाश का क्रम कालचक्र के सिद्धांत को रेखांकित करता है। विष्णु पुराण में युगों की अवधि और सृष्टि-प्रलय का विवरण विश्वकर्मा की भूमिका को व्यापक ब्रह्मांडीय संदर्भ देता है। कथाओं में बताया गया है कि देवताओं और असुरों के युद्ध के बाद देवगणों को नया नगर चाहिए था। विश्वकर्मा ने नगर की योजना बनाई, पर निर्माण से पहले उन्होंने देवताओं से कहा “जब तक काल अनुकूल न हो, निर्माण स्थायी नहीं होगा।” देवताओं ने प्रतीक्षा की, शुभ मुहूर्त आया, और तब नगर बना। यह कथा प्रतीकात्मक है। यह सिखाती है कि धैर्य और समय-बोध शिल्प से भी बड़े हैं। एक अन्य प्रसंग में सूर्यदेव की पत्नी संज्ञा अपने तेज से असह्य हो जाती हैं। विश्वकर्मा सूर्य के तेज को संतुलित करते हैं। यहाँ शिल्प नहीं, ऊर्जा और काल का संतुलन है। दिन-रात, प्रकाश-अंधकार का संतुलन। यही संतुलन सृष्टि की स्थिरता है। मानव समाज में विश्वकर्मा केवल देवता नहीं, परंपरा हैं। सब उन्हें आदिगुरु मानते हैं। यह परंपरा समय के साथ विकसित हुई। त्योहारों में विश्वकर्मा पूजा केवल औज़ारों की पूजा नहीं, समय के प्रति कृतज्ञता भी है उस समय के प्रति जिसमें श्रम फलता है। काल-गणना यहाँ भी उपस्थित है। कृषि, निर्माण, व्यापार सब मौसम और तिथियों से बंधे हैं। विश्वकर्मा की परंपरा सिखाती है कि कार्य तभी सफल होता है जब वह कालानुकूल हो। विश्वकर्मा को यदि केवल शिल्पकार कहा जाए, तो यह उनकी महत्ता को सीमित करना होगा। वे काल के वास्तुकार हैं ऐसे रचनाकार जो समय को मापते भी हैं और साधते भी। उनकी रचनाएँ इसलिए टिकती हैं क्योंकि वे काल के विरुद्ध नहीं, काल के साथ खड़ी होती हैं। भारतीय काल-गणना युग, तिथि, नक्षत्र, ऋतु इन सबका शिल्प में रूपांतरण विश्वकर्मा की परंपरा की देन है।

विश्वकर्मा की अवधारणा को यदि और गहराई से देखा जाए, तो यह स्पष्ट होता है कि वे केवल निर्माण-कला के देवता नहीं, बल्कि कालबोध के दार्शनिक प्रतीक हैं। भारतीय परंपरा में निर्माण को कभी भी समय से अलग नहीं माना गया। यहाँ समय केवल गुजरता हुआ क्षण नहीं, बल्कि वह शक्ति है जो किसी भी रचना को जन्म देती है, उसे विकसित करती है और अंततः लय भी करती है। विश्वकर्मा इसी त्रिस्तरीय काल-चक्र के ज्ञाता माने गए। भारतीय दृष्टि में प्रत्येक कार्य का एक ऋतु-काल होता है। बीज बोने का समय अलग है, फसल काटने का अलग, और उसी प्रकार निर्माण आरंभ करने का भी। विश्वकर्मा की परंपरा इस बात पर बल देती है कि यदि समय के स्वभाव को समझे बिना कोई रचना की जाए, तो वह टिकाऊ नहीं हो सकती। यही कारण है कि प्राचीन ग्रंथों में वास्तु और शिल्प को धर्म, ज्योतिष और कालगणना से जोड़ा गया है। यहाँ शिल्प एक स्वतंत्र विद्या नहीं, बल्कि काल-शास्त्र का व्यावहारिक रूप है। काल को भारतीय दर्शन में अनादि और अनंत माना गया है। वह न किसी का मित्र है, न शत्रु वह केवल न्यायकारी है। विश्वकर्मा का शिल्प इसी न्याय को मूर्त रूप देता है। जो नगर, मंदिर या यंत्र काल के नियमों के अनुसार बने, वे युगों तक स्मृति में रहे; और जो काल-विरुद्ध बने, वे शीघ्र नष्ट हो गए। यह संदेश केवल स्थापत्य तक सीमित नहीं, बल्कि मानव जीवन के लिए भी उतना ही सत्य है।

विश्वकर्मा की कथाओं में यह भी संकेत मिलता है कि वे केवल बाहरी संरचना नहीं गढ़ते, बल्कि लय की स्थापना करते हैं। दिन और रात की लय, ऋतुओं का क्रम, ग्रहों की गति इन सबका प्रतिबिंब उनके शिल्प में दिखाई देता है। इस दृष्टि से देखें तो विश्वकर्मा का वास्तु स्थिर नहीं, बल्कि काल के साथ गतिशील है। यही कारण है कि भारतीय मंदिरों में समय को मापने के संकेत छिपे होते हैं। छाया, प्रकाश, सूर्यकिरणें, और ऋतु परिवर्तन। मानव समाज के लिए विश्वकर्मा का सबसे बड़ा संदेश यह है कि श्रम और समय का सम्मान अनिवार्य है। जो व्यक्ति केवल श्रम करता है पर समय की मर्यादा नहीं समझता, वह थक जाता है; और जो समय को पहचानता है, उसका श्रम सार्थक हो जाता है। विश्वकर्मा इसी संतुलन के देवता हैं जहाँ कर्म और काल एक-दूसरे के पूरक बनते हैं।

पुराणों में विश्वकर्मा से जुड़ा एक अत्यंत अर्थपूर्ण प्रसंग सूर्यदेव और उनकी पुत्री संज्ञा से संबंधित है। यह कथा केवल पारिवारिक नहीं, बल्कि काल, ऊर्जा और संतुलन की गहरी प्रतीकात्मक व्याख्या प्रस्तुत करती है।

सूर्यदेव का तेज अत्यंत प्रखर था। उनका यह तेज ही सृष्टि को प्रकाश और जीवन देता था, किंतु उसी तेज के कारण उनकी पत्नी संज्ञा के लिए उनके समीप रहना असह्य हो गया। संज्ञा उस दैवी प्रकाश को सहन नहीं कर सकीं और अंततः उन्होंने अपनी छाया को वहाँ स्थापित कर स्वयं तपस्या हेतु चली गईं। यह स्थिति सृष्टि के संतुलन के लिए संकटपूर्ण थी, क्योंकि सूर्य का तेज यदि अनियंत्रित रहता, तो जीवन ही नष्ट हो सकता था। जब यह बात विश्वकर्मा तक पहुँची, तो उन्होंने इसे केवल पारिवारिक समस्या नहीं, बल्कि ब्रह्मांडीय असंतुलन के रूप में देखा। विश्वकर्मा ने सूर्यदेव से निवेदन किया कि उनके तेज को सीमित करना आवश्यक है। सूर्यदेव ने सहमति दी और विश्वकर्मा ने अपने शिल्पज्ञान से सूर्य के तेज को संतुलित किया न कम किया, न अधिक, बल्कि उतना ही रखा जितना सृष्टि के लिए आवश्यक था। इस प्रक्रिया से जो तेज निकला, उसी से दिव्य आयुधों की रचना हुई। यह दर्शाता है कि ऊर्जा का संयम ही रचनात्मक शक्ति बनता है। इस प्रसंग में विश्वकर्मा केवल शिल्पकार नहीं, बल्कि काल और ऊर्जा के नियंता के रूप में प्रकट होते हैं। वे सिखाते हैं कि सृष्टि का सौंदर्य अत्यधिक प्रकाश में नहीं, बल्कि समय और शक्ति के संतुलन में निहित है। भारतीय संस्कृति में विश्वकर्मा केवल अतीत की स्मृति नहीं, बल्कि वर्तमान और भविष्य के लिए भी एक जीवंत आदर्श हैं। आज भी जब हम किसी निर्माण की नींव रखते हैं और शुभ मुहूर्त देखते हैं, तो अनजाने में उसी प्राचीन बोध को दोहराते हैं कि समय ही सबसे बड़ा शिल्पी है, और विश्वकर्मा उसके वास्तुकार।

वेदांग ज्योतिष और काल-गणना की चेतना

कालस्य मानेन यः सूर्यचन्द्रगतीं दधे। यज्ञार्थं सूत्रबद्धं तं लगधं प्रणमाम्यहम्॥

"जिन्होंने सूर्य और चंद्रमा की गति के माध्यम से काल का मापन किया और यज्ञ के लिए समय को सूत्रों में बाँधा ऐसे आचार्य लगध को मैं नमन करता हूँ।"

आचार्य लगध केवल ज्योतिषी नहीं, काल गणना के भी आचार्य थे। उन्होंने समय को नापा नहीं, उसे समझा; उसे बाँधा नहीं, उसे प्रवाहित होने दिया सूत्रों के माध्यम से। भारतीय काल-बोध की जो धारा आज भी पंचांग, पर्व, तिथि और संक्रांति में बह रही है, उसका स्रोत वही प्राचीन वेदांग ज्योतिष है, और उसका एक महत्वपूर्ण नाम आचार्य लगध है। काल को सूत्रों में बाँधने वाला वैदिक मनीषी भारतीय बौद्धिक परंपरा में कुछ नाम ऐसे हैं जो बहुत कम बोले जाते हैं, पर जिनके बिना पूरी परंपरा अधूरी प्रतीत होती है। लगध ऐसा ही एक नाम है। वे न तो राजदरबारों के इतिहास में मिलते हैं, न ही पुराणों की कथात्मक प्रसिद्धि में, किंतु समय की जिस व्यवस्था पर भारतीय संस्कृति टिकी है, उसकी नींव में लगध का मौन हस्ताक्षर विद्यमान है। वेदांग ज्योतिष के रचयिता के रूप में लगध ने पहली बार काल को अनुभव से निकालकर गणना की भाषा दी। भारतीय सभ्यता में समय कभी केवल बीतने वाली इकाई नहीं रहा। वह यज्ञ की अग्नि में आहुति के क्षण से लेकर ऋतुचक्र के सूक्ष्म परिवर्तन तक, जीवन की प्रत्येक गति में व्याप्त रहा है। इसी कारण भारत में काल को जानने की जिज्ञासा दर्शन नहीं, बल्कि आवश्यकता थी। धर्म की, यज्ञ की, कृषि की और अंततः जीवन की। इस जिज्ञासा को सबसे पहली व्यवस्थित, सूत्रबद्ध और गणनात्मक भाषा देने वाले आचार्य का नाम है लगध। वेदांग ज्योतिष के रचयिता के रूप में लगध भारतीय बौद्धिक परंपरा में उस सेतु की तरह हैं, जहाँ से समय अनुभूति से विज्ञान की ओर बढ़ता है। वेदों की रचना श्रुति परंपरा में हुई थी, किंतु वेदों का प्रयोग केवल पाठ तक सीमित नहीं था। यज्ञ, व्रत, अनुष्ठान, संक्रांति, ऋतु परिवर्तन इन सबके लिए काल का सटीक ज्ञान अनिवार्य था। यहीं से वेदांगों की आवश्यकता उत्पन्न हुई। वेदांग छह हैं शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद और ज्योतिष। इनमें ज्योतिष वह वेदांग है जो समय को मापता है, दिशा देता है और यज्ञीय कर्मों को ऋत के साथ जोड़ता है। वेदांग ज्योतिष का उद्देश्य फलादेश नहीं, बल्कि काल-निर्धारण था, और यही इसका सबसे महत्त्वपूर्ण बिंदु है। लगध द्वारा रचित वेदांग ज्योतिष भारतीय खगोल और काल-गणना का प्राचीनतम ग्रंथ माना जाता है। यह ग्रंथ दो शाखाओं में उपलब्ध है ऋग्वेदीय और यजुर्वेदीय। दोनों का मूल उद्देश्य समान है, किंतु सूत्रों की प्रस्तुति और उदाहरणों में कुछ भिन्नता दिखाई देती है। इससे यह संकेत मिलता है कि वेदांग ज्योतिष कोई एक समय में लिखा गया अकेला ग्रंथ नहीं, बल्कि एक जीवंत परंपरा का संहिताबद्ध रूप है। लगध के काल को लेकर विद्वानों में मतभेद रहे हैं, किंतु सामान्यतः उन्हें ईसा-पूर्व 1200 से 800 के बीच रखा जाता है। यह वह समय है जब वैदिक यज्ञ परंपरा अपने पूर्ण वैभव में थी और साथ ही आकाशीय घटनाओं का सूक्ष्म निरीक्षण भी आरंभ हो चुका था। लगध का योगदान इस बात में अद्वितीय है कि उन्होंने आकाश को देवकथा से अलग करके गणना का विषय बनाया, किंतु उसकी पवित्रता को नष्ट किए बिना। वेदांग ज्योतिष का मूल प्रश्न है समय क्या है और उसे कैसे मापा जाए? लगध का उत्तर अत्यंत स्पष्ट है। समय सूर्य और चंद्र की गति से मापा जाएगा। इसी आधार पर उन्होंने तिथि, मास, ऋतु, अयन और वर्ष की गणना प्रस्तुत की। वे कहते हैं कि यज्ञ तभी फलदायी होता है जब वह उचित काल में किया जाए, और उचित काल वही है जो आकाशीय नियमों के अनुरूप हो। लगध की काल-गणना का केंद्र बिंदु चंद्रमा है। तिथि को उन्होंने चंद्रकला के आधार पर परिभाषित किया। एक तिथि चंद्रमा और सूर्य के बीच बारह अंश की कोणीय दूरी है। यह परिभाषा अत्यंत वैज्ञानिक है और बाद की सभी भारतीय पंचांग परंपराओं का आधार बनी। मास को उन्होंने 30 तिथियों का माना, और वर्ष को 12 मासों का। किंतु यहाँ लगध की सूक्ष्म दृष्टि दिखाई देती है। वे जानते थे कि 12 चंद्र मास सौर वर्ष से कम होते हैं। इस अंतर को संतुलित करने के लिए उन्होंने अधिमास की अवधारणा को स्वीकार किया। ऋतु-गणना में लगध ने वर्ष को छह ऋतुओं में विभाजित किया। वसंत, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमंत और शिशिर। यह विभाजन केवल प्राकृतिक नहीं, बल्कि यज्ञीय भी है। प्रत्येक ऋतु के अपने यज्ञ, अपने व्रत और अपने अनुष्ठान हैं। इस प्रकार काल केवल गणित नहीं, संस्कृति बन जाता है। वेदांग ज्योतिष में अयन की अवधारणा भी स्पष्ट रूप से मिलती है। उत्तरायण और दक्षिणायण को उन्होंने सूर्य की गति के आधार पर परिभाषित किया। यह वही अवधारणा है जो आगे चलकर मकर संक्रांति, कर्क संक्रांति और आयनांत पर्वों का आधार बनी। यहाँ यह स्पष्ट होता है कि लगध का उद्देश्य खगोल को जीवन से जोड़ना था, न कि उसे केवल आकाशीय अध्ययन तक सीमित करना। लगध की गणना पद्धति में नक्षत्रों का विशेष स्थान है। उन्होंने 27 नक्षत्रों की व्यवस्था को स्वीकार किया और चंद्रमा की गति को नक्षत्रों के माध्यम से मापा। यह प्रणाली अत्यंत प्राचीन है और वैदिक मंत्रों में भी इसके संकेत मिलते हैं। नक्षत्रों के माध्यम से समय को मापना भारतीय परंपरा की विशिष्टता है, क्योंकि इसमें आकाश को घड़ी बनाया गया है। वेदांग ज्योतिष के सूत्र अत्यंत संक्षिप्त हैं, किंतु उनके अर्थ गहरे हैं। उदाहरण के लिए, वर्ष की लंबाई को उन्होंने 366 दिनों के निकट माना, जो यह दर्शाता है कि उन्हें सौर वर्ष की वास्तविक अवधि का अनुमान था। यह तथ्य भारतीय खगोल ज्ञान की प्राचीनता और परिष्कार को प्रमाणित करता है। यह भी ध्यान देने योग्य है कि लगध का ज्योतिष गणितीय है, भविष्यवाणी परक नहीं। ग्रहों के प्रभाव, जन्मकुंडली या शुभ-अशुभ फल का उल्लेख इसमें नहीं मिलता। इसका केंद्र केवल काल-निर्धारण है। यही कारण है कि वेदांग ज्योतिष को भारतीय खगोल विज्ञान की नींव कहा जाता है। लगध की परंपरा आगे चलकर आर्यभट्ट, वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त जैसे आचार्यों में विकसित होती है। किंतु इन सभी के मूल में जो बीज है, वह वेदांग ज्योतिष में ही निहित है। यदि लगध ने समय को सूत्रों में न बांधा होता, तो संभवतः भारतीय गणित और खगोल की यह परंपरा इतनी संगठित न होती।

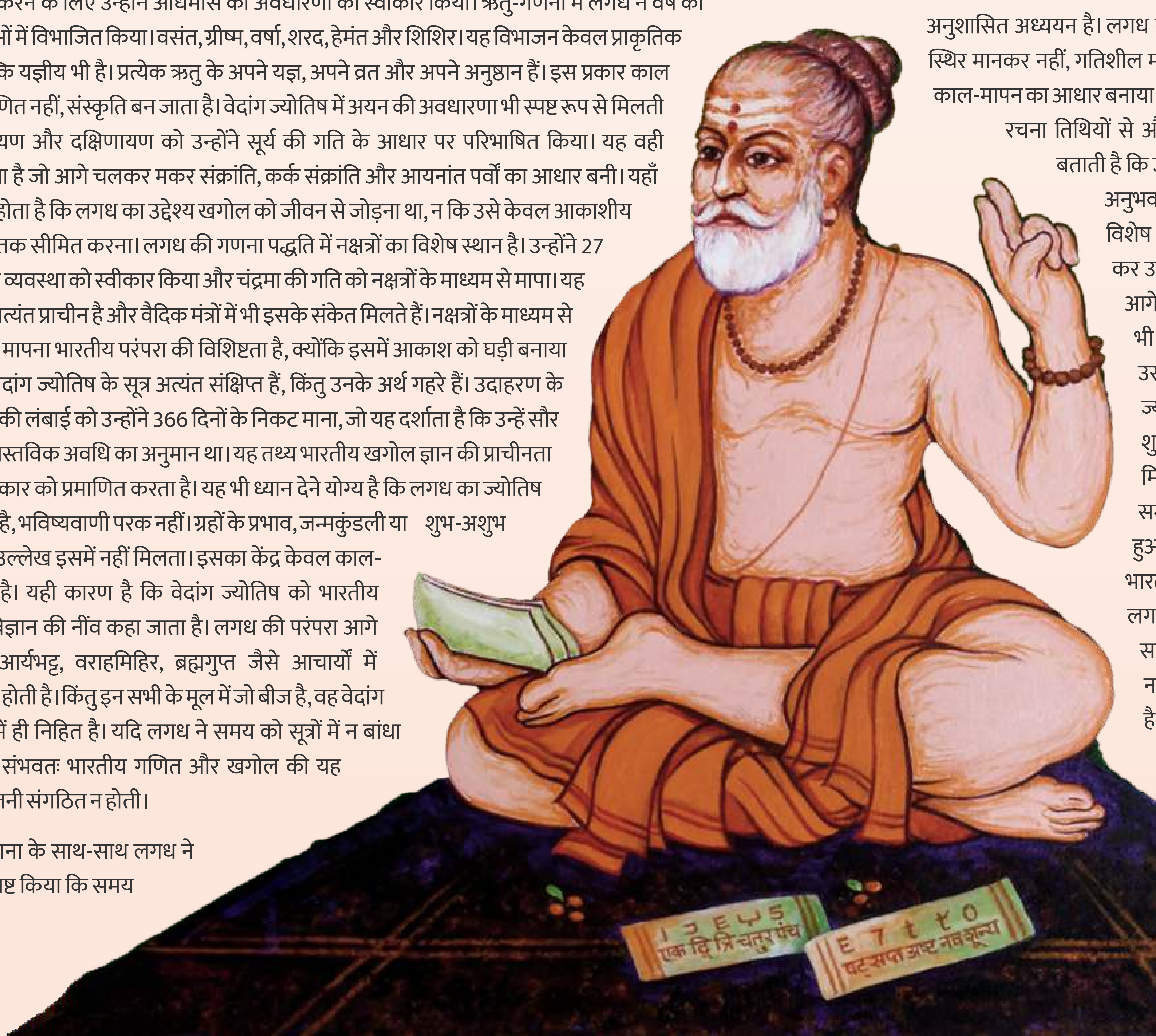

काल-गणना के साथ-साथ लगध ने यह भी स्पष्ट किया कि समय स्थिर नहीं, गतिशील है। सूर्य और चंद्र की गति निरंतर परिवर्तनशील है, और इसी परिवर्तनशीलता को समझना ही ज्योतिष का उद्देश्य है। यह दृष्टि भारतीय दर्शन की उस मूल भावना से मेल खाती है, जिसमें जगत को गतिशील माना गया है।

वेदांग ज्योतिष केवल एक ग्रंथ नहीं, बल्कि एक मानसिक क्रांति है। यह वह क्षण है जब भारतीय मनीषा आकाश की ओर देखकर प्रश्न करती है "आज कौन-सा दिन है?" और उत्तर खोजने के लिए गणना करती है, न कि केवल आस्था पर निर्भर रहती है। यह आस्था और तर्क का अद्भुत संतुलन है। लगध का महत्व इस कारण भी बढ़ जाता है कि उन्होंने समय को सार्वभौमिक बनाया। उनका काल किसी एक जनपद या कबीले तक सीमित नहीं, बल्कि सम्पूर्ण वैदिक समाज के लिए है। यही कारण है कि वेदांग ज्योतिष पूरे भारत में स्वीकार्य हुआ और आज भी पंचांग परंपरा का आधार है।

वेदांग ज्योतिष भारतीय ज्ञान परंपरा में वह आधार स्तंभ है, जहाँ से आकाशीय अनुशासन की यात्रा आरंभ होती है। इसका उद्देश्य केवल समय जानना नहीं, बल्कि समय के साथ जीवन और कर्म को सामंजस्य में रखना था। सूर्य और चंद्रमा की गति को समझकर तिथि, मास, ऋतु और अयन की जो व्यवस्था इसमें विकसित हुई, वही आगे चलकर भारतीय काल-चिंतन की स्थायी धारा बनी। आधुनिक खगोल विज्ञान उसी आकाश को अधिक सूक्ष्म उपकरणों और गणितीय विधियों से देखता है, पर उसका मूल प्रश्न वही है। ग्रहों और नक्षत्रों की गति कैसे कार्य करती है। वेदांग ज्योतिष में नक्षत्रों को संदर्भ मानकर चंद्र गति का अवलोकन किया गया, जबकि आधुनिक खगोल तारों को स्थिर बिंदु मानकर निर्देशांक प्रणाली बनाता है। दोनों ही पद्धतियों में आकाश को मापन का आधार माना गया है।

उत्तरायण और दक्षिणायण की अवधारणा आधुनिक खगोल में अयनांत के रूप में स्पष्ट होती है। संक्रांति की गणना सूर्य की स्थिति परिवर्तन से जुड़ी है, जिसे आज सौर दीर्घांश के माध्यम से समझा जाता है। इससे स्पष्ट होता है कि वेदांग ज्योतिष के सिद्धांत आधुनिक खगोल की भाषा में भी पूर्णतः संगत बैठते हैं।

वेदांग ज्योतिष का महत्व इस कारण भी विशेष है कि उसने समय को मानवीय जीवन से जोड़ा। कृषि, यज्ञ, पर्व और सामाजिक व्यवस्था सभी काल-बोध से जुड़े रहे। आधुनिक खगोल ने उसी काल-बोध को वैश्विक और सार्वभौमिक स्तर पर विस्तारित किया।

इस प्रकार वेदांग ज्योतिष और आधुनिक खगोल दो अलग धाराएँ नहीं, बल्कि एक ही ज्ञान-नदी के दो तट हैं। एक प्राचीन अनुभव से उपजा, दूसरा वैज्ञानिक विस्तार से विकसित।

यदि भारतीय संस्कृति को स्मृति के रूप में देखा जाए, तो लगध वह स्मृति हैं जो समय को याद रखती है। वे हमें सिखाते हैं कि धर्म बिना काल के अंधा है, और काल बिना ज्ञान के दिशाहीन। वेदांग ज्योतिष इस दोनों को जोड़ने वाला सेतु है। लगध का युग वह था जब यज्ञ वैदिक जीवन का केंद्र थे। यज्ञ केवल मंत्रों से सिद्ध नहीं होते थे, उनके लिए उचित समय का चयन अनिवार्य था। दिन, तिथि, मास, ऋतु और अयन इन सबका ज्ञान आवश्यक था। इसी आवश्यकता से वेदांग ज्योतिष का जन्म हुआ और उसी परंपरा को सूत्रबद्ध रूप देने का कार्य लगध ने किया। उनका ज्योतिष देवताओं की कथा नहीं, बल्कि आकाश की गति का अनुशासित अध्ययन है। लगध की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने समय को स्थिर मानकर नहीं, गतिशील मानकर समझा। सूर्य और चंद्रमा की गति को उन्होंने काल-मापन का आधार बनाया। तिथि की परिभाषा चंद्रकला के परिवर्तन से, मास की रचना तिथियों से और वर्ष की अवधारणा ऋतुचक्र से जोड़ी। यह दृष्टि बताती है कि उनके लिए काल कोई अमूर्त तत्व नहीं, बल्कि प्रत्यक्ष अनुभव की जाने वाली सत्ता थी। उनकी गणना में चंद्रमा का विशेष स्थान है। नक्षत्रों के माध्यम से चंद्र गति का निरीक्षण कर उन्होंने समय को सूक्ष्म इकाइयों में बाँटा। यह व्यवस्था आगे चलकर भारतीय पंचांग परंपरा की रीढ़ बनी। आज भी तिथि, नक्षत्र और मास की जो संरचना प्रचलित है, वह उसी वैदिक सूत्रधारा से निकली हुई है। लगध का ज्योतिष भविष्य बताने वाला नहीं था। उसमें ग्रह-दोष, शुभ-अशुभ फल या जन्मकुंडली जैसी अवधारणाएँ नहीं मिलतीं। उनका उद्देश्य केवल यह था कि कर्म सही समय पर हो। इसीलिए उनका ज्योतिष धर्म के साथ जुड़ा हुआ है, पर अंधविश्वास से मुक्त है। यही कारण है कि वे भारतीय खगोल विज्ञान के आदि आचार्य माने जाते हैं। लगध को समझना वास्तव में भारतीय समय-बोध को समझना है। उनके लिए काल केवल बीतने वाली घड़ी नहीं, बल्कि जीवन को अनुशासित करने वाली चेतना है। यज्ञ, कृषि, पर्व और सामाजिक व्यवस्था सब कुछ उसी काल-ज्ञान पर आश्रित है जिसे लगध ने सूत्रों में बाँधा।

संहिता परंपरा में खगोल का प्राचीन स्रोत

नक्षत्राणां गतिं ज्ञात्वा कालस्य च विवेचनम्। संहितारूपमादाय गर्गो लोकहितं जगौ॥

“नक्षत्रों की गति को जानकर और काल का सूक्ष्म विवेचन करके, गर्ग ऋषि ने उस ज्ञान को संहिता के रूप में व्यवस्थित कियाऔर उसे लोकहित के लिए प्रतिपादित किया।”

भारतीय ज्योतिष और खगोल परंपरा में गर्ग ऋषि का नाम एक ग्रंथपरक और परंपरागत आधार के रूप में लिया जाता है। वे उन ऋषियों में गिने जाते हैं जिनके नाम से संहिताएँ प्रचलित रहीं और जिनकी रचनाएँ आगे चलकर सिद्धांतात्मक तथा संहिता-परंपरा के विकास में संदर्भ ग्रंथ बनीं। गर्ग ऋषि का महत्व किसी एक मत या शाखा तक सीमित नहीं है, बल्कि वे उस संक्रमण काल के प्रतिनिधि हैं जहाँ वैदिक काल-चिंतन स्मृति और संहिता रूप में व्यवस्थित हो रहा था।

गर्ग ऋषि से संबद्ध सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रंथ परंपरा गर्ग संहिता के नाम से जानी जाती है। यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि यहाँ गर्ग संहिता का आशय ज्योतिष खगोल विषयक संहिता से है, न कि बाद की वैष्णव परंपरा में प्रचलित पुराणात्मक ग्रंथ से। प्राचीन ज्योतिष साहित्य में “गर्ग” नाम से उद्धृत श्लोक और मत संहिता परंपरा में बार-बार आते हैं, जिससे यह सिद्ध होता है कि गर्ग ऋषि का ग्रंथ प्राचीन काल में प्रामाणिक माना जाता था। गर्ग संहिता का मुख्य क्षेत्र नक्षत्र, ग्रह-गति,है। काल-विभाजन और आकाशीय घटनाओं का वर्गीकरण है। इसमें नक्षत्रों को केवल नामों की सूची के रूप में नहीं, बल्कि काल-निर्धारण की इकाइयों के रूप में देखा गया है। चंद्रमा की गति, नक्षत्र-परिवर्तन और उनके आधार पर मास तथा ऋतु संबंधी निर्णय ये सभी विषय संहिता परंपरा के अंतर्गत आते हैं और गर्ग ऋषि का नाम इन संदर्भों में मिलता है। ग्रहों के विषय में गर्ग ऋषि की परंपरा गणनात्मक विवरण से अधिक वर्गीकरण और क्रमबद्धता पर केंद्रित है। ग्रहों के उदय–अस्त, वक्री गति, युति और ग्रहों के परस्पर संबंधों को आकाशीय घटनाओं के रूप में दर्ज किया गया है। यह ध्यान देने योग्य है कि गर्ग ऋषि की परंपरा उस काल की है जब गणितीय सिद्धांत ग्रंथ पूरी तरह विकसित नहीं हुए थे; इसलिए यहाँ खगोल प्रेक्षण-आधारित वर्गीकरण के रूप में सामने आता है। गर्ग ऋषि का उल्लेख बाद के आचार्यों द्वारा संदर्भ आचार्य के रूप में किया गया है। विशेष रूप से वराहमिहिर की बृहत्संहिता में जिन संहिता-परंपराओं का उपयोग हुआ है, उनमें गर्ग परंपरा की छाया स्पष्ट दिखाई देती है। वराहमिहिर स्वयं अनेक स्थलों पर “गर्गादयः” जैसे प्रयोग करते हैं, जो यह दर्शाता है कि गर्ग ऋषि की संहिता उस समय प्रचलित और मान्य थी।

गर्ग ऋषि से संबद्ध ज्योतिष साहित्य में शकुन विषय भी आता है, किंतु यहाँ शकुन का अर्थ आधुनिक अर्थों में अंधविश्वास नहीं है। यह प्रकृति और आकाशीय घटनाओं के साथ घटने वाले भौतिक परिवर्तनों का संहिता-आधारित वर्गीकरण है। जैसे धूमकेतु, उल्का, ग्रहण, असामान्य आकाशीय दृश्य आदि। इन घटनाओं का उल्लेख बाद के खगोल और संहिता ग्रंथों में भी मिलता है, जिससे यह परंपरा निरंतर सिद्ध होती है।

गर्ग ऋषि की परंपरा का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष यह है कि वह लोकजीवन से असंबद्ध नहीं है। कृषि, यात्रा, युद्ध, अभिषेक और सामाजिक निर्णयों में काल-निर्धारण और आकाशीय स्थिति का उपयोग किया जाता था। यह उपयोग संहिता ग्रंथों के माध्यम से व्यवस्थित हुआ, और गर्ग ऋषि का नाम इस प्रक्रिया के प्रारंभिक ग्रंथकारों में लिया जाता है। यह भी स्पष्ट है कि गर्ग ऋषि की रचनाएँ आज अपने मूल पूर्ण रूप में उपलब्ध नहीं हैं, किंतु उनके श्लोक, मत और संदर्भ अनेक बाद के ग्रंथों में सुरक्षित हैं। यही भारतीय शास्त्रीय परंपरा की विशेषता है। जहाँ ज्ञान व्यक्ति से अधिक परंपरा में जीवित रहता है।

इस प्रकार गर्ग ऋषि को भारतीय खगोलशास्त्र में किसी एक सिद्धांत के प्रवर्तक के रूप में नहीं, बल्कि संहिता-परंपरा के प्रारंभिक ग्रंथकार के रूप में देखना अधिक उचित है। उनका योगदान आकाशीय घटनाओं के क्रमबद्ध ज्ञान, नक्षत्र-आधारित काल-बोध और ग्रह-गति के संहिता रूप में संरक्षण में निहित है।

गर्ग ऋषि भारतीय खगोल परंपरा की उस अवस्था का प्रतिनिधित्व करते हैं जहाँ निरीक्षण, परंपरा और ग्रंथ तीनों एक साथ चलते हैं। यही कारण है कि उनका नाम आज भी भारतीय ज्योतिष और खगोल इतिहास में एक प्रमाणिक संदर्भ के रूप में लिया जाता है। भारतीय ज्योतिष और खगोल परंपरा में गर्ग ऋषि का नाम मूल ग्रंथों की अपेक्षा संदर्भ-ग्रंथों में अधिक स्पष्ट रूप से उभरता है। यह स्थिति भारतीय शास्त्रीय परंपरा की सामान्य विशेषता है, जहाँ अनेक प्राचीन आचार्यों की स्वतंत्र रचनाएँ समय के साथ लुप्त हो गईं, किंतु उनके मत, श्लोक और सिद्धांत बाद के ग्रंथकारों द्वारा उद्धृत होते रहे। गर्ग ऋषि इसी परंपरा के प्रतिनिधि हैं।

गर्ग ऋषि का सबसे स्पष्ट और प्रमाणिक उल्लेख बृहत्संहिता में प्राप्त होता है। इसके रचयिता वराहमिहिर ने संहिता परंपरा के पूर्ववर्ती आचार्यों को अनेक स्थानों पर उद्धृत किया है। “गर्ग”, “गर्गादयः” अथवा “गर्गवचनम्” जैसे प्रयोग यह स्पष्ट करते हैं कि गर्ग ऋषि की संहिता उस समय एक मान्य और प्रचलित स्रोत थी। विशेषतः नक्षत्र, धूमकेतु, ग्रह-युति, उल्का और प्राकृतिक विक्षोभों के संदर्भ में गर्ग मत का उल्लेख मिलता है। वराहमिहिर की ही दूसरी रचना पंचसिद्धान्तिका में भी गर्ग परंपरा की अप्रत्यक्ष उपस्थिति देखी जाती है। यद्यपि यह ग्रंथ मुख्यतः सिद्धांत खगोल से संबंधित है, फिर भी इसमें जिन पूर्ववर्ती मतों की चर्चा है, उनमें संहिता-परंपरा का आधार गर्ग जैसे ऋषियों से जुड़ा माना जाता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि गर्ग ऋषि की परंपरा सिद्धांत और संहिता दोनों धाराओं के लिए पृष्ठभूमि का कार्य करती है। इसके अतिरिक्त, अनेक ज्योतिष संहिता ग्रंथों में गर्ग ऋषि का नाम संदर्भ रूप में मिलता है। मध्यकालीन संहिता साहित्य, जो ग्रहण, धूमकेतु, वर्षा, अकाल और सामाजिक घटनाओं के खगोलिक संकेतों का विवेचन करता है, वहाँ “गर्गमत” को प्रामाणिक माना गया है। यद्यपि इन ग्रंथों के नाम और रचनाकाल भिन्न-भिन्न हैं, किंतु उनमें गर्ग ऋषि को प्राचीन आचार्य के रूप में स्वीकार किया गया है। कुछ पुराणात्मक ग्रंथों में भी गर्ग ऋषि का उल्लेख मिलता है, किंतु वहाँ उनका प्रयोग खगोल सिद्धांतकार के रूप में नहीं, बल्कि परंपरागत ऋषि-सूत्रधार के रूप में हुआ है। इन ग्रंथों में ग्रहों और नक्षत्रों से जुड़े कथात्मक प्रसंगों के साथ गर्ग नाम आता है, जो यह दर्शाता है कि उनका व्यक्तित्व केवल शास्त्रीय नहीं, बल्कि सांस्कृतिक स्मृति का भी हिस्सा बन चुका था। महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि गर्ग ऋषि की स्वतंत्र गर्ग संहिता आज पूर्ण रूप में उपलब्ध नहीं है। इसके स्थान पर उनके श्लोक और मत विभिन्न ग्रंथों में उद्धरण के रूप में सुरक्षित हैं। यही कारण है कि आधुनिक शोध में गर्ग ऋषि को “उद्धृत आचार्य”माना जाता है। भारतीय शास्त्र परंपरा में यह स्थिति असामान्य नहीं है; अनेक प्राचीन ऋषियों का ज्ञान इसी प्रकार आगे की पीढ़ियों तक पहुँचा। गर्ग ऋषि का स्थान भारतीय खगोल और ज्योतिष इतिहास में मूल ग्रंथकार से अधिक संदर्भ-आचार्य का है। उनके उद्धरण यह सिद्ध करते हैं कि वे केवल एक नाम नहीं, बल्कि एक ऐसी परंपरा थे जिसे बाद के आचार्यों ने मान्यता दी, अपनाया और आगे बढ़ाया। भारतीय खगोलशास्त्र की संहिता धारा को समझने के लिए गर्ग ऋषि के इन संदर्भों का अध्ययन अनिवार्य है। वराहमिहिर की बृहत्संहिता भारतीय संहिता-परंपरा का सबसे व्यवस्थित और व्यापक ग्रंथ है। इसका उद्देश्य केवल खगोलिक गणना नहीं, बल्कि आकाशीय घटनाओं और पृथ्वी पर होने वाले प्राकृतिक व सामाजिक परिवर्तनों के बीच संबंध को संहिताबद्ध करना है। इसी कारण वराहमिहिर ने अपने से पूर्ववर्ती आचार्यों विशेषतः गर्ग ऋषि के मतों को अनेक स्थानों पर आधार के रूप में ग्रहण किया है। बृहत्संहिता के नक्षत्र-विषयक अध्यायों में गर्ग मत की छाया स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। यहाँ नक्षत्रों को केवल खगोलीय इकाई नहीं, बल्कि काल और ऋतु से जुड़े संकेतों के रूप में देखा गया है। नक्षत्रों के उदय-अस्त, उनके परिवर्तन और उनसे संबंधित प्राकृतिक परिणाम इन विषयों में गर्ग परंपरा का प्रभाव माना जाता है, क्योंकि यही दृष्टि गर्ग संहिता से जुड़ी मानी जाती है। धूमकेतु विषयक अध्याय बृहत्संहिता का एक महत्त्वपूर्ण खंड है, जहाँ गर्ग मत का प्रत्यक्ष उल्लेख विद्वानों द्वारा स्वीकार किया गया है। धूमकेतुओं के प्रकार, उनके आकाशीय स्वरूप और उनसे संबंधित पृथ्वीगत प्रभावों का वर्गीकरण संहिता-परंपरा की विशेषता है। वराहमिहिर इन अध्यायों में पूर्ववर्ती आचार्यों के मतों को समाहित करते हैं, जिनमें गर्ग ऋषि की गणना होती है। यहाँ गर्ग को एक ऐसे प्राचीन प्राधिकारी के रूप में देखा गया है, जिनके अवलोकन दीर्घकालीन थे। उल्का, ग्रह-युति और असामान्य आकाशीय घटनाओं से जुड़े अध्यायों में भी गर्ग मत की परंपरा अंतर्निहित रूप से विद्यमान है। इन अध्यायों में आकाशीय घटनाओं को अपूर्व या आकस्मिक नहीं, बल्कि वर्गीकृत और क्रमबद्ध घटनाओं के रूप में प्रस्तुत किया गया है। यही पद्धति गर्ग ऋषि से जुड़ी संहिता दृष्टि की पहचान मानी जाती है। बृहत्संहिता के वर्षा और मेघ-विज्ञान संबंधी अध्यायों में भी गर्ग परंपरा का प्रभाव देखा जाता है। बादलों की संरचना, वायु की दिशा, नक्षत्रों की स्थिति और वर्षा के संकेत इन सबका संबंध खगोलिक निरीक्षण से जोड़ा गया है। यह समन्वय उसी लोक-खगोल परंपरा का विकसित रूप है, जिसकी जड़ें गर्ग संहिता में मानी जाती हैं। वराहमिहिर गर्ग मत को अंधानुकरण के रूप में नहीं लेते। वे उसे परीक्षण, समन्वय और संशोधन के साथ प्रस्तुत करते हैं। यही कारण है कि बृहत्संहिता में गर्ग ऋषि को एक संदर्भ-आचार्य के रूप में स्थान मिलता है, न कि केवल नाममात्र के उद्धरण के रूप में। बृहत्संहिता के नक्षत्र, धूमकेतु, उल्का, ग्रह-युति और वर्षा-विज्ञान संबंधी अध्यायों में गर्ग मत की उपस्थिति स्पष्ट रूप से पहचानी जा सकती है। यह उपस्थिति सिद्ध करती है कि गर्ग ऋषि भारतीय खगोल-ज्योतिष की संहिता परंपरा में एक ठोस और मान्य आधार माने जाते थे।

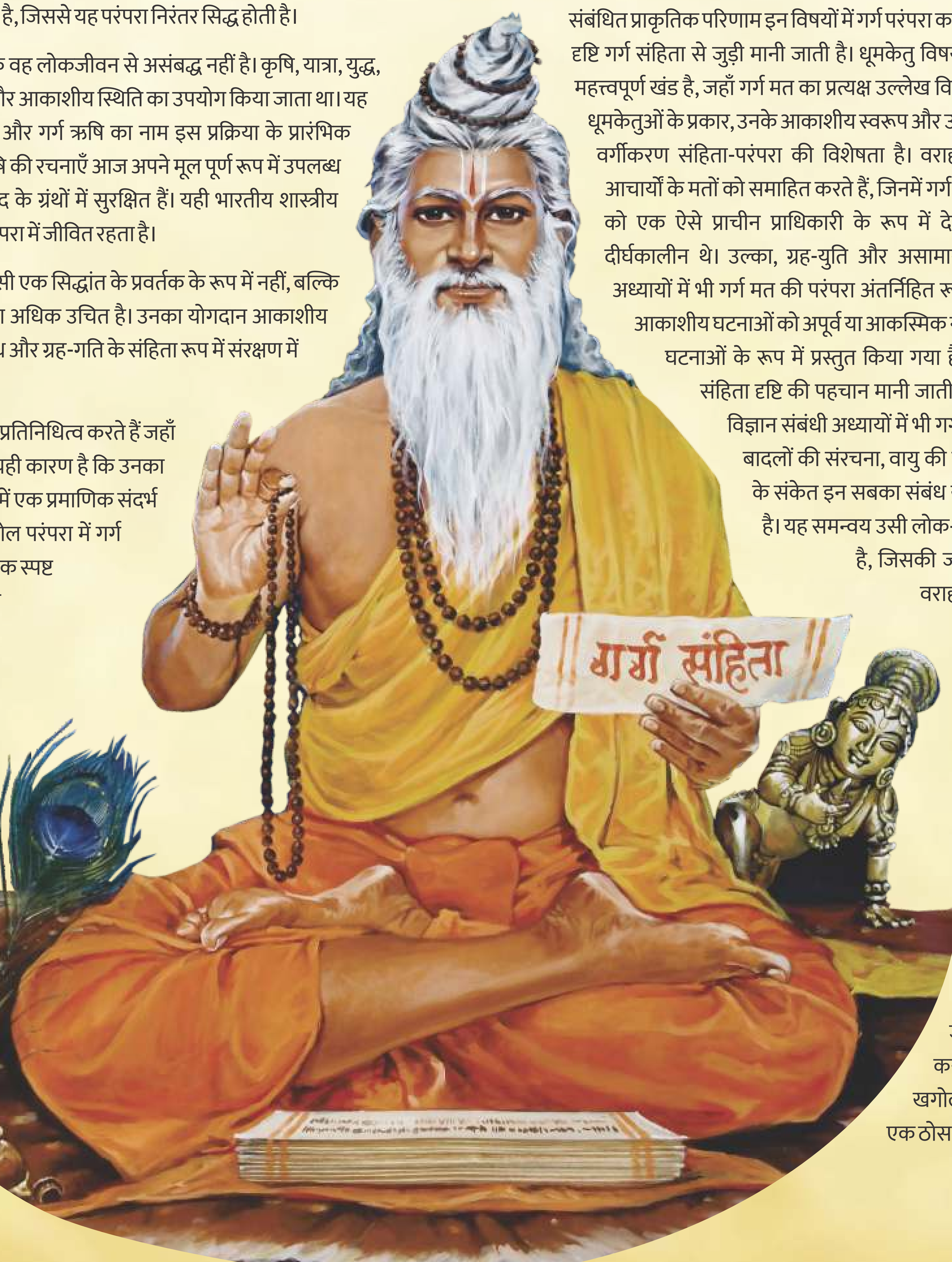

समय, ग्रह और ऋतु-व्यवस्था का मूल चिंतन

सूर्येन्दुगत्याधारितं कालं यो वेत्ति तत्त्वतः। ऋतूनां क्रममालक्ष्य भृगुः शास्त्रं व्यधात् पुरा।।

“जो सूर्य और चंद्रमा की गति के आधार पर समय के तत्त्व को ठीक प्रकार से समझता है, और ऋतुओं के क्रम को पहचानकर उस ज्ञान को शास्त्रात्मक रूप देता है,वे प्राचीन ऋषि भृगु हैं।”

वैदिक परंपरा में भृगु ऋषि का स्थान केवल एक ऋषि या एक वंश-प्रवर्तक के रूप में नहीं, बल्कि एक ऐसी बौद्धिक धारा के प्रतिनिधि के रूप में है, जिसमें समय, प्रकृति और आकाशीय क्रम को एक समग्र व्यवस्था के रूप में देखा गया। भृगु का नाम उन प्रारंभिक ऋषियों में आता है जिन्होंने ब्रह्मांड को खंडों में नहीं बाँटा, बल्कि उसे एक सतत प्रवाह के रूप में समझने का प्रयास किया। इस प्रवाह में सूर्य, चंद्र, ऋतुएँ और ग्रह किसी अलग संसार की वस्तुएँ नहीं हैं, बल्कि पृथ्वी पर जीवन की गति को नियंत्रित करने वाले मूल तत्व हैं।

ऋग्वैदिक परंपरा में भृगु ऋषि का उल्लेख अग्नि-तत्त्व से विशेष रूप से जुड़ा हुआ मिलता है। अग्नि यहाँ केवल यज्ञाग्नि नहीं, बल्कि परिवर्तन और गति का प्रतीक है। यह गति ही समय का मूल स्वरूप है। इसी कारण भृगु परंपरा में समय को किसी अमूर्त धारणा की तरह नहीं, बल्कि प्रत्यक्ष अनुभव की जाने वाली सत्ता के रूप में देखा गया। दिन और रात का क्रम, ऋतु परिवर्तन, सूर्य का उत्तर और दक्षिण गमन ,ये सभी समय की वही अभिव्यक्तियाँ हैं, जिन्हें भृगु परंपरा में समझने और व्यवस्थित करने का प्रयास किया गया।

भृगु ऋषि से जुड़ी वैदिक दृष्टि में सूर्य का स्थान केंद्रीय है। सूर्य केवल प्रकाश का स्रोत नहीं, बल्कि दिन, ऋतु और वर्ष की व्यवस्था का आधार है। सूर्य की गति के अनुसार ही कृषि, यज्ञ और सामाजिक जीवन का क्रम निर्धारित होता है। उत्तरायण और दक्षिणायण जैसी अवधारणाएँ इसी सौर गति से उत्पन्न हुईं। भृगु परंपरा में यह स्पष्ट है कि यदि सूर्य की स्थिति को समझ लिया जाए, तो समय की व्यापक संरचना स्वतः स्पष्ट हो जाती है। चंद्रमा भृगु परंपरा में समय की सूक्ष्म इकाइयों से जुड़ा हुआ है। तिथि, पक्ष और मास की अवधारणा चंद्रमा की कलाओं के निरीक्षण से विकसित हुई। यह निरीक्षण केवल धार्मिक आवश्यकता से प्रेरित नहीं था, बल्कि जीवन की व्यावहारिक आवश्यकताओं से भी जुड़ा था। व्रत, अनुष्ठान, यात्रा और सामाजिक आयोजन इन सबके लिए तिथि का ज्ञान आवश्यक था। भृगु परंपरा में चंद्रगति का यह ज्ञान एक व्यवस्थित परंपरा के रूप में विकसित होता दिखाई देता है।ग्रहों के विषय में भृगु परंपरा अत्यंत संतुलित दृष्टि प्रस्तुत करती है। ग्रहों को यहाँ केवल देवतात्मक सत्ता के रूप में नहीं देखा गया, बल्कि आकाशीय पिंडों के रूप में उनकी नियमित गति को स्वीकार किया गया। ग्रहों का उदय और अस्त, उनकी परस्पर स्थितियाँ और ऋतु परिवर्तन के साथ उनका संबंध इन सभी को दीर्घकालीन निरीक्षण के आधार पर समझने का प्रयास किया गया। यह ग्रह-चिंतन भविष्यवाणी की अपेक्षा प्रकृति के क्रम को समझने से अधिक संबंधित है। ऋतुचक्र भृगु परंपरा का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण पक्ष है। भारत जैसे कृषि-प्रधान भूभाग में ऋतुएँ केवल मौसम नहीं, बल्कि जीवन का आधार हैं। भृगु परंपरा में छह ऋतुओं की अवधारणा स्पष्ट रूप से दिखाई देती है, जहाँ प्रत्येक ऋतु का अपना स्वभाव, अपना समय और अपना प्रभाव है। वर्षा की अनिश्चितता, ग्रीष्म की तीव्रता या शीत की अवधि इन सबको समझने के लिए आकाशीय स्थितियों का निरीक्षण आवश्यक माना गया। यह दृष्टि आगे चलकर संहिता और स्मृति साहित्य में विकसित होती है। भृगु ऋषि का नाम स्मृति परंपरा में भी विशेष रूप से सामने आता है। भृगु स्मृति में समय, युग और सामाजिक व्यवस्था के बीच संबंध को रेखांकित किया गया है। यहाँ समय केवल प्राकृतिक क्रम नहीं, बल्कि सामाजिक अनुशासन का आधार भी है। कर्म, कर्तव्य और आचार इन सबका निर्धारण समय के संदर्भ में किया गया है। यह वैदिक दृष्टि की वह विशेषता है जहाँ समय और धर्म एक-दूसरे से अलग नहीं हैं।

भृगु परंपरा की एक विशेषता यह है कि वह किसी एक ग्रंथ तक सीमित नहीं है। यह एक वंशगत और परंपरागत ज्ञान-धारा है, जो पीढ़ियों तक मौखिक और ग्रंथीय रूप में प्रवाहित होती रही। इसी कारण भृगु का नाम विभिन्न संदर्भों में, विभिन्न ग्रंथों में मिलता है। यह स्थिति यह संकेत देती है कि भृगु ऋषि किसी एक कालखंड के विद्वान नहीं, बल्कि एक दीर्घकालीन परंपरा के प्रतीक हैं। इस परंपरा में आकाश और पृथ्वी के बीच गहरा संबंध स्वीकार किया गया है। आकाशीय घटनाएँ पृथ्वी पर होने वाले परिवर्तनों से जुड़ी हैं। यह विचार प्रतीकात्मक होते हुए भी निरीक्षण-आधारित है। ऋतु परिवर्तन, फसल चक्र और प्राकृतिक घटनाओं को आकाशीय क्रम के साथ जोड़कर देखने की यह दृष्टि भारतीय ज्ञान परंपरा की मौलिक विशेषता है।

भृगु परंपरा का प्रभाव उत्तरवर्ती भारतीय ज्योतिष और खगोल चिंतन में अप्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है। समय-विभाजन, ऋतु-निर्धारण और ग्रहों के साथ प्राकृतिक परिवर्तनों का संबंध ये सभी अवधारणाएँ आगे चलकर अधिक व्यवस्थित और गणनात्मक रूप लेती हैं। किंतु उनका बीज इसी वैदिक चिंतन में निहित है, जिसका प्रतिनिधित्व भृगु ऋषि करते हैं।

आधुनिक संदर्भ में यदि भृगु परंपरा को देखा जाए, तो यह प्रारंभिक प्राकृतिक विज्ञान की तरह प्रतीत होती है। यहाँ गणितीय सूत्रों की अपेक्षा निरीक्षण, वर्गीकरण और अनुभव का अधिक महत्व है। यही कारण है कि भृगु परंपरा को केवल धार्मिक या दार्शनिक दृष्टि से नहीं, बल्कि ज्ञान के इतिहास की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण माना जाना चाहिए। भृगु ऋषि का योगदान इस बात में निहित है कि उन्होंने समय को देखा, समझा और जीवन से जोड़ा। उनके चिंतन में आकाश दूर नहीं, बल्कि जीवन का सहचर है। सूर्य और चंद्र केवल प्रकाश-पिंड नहीं, बल्कि समय की धड़कन हैं। ऋतुएँ केवल मौसम नहीं, बल्कि जीवन की गति हैं। यही समग्र दृष्टि भृगु परंपरा की मूल पहचान है। भृगु ऋषि से जुड़ी परंपरा में काल-गणना किसी पृथक शास्त्र के रूप में नहीं, बल्कि जीवन की लय के रूप में उपस्थित दिखाई देती है। यहाँ समय को मापने की जिज्ञासा अमूर्त नहीं है; वह यज्ञ, कृषि, ऋतु-परिवर्तन और सामाजिक अनुशासन से जुड़ी हुई है। इसी कारण भृगु परंपरा में काल का विचार खगोलिक निरीक्षण, प्राकृतिक अनुभव और मानवीय कर्म तीनों के संयुक्त रूप में विकसित होता है। वैदिक समाज में समय की पहचान सूर्य और चंद्र की गति से होती थी। भृगु परंपरा में यह स्वीकार स्पष्ट रूप से मिलता है कि दिन-रात का क्रम पृथ्वी पर जीवन की सबसे मूल इकाई है। सूर्य के उदय-अस्त से दिन का निर्धारण और रात्रि के विस्तार-संकोचन से ऋतु परिवर्तन की अनुभूति ये दोनों काल-गणना के प्रारंभिक आधार बने। भृगु चिंतन में सूर्य को केवल प्रकाश देने वाला पिंड नहीं, बल्कि समय के प्रवाह को नियमित करने वाली सत्ता के रूप में देखा गया। चंद्रमा भृगु परंपरा में समय की सूक्ष्म गणना से जुड़ा है। चंद्रकला के बढ़ने-घटने से तिथि का ज्ञान, पक्षों का निर्धारण और मास की रचना ये सभी काल-गणना की व्यावहारिक इकाइयाँ हैं। यह व्यवस्था किसी सैद्धांतिक गणित से नहीं, बल्कि निरंतर निरीक्षण से विकसित हुई। भृगु परंपरा में चंद्रगति का महत्व इसलिए भी है क्योंकि यह मानव जीवन के दैनिक और सामाजिक कार्यों से सीधे जुड़ी हुई थी। भृगु परंपरा में संवत्सर की अवधारणा भी केवल गणनात्मक नहीं है। वर्ष को ऋतु-चक्र के रूप में देखा गया, जिसमें प्रत्येक ऋतु का अपना समय, अपना प्रभाव और अपना कार्यक्षेत्र है। कृषि की तैयारी, फसल का पकना, वर्षा की प्रतीक्षा और शीत का सामना इन सबके पीछे समय की वही संरचना है, जिसे भृगु परंपरा ने समझने का प्रयास किया। यहाँ वर्ष केवल दिनों का जोड़ नहीं, बल्कि प्रकृति की पूर्ण यात्रा है।

काल-गणना के संदर्भ में भृगु परंपरा की एक विशेषता यह है कि वह स्थिर समय की अवधारणा को स्वीकार नहीं करती। समय निरंतर गतिमान है और उसकी गति को समझने के लिए आकाशीय परिवर्तनों का निरीक्षण आवश्यक है। सूर्य का उत्तर और दक्षिण की ओर झुकाव, दिन की लंबाई में परिवर्तन और ऋतु की क्रमिक गति ये सभी समय की गतिशीलता को प्रकट करते हैं। भृगु चिंतन में काल को इसी गतिशील रूप में देखा गया है। ग्रहों की भूमिका भृगु परंपरा में समय-संकेतक के रूप में सामने आती है। ग्रहों की नियमित गति, उनके उदय-अस्त और आपसी स्थिति को समय और ऋतु के परिवर्तनों से जोड़ा गया। यहाँ ग्रह किसी अलौकिक हस्तक्षेप के प्रतीक नहीं, बल्कि आकाशीय क्रम के द्योतक हैं। ग्रह-गति का अध्ययन इसलिए किया गया ताकि प्राकृतिक परिवर्तनों को पहले से समझा जा सके और मानव कर्म को उनके अनुकूल रखा जा सके। भृगु परंपरा में काल-गणना का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि समय को सामाजिक व्यवस्था से जोड़ा गया। व्रत, उत्सव, यज्ञ और अनुष्ठान इन सबका निर्धारण समय के अनुसार किया जाता था। यह व्यवस्था केवल धार्मिक नहीं थी; यह समाज को एक साझा लय में बाँधने का माध्यम भी थी। समय की एकरूप समझ के बिना सामूहिक जीवन संभव नहीं था, और भृगु परंपरा इस आवश्यकता को भली-भाँति समझती थी। युग और दीर्घकालिक समय-चक्र की अवधारणाएँ भी भृगु परंपरा से जुड़ी मानी जाती हैं। यहाँ समय को केवल वर्तमान क्षण में सीमित नहीं रखा गया, बल्कि दीर्घकालिक प्रवाह के रूप में देखा गया। सृष्टि, स्थायित्व और परिवर्तन इन तीनों को समय के बड़े चक्रों से जोड़ा गया। यह दृष्टि यह संकेत देती है कि भृगु चिंतन में समय केवल मापन का विषय नहीं, बल्कि दार्शनिक समझ का आधार भी है।

भृगु परंपरा की काल-गणना पूर्णतः अनुभव-आधारित है। इसमें उपकरणों या जटिल गणितीय सूत्रों की अपेक्षा प्रकृति के संकेतों पर अधिक भरोसा किया गया। आकाश का निरंतर निरीक्षण, ऋतु के लक्षणों की पहचान और वर्षों के अनुभव को संचित करना यही इसकी पद्धति रही। इसी कारण यह परंपरा लंबे समय तक जीवित रही और आगे की संहिता तथा स्मृति परंपराओं में समाहित होती चली गई। आधुनिक दृष्टि से देखने पर भृगु परंपरा प्रारंभिक समय-विज्ञान की तरह प्रतीत होती है। इसमें खगोलीय यांत्रिकी का औपचारिक ज्ञान भले ही न हो, पर समय की संरचना को समझने का स्पष्ट प्रयास दिखाई देता है। सूर्य, चंद्र और ऋतु इन तीनों के माध्यम से समय को समझने की जो पद्धति यहाँ विकसित हुई, वही आगे चलकर अधिक गणनात्मक रूप लेती है। भृगु ऋषि से जुड़ी काल-गणना की परंपरा भारतीय ज्ञान-इतिहास में एक मौलिक स्थान रखती है। यह परंपरा हमें यह दिखाती है कि समय को समझना केवल घड़ी या संख्या का विषय नहीं, बल्कि प्रकृति और जीवन के साथ सामंजस्य स्थापित करने की प्रक्रिया है। भृगु चिंतन में काल न तो भय का कारण है, न ही केवल गणना की वस्तु; वह जीवन की गति है, जिसे समझकर मनुष्य अपने कर्म को संतुलित करता है। यही संतुलन भृगु परंपरा की सबसे बड़ी देन है। भृगु ऋषि को समझना वैदिक परंपरा के उस चरण को समझना है, जहाँ ज्ञान अनुभव से जन्म लेता है और जीवन में उतरता है। वे उस मौन परंपरा के प्रतीक हैं, जिसने बिना शोर किए समय, ग्रह और ऋतु के क्रम को समझने की आधारशिला रखी। भारतीय ज्ञान परंपरा में भृगु ऋषि का स्थान इसी कारण स्थायी और केंद्रीय है।

मनु और समय की संरचना

युगानां परिवर्तनं ज्ञात्वा धर्मं स्थापयति स्मृतिः। कालेन सह यः पश्येत् स पन्थाः शाश्वतो मतः।। (मनुस्मृति)
जो युगों के परिवर्तन को समझकर धर्म की व्यवस्था करता है, और समय के साथ वस्तुओं को देखता है, वही दृष्टि शाश्वत मानी जाती है।

मनु को सामान्यतः सामाजिक नियमों के प्रवर्तक के रूप में देखा जाता है, किंतु मनु का चिंतन इससे कहीं अधिक व्यापक है। मनु के नाम से प्रचलित मनुस्मृति में समय को केवल पृष्ठभूमि के रूप में नहीं, बल्कि समाज, धर्म और सृष्टि के संचालन करने वाले मूल तत्त्व के रूप में स्वीकार किया गया है। यहाँ समय कोई निष्क्रिय धारा नहीं, बल्कि वह शक्ति है जिसके साथ व्यवस्था जन्म लेती है, बदलती है और समाप्त भी होती है।

मनुस्मृति में समय का विचार रेखीय नहीं, बल्कि क्रमबद्ध और चक्रीय है। सृष्टि का आरंभ, उसका विस्तार और अंत इन तीनों को काल से जोड़ा गया है। यह दृष्टि मनुष्य को यह बोध कराती है कि कोई भी सामाजिक या नैतिक व्यवस्था स्थायी नहीं है। जो आज उपयुक्त है, वह किसी अन्य युग में अनुपयुक्त हो सकता है। इसी कारण मनु के यहाँ नियमों को शाश्वत सत्य के रूप में नहीं, बल्कि समय-सापेक्ष व्यवस्था के रूप में देखा गया है। युग कल्पना मनुस्मृति की समय-दृष्टि का एक महत्त्वपूर्ण आधार है। कृत, त्रेता, द्वापर और कलि ये युग केवल कालखंड नहीं, बल्कि समाज की आंतरिक स्थिति के सूचक हैं। प्रत्येक युग में मानव आचरण, नैतिकता और सामाजिक संतुलन का स्तर भिन्न होता है। मनु इस भिन्नता को स्वीकार करते हैं और उसी के अनुसार धर्म की व्याख्या करते हैं। यहाँ धर्म का अर्थ किसी कठोर संहिता से नहीं, बल्कि उस व्यवस्था से है जो किसी विशेष समय में समाज को स्थिर रख सके। संवत्सर की अवधारणा मनुस्मृति में समय को व्यवहारिक धरातल पर उतारती है। वर्ष को केवल बारह महीनों का गणितीय योग नहीं माना गया, बल्कि ऋतु-चक्र के साथ जोड़कर देखा गया है। कृषि, अनुष्ठान, दान और सामाजिक कर्तव्य इन सबका निर्धारण संवत्सर के क्रम से होता है। इससे स्पष्ट होता है कि मनु के चिंतन में समय सीधे जीवन-प्रक्रियाओं से जुड़ा हुआ है। मनुस्मृति में ऋतुओं की भूमिका भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। ऋतु यहाँ केवल मौसम नहीं, बल्कि मानव व्यवहार को प्रभावित करने वाली स्थिति है। ग्रीष्म में संयम, वर्षा में धैर्य, शरद में स्पष्टता और शीत में सहनशीलता ये सभी गुण समय और ऋतु से जुड़े हुए हैं। मनु के अनुसार यदि विधि ऋतु के अनुकूल न हो, तो वह समाज पर बोझ बन जाती है। इसीलिए समय और परिस्थिति को समझना विधि-निर्माण का अनिवार्य अंग है। मनु की समय-दृष्टि में दीर्घकालिक चक्रों का भी उल्लेख मिलता है। यहाँ मानव जीवन को छोटे समयखंडों में सीमित नहीं किया गया, बल्कि उसे सृष्टि के व्यापक क्रम में रखा गया है। सृष्टि बार-बार प्रकट होती है और बार-बार लीन होती है यह विचार समय को अनंत बनाता है। इस अनंतता के भीतर मानव समाज को अपने सीमित नियमों के साथ जीना होता है। मनुस्मृति इसी संतुलन की खोज है। मनु यह भी स्पष्ट करते हैं कि समय सभी के लिए समान नहीं होता। विभिन्न अवस्थाओं, वर्गों और परिस्थितियों में समय का प्रभाव भिन्न-भिन्न होता है। बाल्य, युवा और वृद्ध अवस्था इन तीनों में कर्तव्य बदलते हैं। इसी प्रकार शांति और संकट के काल में नियमों की व्याख्या भी बदलनी चाहिए। यह लचीलापन मनु की समय-दृष्टि को कठोर होने से बचाता है। मनुस्मृति में दंड और न्याय की अवधारणा भी समय से जुड़ी हुई है। दंड का उद्देश्य प्रतिशोध नहीं, बल्कि व्यवस्था को बनाए रखना है। और व्यवस्था तभी टिक सकती है, जब दंड समय, परिस्थिति और व्यक्ति की स्थिति को समझकर दिया जाए। यह दृष्टि यह बताती है कि मनु का चिंतन यांत्रिक नहीं, बल्कि विवेकशील है।

ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि मनु समय को भय के रूप में प्रस्तुत नहीं करते। उनके यहाँ समय न तो शत्रु है और न ही केवल विनाशक शक्ति। वह परिवर्तन का माध्यम है। जो समाज समय के परिवर्तन को समझ लेता है, वही स्वयं को बचा पाता है। जो समय को स्थिर करना चाहता है, वह अंततः टूट जाता है। मनुस्मृति इसी चेतावनी को दार्शनिक रूप में व्यक्त करती है। आधुनिक संदर्भ में मनु की समय-कल्पना हमें यह सिखाती है कि किसी भी सामाजिक व्यवस्था को बिना समय-संवेदनशीलता के लागू नहीं किया जा सकता। नियमों की प्रासंगिकता तभी बनी रहती है, जब वे युग, परिस्थिति और मानवीय आवश्यकता के साथ संवाद करें। इस दृष्टि से मनुस्मृति केवल अतीत का ग्रंथ नहीं, बल्कि समय को समझने का एक वैचारिक ढाँचा है। इस प्रकार मनु का चिंतन समय को मापने का प्रयास नहीं करता, बल्कि समय के साथ जीने की विधि प्रस्तुत करता है। युग, संवत्सर और सृष्टि-चक्र ये सभी अवधारणाएँ मनुष्य को यह बोध कराती हैं कि वह किसी स्थिर संसार में नहीं, बल्कि निरंतर प्रवाहमान व्यवस्था में जी रहा है। मनु की यही समझ भारतीय परंपरा में उन्हें एक स्थायी वैचारिक संदर्भ बनाती है।

मनु की समय-व्यवस्था का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि वह मानव सीमाओं की स्वीकृति से प्रारंभ होती है। मनु यह मानकर चलते हैं कि मनुष्य समय को नियंत्रित नहीं कर सकता, वह केवल उसके साथ सामंजस्य स्थापित कर सकता है। इसी कारण मनुस्मृति में समय को विजय करने का नहीं, बल्कि समझने का विषय बनाया गया है। यह दृष्टि मनुष्य को अहंकार से मुक्त करती है और उसे व्यापक सृष्टि-क्रम का अंग बनाती है। मनु के यहाँ समय और कर्म का संबंध अत्यंत गहरा है। कर्म का फल समय के माध्यम से ही प्रकट होता है। कोई भी कार्य तात्कालिक परिणाम तक सीमित नहीं रहता, बल्कि उसका प्रभाव दीर्घकाल में सामने आता है। इसी कारण मनुस्मृति में कर्म के मूल्यांकन में क्षणिक लाभ या हानि को निर्णायक नहीं माना गया। समय के साथ कर्म का मूल्य परिवर्तित होता है। यह विचार मनु की नैतिक दृष्टि को संतुलित बनाता है। समय के साथ दायित्वों के परिवर्तन की अवधारणा भी मनु के चिंतन में स्पष्ट है। जीवन के विभिन्न चरणों में मनुष्य के कर्तव्य अलग-अलग होते हैं। बाल्यावस्था में संरक्षण, युवावस्था में उत्तरदायित्व, और वृद्धावस्था में वैराग्य यह क्रम समय के प्रवाह से ही निर्धारित होता है। मनुस्मृति इस परिवर्तन को स्वीकार करती है और उसी के अनुरूप सामाजिक अपेक्षाओं को परिभाषित करती है। मनु का यह दृष्टिकोण यह भी दर्शाता है कि समय उनके लिए केवल बाहरी मापन नहीं, बल्कि आंतरिक परिपक्वता का सूचक है। आयु बढ़ने के साथ दृष्टि का विस्तार होना चाहिए। यह अपेक्षा मनु के चिंतन में अंतर्निहित है। यदि समय बीतता रहे और विवेक न बढ़े, तो वह समय व्यर्थ माना गया है। इस प्रकार समय को गुणात्मक कसौटी भी बनाया गया है। मनुस्मृति में समय का उपयोग सामाजिक संतुलन बनाए रखने के साधन के रूप में भी होता है। संकट, अकाल या असामान्य परिस्थितियों में सामान्य नियमों में शिथिलता की अनुमति दी गई है। यह लचीलापन यह स्पष्ट करता है कि मनु की विधि किसी कठोर ढाँचे में बँधी नहीं है। समय और परिस्थिति के अनुसार नियमों की व्याख्या बदल सकती है। यह विचार मनुस्मृति को जीवंत बनाता है। मनु के चिंतन में समय का एक और आयाम है। स्मृति और परंपरा। स्मृति केवल अतीत को संजोने का माध्यम नहीं, बल्कि वर्तमान को दिशा देने वाला तत्त्व है। मनुस्मृति स्वयं इसी विचार का उदाहरण है, जहाँ पूर्वकाल के अनुभवों को संकलित करके उन्हें आगे की पीढ़ियों के लिए मार्गदर्शक बनाया गया। समय यहाँ विस्मृति नहीं, बल्कि निरंतरता का साधन है।

यही निरंतरता सृष्टि-चक्र की अवधारणा में भी दिखाई देती है। सृष्टि का लय होना अंत नहीं है, बल्कि अगली सृष्टि की भूमिका है। इस दृष्टि से विनाश भी समय का एक चरण मात्र है, कोई अंतिम बिंदु नहीं। मनु की यह दृष्टि मनुष्य को भय से मुक्त करती है और परिवर्तन को स्वाभाविक स्वीकार्यता देती है। मनु का समय-बोध यह भी सिखाता है कि हर युग की अपनी सीमाएँ होती हैं। किसी युग की अपेक्षाओं को दूसरे युग पर आरोपित करना अनुचित है। यही कारण है कि मनुस्मृति में आदर्शों के साथ-साथ यथार्थ की भी स्वीकृति है। आदर्श समय से ऊपर नहीं रखे गए, बल्कि समय के भीतर अर्थपूर्ण बनाए गए हैं। समय की इस व्यापक समझ के कारण मनु का चिंतन केवल विधि-ग्रंथ नहीं रह जाता, बल्कि एकसभ्यता-दृष्टि बन जाता है। समाज कैसे जन्म लेता है, कैसे टिकता है और कैसे बदलता है। इन तीनों प्रश्नों का उत्तर समय के माध्यम से दिया गया है। मनु के यहाँ समाज स्थिर संरचना नहीं, बल्कि काल के साथ विकसित होने वाली व्यवस्था है। इसलिए मनुस्मृति को केवल नियमों की सूची के रूप में पढ़ना उसके मूल आशय को खो देना होगा। वह समय के साथ संवाद करने वाली स्मृति है। उसमें युग, संवत्सर और सृष्टि-चक्र केवल सैद्धांतिक अवधारणाएँ नहीं, बल्कि मानव जीवन को समझने के उपकरण हैं।

अंततः मनु की समय-दृष्टि यह स्पष्ट करती है कि व्यवस्था तभी टिकती है, जब वह समय के प्रवाह को पहचानती है। जो व्यवस्था समय को नकारती है, वह स्वयं को नष्ट करती है। मनुस्मृति इसी चेतना को संरचित रूप देती है। जहाँ समय न तो शत्रु है, न निरपेक्ष सत्ता, बल्कि वह माध्यम है जिसके द्वारा जीवन अर्थ पाता है। यही कारण है कि मनु भारतीय परंपरा में केवल अतीत के प्रतिनिधि नहीं हैं। वे उस दृष्टि के वाहक हैं जो समय को समझकर समाज को दिशा देना चाहती है। यह दृष्टि आज भी उतनी ही प्रासंगिक है, जितनी अपने युग में थी क्योंकि समय बदलता है, पर समय को समझने की आवश्यकता नहीं बदलती।

काल, गति और गणना आर्यभट्ट की वैज्ञानिक दृष्टि

अनुलोमगतिनौस्थः पश्यत्यचलं विलोमगं यद्वत्। अचलानि भानि तद्वत् समपश्चिमगानि लङ्कायाम्॥

"जिस प्रकार नाव में बैठा हुआ व्यक्ति जब आगे की ओर गति करता है, तो उसे किनारे स्थित स्थिर वस्तुएँ उलटी दिशा में चलती हुई प्रतीत होती हैं, उसी प्रकार पृथ्वी पर स्थित प्रेक्षक को आकाशीय पिंड पूर्व से पश्चिम की ओर चलते हुए दिखाई देते हैं। वास्तव में वे नहीं, बल्कि पृथ्वी स्वयं घूम रही होती है।"

ऋग्वैदिक ऋषि जहाँ काल को ऋतुचक्र और यज्ञ-क्षणों के माध्यम से अनुभव करते हैं, वहीं उपनिषदों में वही काल ब्रह्म के साथ एक तादात्म्य में प्रवेश करता है। इसी दीर्घ बौद्धिक परंपरा की एक निर्णायक कड़ी के रूप में आर्यभट्ट का प्रादुर्भाव होता है, जहाँ काल पहली बार पूर्णतः गणितीय और खगोलीय अनुशासन में बंधता हुआ दिखाई देता है, किंतु अपने दार्शनिक आधार से कटता नहीं है। आर्यभट्ट का समय वह था जब भारतीय ज्योतिष और काल-गणना परंपरा एक संक्रमण-काल से गुजर रही थी। वेदांग ज्योतिष, ब्राह्मण ग्रंथों और पुराणों में समय की इकाइयाँ, संवत्सर, मास, तिथि, नक्षत्र, युग आदि पहले से विद्यमान थे, परंतु इन सबके बीच एक स्पष्ट गणितीय सामंजस्य का अभाव था। चंद्र-वर्ष और सौर-वर्ष के अंतर से उत्पन्न असंगतियाँ, पर्व-निर्धारण में भिन्नताएँ और ग्रहों की गति को लेकर अनुमानात्मक दृष्टि ये सब काल-बोध को व्यावहारिक स्तर पर जटिल बना रहे थे। आर्यभट्ट का योगदान इसी बिंदु पर ऐतिहासिक बन जाता है, क्योंकि वे काल को न तो केवल परंपरा के रूप में स्वीकार करते हैं और न ही उसे शुद्ध दार्शनिक कल्पना के रूप में छोड़ देते हैं, बल्कि उसे गणना, प्रेक्षण और तर्क के अधीन लाते हैं। आर्यभट्ट के लिए काल मूलतः गति से उत्पन्न है। यह विचार अत्यंत क्रांतिकारी है, क्योंकि इससे समय किसी दैवी सत्ता की अपेक्षा प्राकृतिक नियमों का परिणाम बन जाता है। जब वे यह कहते हैं कि दिन और रात पृथ्वी के घूमने से होते हैं, तब वे केवल खगोलशास्त्र की एक नई व्याख्या नहीं देते, बल्कि समय के प्रवाह की अवधारणा को ही पुनर्परिभाषित कर देते हैं। यहाँ काल स्थिर नहीं है, आकाश नहीं घूम रहा, बल्कि पृथ्वी स्वयं गति में है और उसी गति के कारण समय का अनुभव संभव होता है। इस दृष्टि से आर्यभट्ट का काल-बोध अत्यंत सूक्ष्म और आधुनिक प्रतीत होता है। अहोरात्र की गणना में भी आर्यभट्ट की यही वैज्ञानिक दृष्टि दिखाई देती है। दिन और रात उनके लिए केवल प्रकाश और अंधकार के खंड नहीं हैं, बल्कि पृथ्वी के एक पूर्ण घूर्णन के दो पक्ष हैं। इसी आधार पर वे समय को छोटे-छोटे गणनीय भागों में विभाजित करते हैं, ताकि खगोलीय घटनाओं की सटीक गणना संभव हो सके। यह विभाजन केवल धार्मिक अनुष्ठानों के लिए नहीं है, बल्कि ग्रहों की स्थिति, लग्न, तिथि और नक्षत्र के निर्धारण के लिए आवश्यक है। यहाँ काल एक उपयोगी, कार्यशील और मापनीय सत्ता बन जाता है। सौर वर्ष की गणना में आर्यभट्ट का योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उन्होंने वर्ष की अवधि को जिस सटीकता से निर्धारित किया, वह यह दर्शाता है कि उनकी गणना केवल परंपरागत नहीं थी, बल्कि निरंतर प्रेक्षण पर आधारित थी। सौर वर्ष और चंद्र मास के बीच के अंतर को स्पष्ट रूप से समझकर उन्होंने यह संकेत दिया कि समय-गणना में समायोजन अनिवार्य है। अधिमास जैसी व्यवस्थाएँ इसी बौद्धिक समझ का परिणाम हैं, जहाँ काल को जड़ नहीं माना गया, बल्कि लचीला और समायोज्य स्वीकार किया गया।

चंद्र मास और तिथि की अवधारणा में आर्यभट्ट का दृष्टिकोण भारतीय काल-गणना को विशिष्ट बनाता है। तिथि उनके यहाँ केवल एक दिन नहीं है, बल्कि सूर्य और चंद्र के बीच बनने वाले कोण का परिणाम है। इसका अर्थ यह हुआ कि समय समान रूप से प्रवाहित नहीं होता, बल्कि खगोलीय स्थितियों के अनुसार उसका विस्तार और संकोच होता है। यह दृष्टि काल को स्थूल घड़ी-आधारित व्यवस्था से निकालकर सूक्ष्म खगोलीय यथार्थ से जोड़ देती है। इसी कारण भारतीय पंचांग में पर्व-काल केवल तारीख से नहीं, बल्कि तिथि से निर्धारित होता है। युग-गणना के क्षेत्र में भी आर्यभट्ट ने काल को पौराणिक प्रतीक से निकालकर गणनीय अवधारणा में रूपांतरित किया। युग उनके लिए केवल नैतिक या धार्मिक पतन-उत्थान की कथा नहीं है, बल्कि दीर्घकालीन खगोलीय चक्रों का परिणाम है। ग्रहों की गति, उनकी पुनरावृत्ति और दीर्घ आवर्तनों को युगारंभ से जोड़कर उन्होंने यह दिखाया कि काल केवल मानवीय इतिहास तक सीमित नहीं, बल्कि ब्रह्मांडीय विस्तार से जुड़ा हुआ है। यहाँ काल महाकाल के समीप पहुँचता है, जहाँ समय और आकाश का भेद धुंधला हो जाता है। ग्रहों की गणना में आर्यभट्ट का काल-बोध और भी स्पष्ट हो जाता है। ग्रहों की परिक्रमण अवधि, उनकी सापेक्ष गति और पुनरावर्तन काल इन सबको उन्होंने निश्चित समय-इकाइयों से जोड़ा। इससे ग्रहण जैसी घटनाओं की गणना संभव हुई और ज्योतिष भविष्यवाणी से हटकर पूर्वानुमान की दिशा में अग्रसर हुआ। यह परिवर्तन भारतीय काल-गणना के इतिहास में एक महत्वपूर्ण मोड़ है, जहाँ समय अब अनुमान नहीं, बल्कि गणना का विषय बनता है। आर्यभट्ट का प्रभाव भारतीय पंचांग पर गहरा और स्थायी है। तिथि, नक्षत्र, योग और करण की जो व्यवस्था आज भी प्रचलित है, उसके पीछे वही गणितीय-खगोलीय दृष्टि काम कर रही है, जिसे उन्होंने सूत्रबद्ध किया। यद्यपि बाद के आचार्यों ने उनके कुछ निष्कर्षों पर आपत्ति की और वैकल्पिक सिद्धांत प्रस्तुत किए, फिर भी यह निर्विवाद है कि काल-गणना को वैज्ञानिक अनुशासन देने का श्रेय आर्यभट्ट को ही जाता है। दार्शनिक स्तर पर आर्यभट्ट का काल-बोध विशेष महत्व रखता है। उनके यहाँ काल न तो केवल संख्या है और न ही केवल देवता। वह गति, परिवर्तन और गणना का संयुक्त रूप है। यह दृष्टि सांख्य और वैदिक दर्शन से संवाद करती हुई भी स्वतंत्र बनी रहती है। काल उनके लिए अनुभव का आधार है, परंतु अनुभव को सत्यापित करने का माध्यम गणित है। आर्यभट्ट का काल-गणना से संबंध किसी एक ग्रंथ या सूत्र तक सीमित नहीं है। उन्होंने भारतीय काल-बोध को एक ऐसी दिशा दी, जहाँ परंपरा और नवाचार, दर्शन और गणित, अनुभव और प्रेक्षण सब एक साथ चल सकते हैं। वे केवल समय की गणना करने वाले आचार्य नहीं हैं, बल्कि भारतीय बौद्धिक इतिहास में काल को समझने की नई दृष्टि देने वाले विचारक थे। आर्यभट्ट का काल-बोध केवल सिद्धांतों में सीमित नहीं रहा, बल्कि वह उनके साहित्य में ठोस रूप में प्रकट होता है। उनका मुख्य ग्रंथ आर्यभटीय भारतीय बौद्धिक परंपरा में इसलिए विशिष्ट है क्योंकि यह काल, ग्रह और गणित तीनों को सूत्रात्मक संक्षिप्तता में बाँध देता है। यह ग्रंथ किसी कथा या दार्शनिक व्याख्यान की तरह नहीं, बल्कि एक ऐसे वैज्ञानिक घोषणापत्र की तरह है जिसमें समय को मापने की विधि सीधे सूत्रों में प्रस्तुत होती है। आर्यभटीय में काल का स्वरूप अप्रत्यक्ष रूप से हर जगह उपस्थित है। ग्रहों की गति में, युग-गणना में, तिथि-निर्धारण में और अहोरात्र की अवधारणा में।

आर्यभटीय की रचना-शैली स्वयं काल-गणना के अनुशासन को प्रकट करती है। संक्षिप्त सूत्र, न्यूनतम शब्द और अधिकतम अर्थ यह शैली केवल काव्यात्मक नहीं, बल्कि स्मृति और गणना के लिए उपयुक्त है। इससे यह स्पष्ट होता है कि आर्यभट्ट का उद्देश्य केवल विचार प्रकट करना नहीं था, बल्कि एक ऐसी प्रणाली देना था जिसे पीढ़ियाँ गणना में प्रयोग कर सकें। काल यहाँ ग्रंथ की संरचना में भी उपस्थित है। सूत्रों का क्रम, गणनाओं की निरंतरता और चक्रात्मकता, सब कुछ समय की अवधारणा से जुड़ा हुआ है। आर्यभट्ट के साहित्य में युग-गणना का उल्लेख विशेष महत्व रखता है। वे युग को किसी नैतिक कथा के रूप में नहीं, बल्कि ग्रहों की सामूहिक स्थिति से जुड़े दीर्घकालीन खगोलीय चक्र के रूप में देखते हैं। यहीं से काल पौराणिक प्रतीक से निकलकर वैज्ञानिक अनुशासन में प्रवेश करता है। यह दृष्टि बाद के आचार्यों के लिए चुनौती भी बनी और प्रेरणा भी। उनके सूत्रों ने यह प्रश्न खड़ा किया कि क्या काल को केवल परंपरा के आधार पर स्वीकार किया जाए या प्रेक्षण और गणना से प्रमाणित किया जाए। आर्यभट्ट के समकालीन और उनसे कुछ बाद के आचार्य इसी प्रश्न से जूझते दिखाई देते हैं। वराहमिहिर जैसे विद्वान जहाँ सिद्धांतों के संकलन और परंपराओं के समन्वय की दिशा में आगे बढ़ते हैं, वहीं ब्रह्मगुप्त आर्यभट्ट की कुछ मान्यताओं से असहमति प्रकट करते हैं। विशेष रूप से पृथ्वी के घूर्णन को लेकर ब्रह्मगुप्त की आलोचना प्रसिद्ध है। किंतु यह विरोध किसी व्यक्तिगत मतभेद का नहीं, बल्कि काल-बोध को लेकर दो भिन्न दृष्टियों का था। एक ओर गणना और प्रेक्षण पर आधारित दृष्टि, दूसरी ओर अधिक पारंपरिक खगोलीय कल्पना। यह ध्यान देने योग्य है कि ब्रह्मगुप्त की आलोचना के बावजूद आर्यभट्ट की काल-गणना पद्धति समाप्त नहीं होती, बल्कि संवाद के माध्यम से और अधिक सुदृढ़ होती है। बाद में भास्कर प्रथम जैसे आचार्य आर्यभट्ट की व्याख्या करते हुए उनके सिद्धांतों का समर्थन करते हैं और स्पष्ट करते हैं कि पृथ्वी का घूर्णन केवल कल्पना नहीं, बल्कि गणना से सिद्ध अवधारणा है। इससे यह स्पष्ट होता है कि आर्यभट्ट का साहित्य एक बंद ग्रंथ नहीं, बल्कि एक जीवित परंपरा का प्रारंभिक बिंदु है। काल-गणना के संदर्भ में आर्यभट्ट और उनके समकालीनों के बीच यह संवाद भारतीय बौद्धिक परंपरा की एक विशिष्ट विशेषता को उजागर करता है। यहाँ मतभेद का अर्थ परंपरा-विच्छेद नहीं है, बल्कि ज्ञान के परिष्कार की प्रक्रिया है। आर्यभट्ट का काल-बोध इतना सशक्त था कि उसे नकारना संभव नहीं हुआ, केवल उसकी व्याख्या और पुनर्विचार किया गया। यही कारण है कि पंचांग-परंपरा में, ग्रहण-गणना में और तिथि-निर्धारण में आर्यभट्ट की छाया बनी रहती है।

आर्यभट्ट के साहित्य में काल एक मौन लेकिन सर्वव्यापी तत्व है। वे काल की स्तुति नहीं करते, न ही उसके दार्शनिक स्वरूप पर विस्तार से चर्चा करते हैं, फिर भी उनका प्रत्येक सूत्र यह संकेत देता है कि समय को समझे बिना ब्रह्मांड को समझा नहीं जा सकता। यह मौन ही उनकी गहनता है। जहाँ अन्य ग्रंथ काल को शब्दों में बाँधते हैं, वहाँ आर्यभट्ट उसे संख्याओं और गतियों में प्रकट करते हैं। समकालीन परंपरा में यही आर्यभट्ट की विशिष्टता है। वे न तो केवल ऋषि-परंपरा के प्रतिनिधि हैं और न ही आधुनिक अर्थों में वैज्ञानिक। वे उस संक्रमण-काल के आचार्य हैं, जहाँ काल की अनुभूति और काल की गणना एक-दूसरे से अलग नहीं हैं। उनके साहित्य और उनके समकालीनों के साथ हुए संवाद से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय ज्ञान-परंपरा में काल को समझना केवल दार्शनिक प्रश्न नहीं, बल्कि गणितीय और खगोलीय उत्तरदायित्व भी था।आर्यभट्ट का साहित्य और उनके समकालीन आचार्यों के साथ उनका बौद्धिक संवाद भारतीय काल-गणना को एक ठोस आधार देता है। यह परंपरा आगे चलकर सिद्धांतों, करण-ग्रंथों और पंचांगों में विकसित होती है, पर उसका मूल स्वर वही रहता है। काल को न केवल मानना, बल्कि उसे समझना और मापना। यही आर्यभट्ट की स्थायी विरासत है।

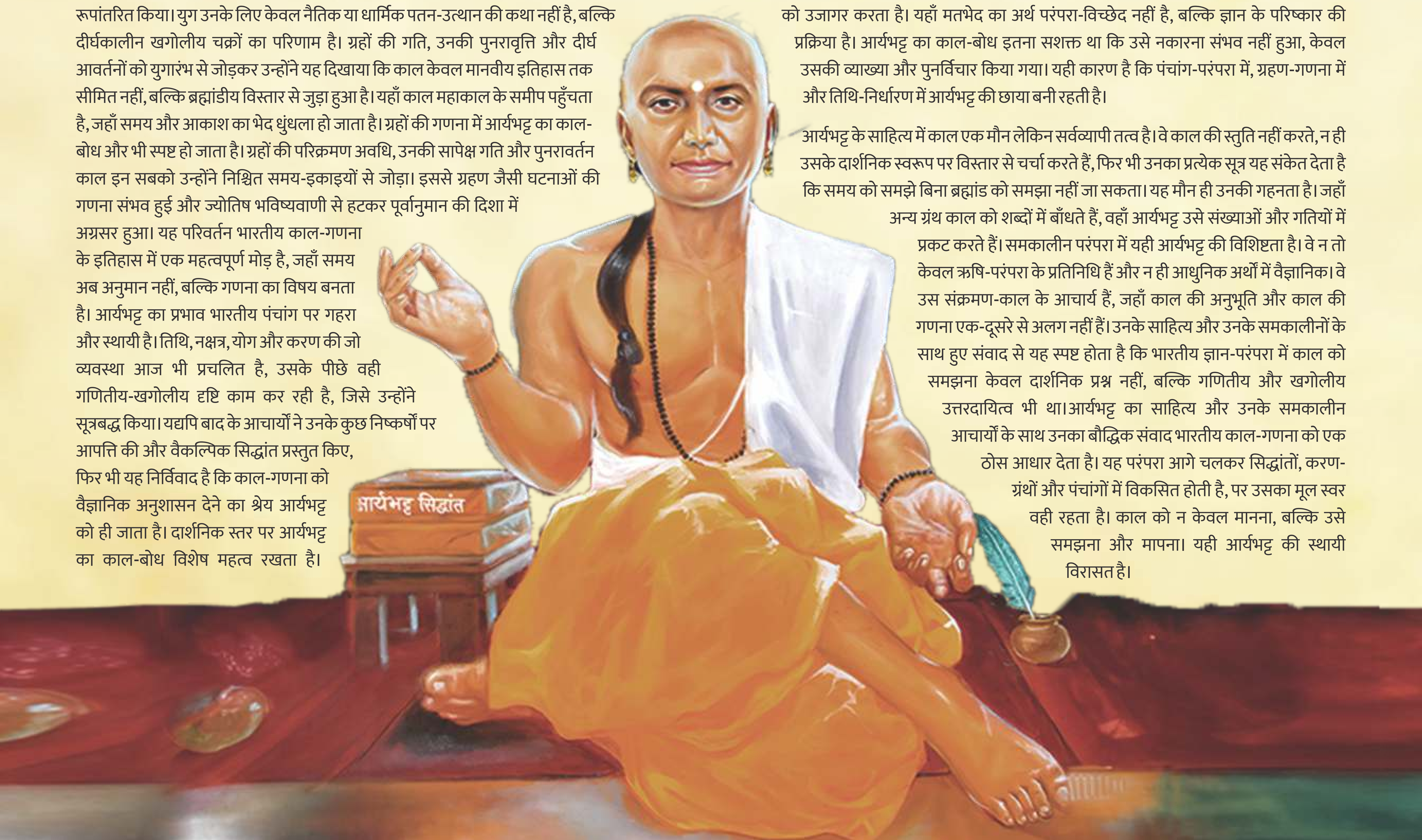

काल, खगोल और भारतीय बौद्धिक परंपरा का समन्वय

“न हि ज्योतिषमधीत्य फलं विना कालविदां भवति कश्चन सिद्धये।” (बृहत्संहिता)

“ज्योतिष का अध्ययन केवल गणना या अनुमान के लिए नहीं है; उसका वास्तविक उद्देश्य काल (समय) की सटीक समझ के माध्यम से जीवन और प्रकृति के रहस्यों को जानना है। काल-ज्ञान के बिना कोई भी सिद्धि संभव नहीं।”

भारतीय ज्ञान-परंपरा में जिन आचार्यों ने काल, खगोल और मानव-जीवन के बीच गहरे और व्यवस्थित संबंध को समझाया, उनमें वराहमिहिर का स्थान अत्यंत विशिष्ट है। वे केवल गणनाकार या भविष्यवक्ता नहीं थे, बल्कि काल को एक जीवंत, गतिशील और सर्वव्यापी तत्व के रूप में देखने वाले दार्शनिक-वैज्ञानिक थे। उनका चिंतन उस युग का प्रतिनिधित्व करता है जब भारतीय बौद्धिक परंपरा में गणित, खगोल, ज्योतिष, प्रकृति-विज्ञान और समाज सब एक-दूसरे से अलग नहीं थे, बल्कि एक ही समग्र दृष्टि के अंग थे। वराहमिहिर के लिए “दिन” केवल समय की इकाई नहीं था और “काल” केवल अमूर्त सत्ता नहीं, बल्कि वह आधार था जिस पर प्रकृति की लय, मानव का जीवन और समाज की व्यवस्था टिकी हुई थी।

वराहमिहिर का जीवन उज्जयिनी जैसे नगर से जुड़ा था, जो प्राचीन भारत में खगोल और काल-गणना का प्रमुख केंद्र माना जाता था। उज्जयिनी की भौगोलिक स्थिति, उसका देशांतर और वहाँ विकसित खगोलीय परंपरा इन सबने वराहमिहिर के चिंतन को गहराई दी। उनके समय तक भारतीय खगोल में आर्यभट, लगध, पराशर, गर्ग जैसे आचार्यों की परंपरा स्थापित हो चुकी थी। वराहमिहिर ने इस परंपरा को न केवल स्वीकार किया, बल्कि विभिन्न सिद्धांतों, मतों और पद्धतियों को एक साथ रखकर उनका समन्वय किया। यही समन्वय उनकी सबसे बड़ी विशेषता है। वे न तो केवल परंपरा के अनुयायी थे और न ही केवल नवाचार के पक्षधर; उन्होंने दोनों को संतुलित किया।

काल को लेकर वराहमिहिर का दृष्टिकोण अत्यंत सूक्ष्म और वैज्ञानिक है। उनके ग्रंथों में दिन, रात, मास, ऋतु, संवत्सर इन सभी का वर्णन केवल सांस्कृतिक या धार्मिक संदर्भ में नहीं, बल्कि खगोलीय गणना और प्राकृतिक लय के आधार पर मिलता है। वे स्पष्ट करते हैं कि पृथ्वी की गति, सूर्य और चंद्र की चाल तथा नक्षत्रों की स्थिति इन सबके कारण ही दिन और रात, मास और वर्ष का निर्माण होता है। इस प्रकार काल कोई स्थिर वस्तु नहीं, बल्कि निरंतर गतिशील प्रक्रिया है।

उनके द्वारा रचित पंचसिद्धान्तिका इस दृष्टि का श्रेष्ठ उदाहरण है। इसमें उन्होंने पाँच प्राचीन खगोल सिद्धांतों का समाहार किया और यह दिखाया कि विभिन्न परंपराओं में काल और दिन की गणना कैसे की गई है। यहाँ “दिन” की अवधारणा कई रूपों में सामने आती है। सावन दिन, नाक्षत्र दिन, सौर दिन। वराहमिहिर यह स्पष्ट करते हैं कि भिन्न प्रयोजनों के लिए भिन्न प्रकार के दिन उपयोगी होते हैं। यज्ञ और अनुष्ठान में सावन दिन का महत्व है, खगोल गणना में नाक्षत्र दिन का, और ऋतु तथा कृषि के निर्धारण में सौर दिन का। इस प्रकार वे काल को एकरूप नहीं, बल्कि बहुआयामी मानते हैं।

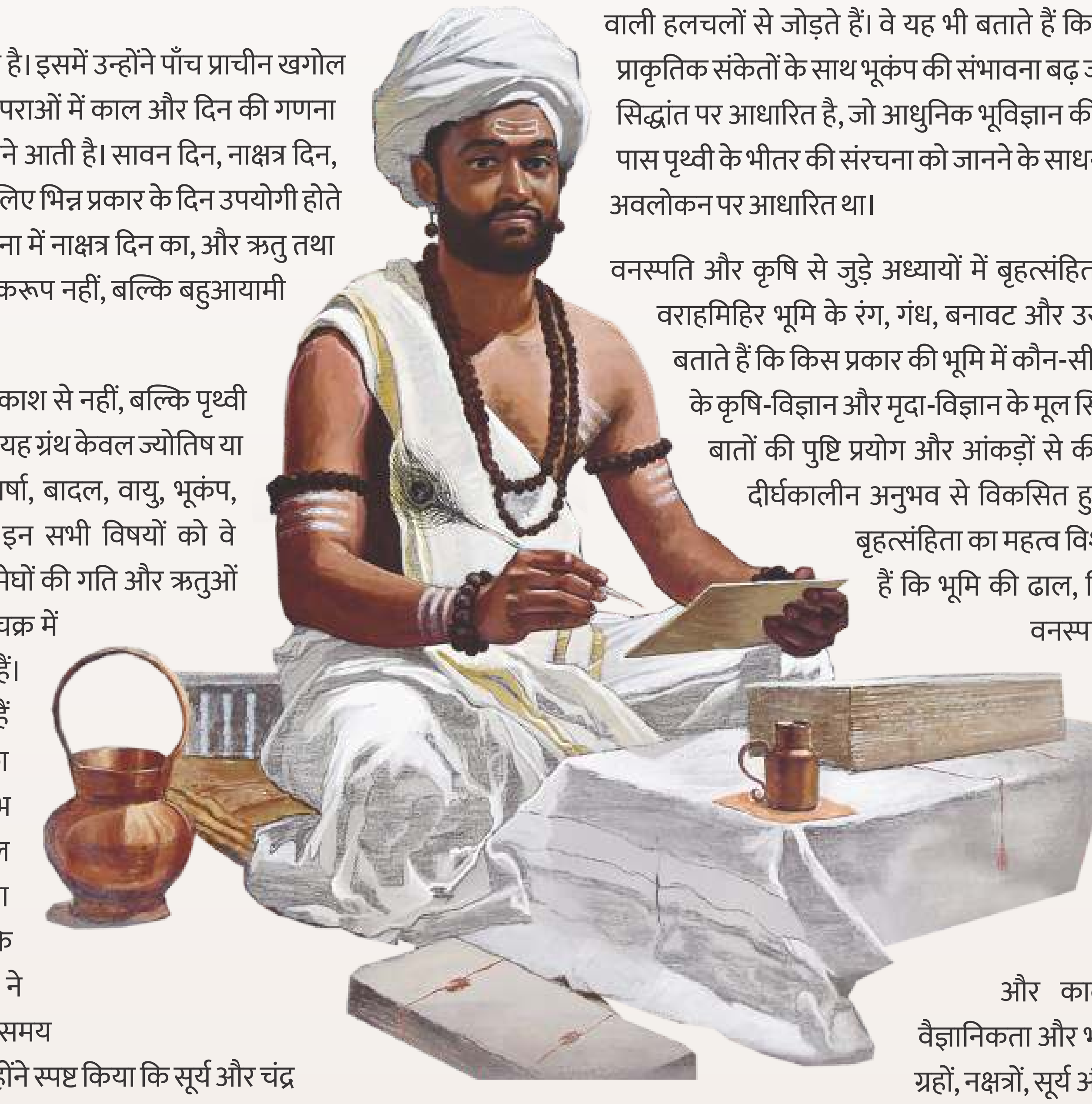

वराहमिहिर के चिंतन में दिन और काल का संबंध केवल आकाश से नहीं, बल्कि पृथ्वी और मानव से भी है। उनकी बृहत्संहिता इस बात का प्रमाण है। यह ग्रंथ केवल ज्योतिष या शकुन-विज्ञान तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें मौसम, वर्षा, बादल, वायु, भूकंप, वनस्पति, पशु-पक्षी और मानव समाज सबका वर्णन है। इन सभी विषयों को वे कालचक्र के भीतर रखते हैं। उनके अनुसार वर्षा का समय, मेघों की गति और ऋतुओं का क्रम ये सब काल की व्यवस्था के अंतर्गत हैं। यदि कालचक्र में असंतुलन हो जाए, तो प्रकृति और समाज दोनों प्रभावित होते हैं। दिन के विभिन्न प्रहरों का वर्णन करते हुए वराहमिहिर बताते हैं कि प्रातःकाल, मध्याह्न, सायंकाल और रात्रि इन चारों का अपना-अपना स्वभाव है। प्रातःकाल को वे शुद्धता और आरंभ का समय मानते हैं, मध्याह्न को कर्म और ऊर्जा का, सायंकाल को विश्राम और संतुलन का, और रात्रि को शांति तथा पुनर्नवीकरण का। यह दृष्टि केवल दार्शनिक नहीं, बल्कि स्वास्थ्य और जीवन-व्यवस्था से भी जुड़ी हुई है। वराहमिहिर ने ग्रहणों के संदर्भ में भी काल की वैज्ञानिक व्याख्या दी। उनके समय में ग्रहणों को लेकर भय और अंधविश्वास प्रचलित थे, किंतु उन्होंने स्पष्ट किया कि सूर्य और चंद्र ग्रहण प्राकृतिक और खगोलीय घटनाएँ हैं, जिनका कारण ग्रहों की स्थिति और गति है। उन्होंने ग्रहण के समय, अवधि और प्रभाव की गणना की और यह दिखाया कि काल की सटीक समझ से इन घटनाओं का पूर्वानुमान संभव है। यह भारतीय विज्ञान में तर्क और प्रेक्षण की सशक्त परंपरा को दर्शाता है। बृहत्जातक में वराहमिहिर ने जन्मकाल के महत्व पर विचार किया। उनके अनुसार जन्म के समय ग्रहों और नक्षत्रों की स्थिति व्यक्ति के स्वभाव और जीवन की संभावनाओं को प्रभावित करती है, परंतु यह प्रभाव अपरिवर्तनीय नियति नहीं है। वे स्पष्ट रूप से कहते हैं कि पुरुषार्थ, शिक्षा और विवेक से मनुष्य अपने जीवन की दिशा बदल सकता है। इस प्रकार वे काल को नियति के रूप में स्वीकार करते हुए भी मानव की स्वतंत्रता को नकारते नहीं हैं। यही संतुलन उन्हें एक वैज्ञानिक दार्शनिक बनाता है। वराहमिहिर के ग्रंथों में अन्य आचार्यों और ग्रंथों के संदर्भ भी मिलते हैं। वे पूर्ववर्ती सिद्धांतों का उल्लेख करते हुए उनकी तुलना करते हैं और जहाँ आवश्यक हो, वहाँ सुधार या संशोधन भी करते हैं। इस दृष्टि से वे केवल लेखक नहीं, बल्कि आलोचक और संपादक भी हैं। उनके बाद आने वाले आचार्यों भास्कराचार्य, ब्रह्मगुप्त आदि ने काल और खगोल के जिन सिद्धांतों को आगे बढ़ाया, उनमें वराहमिहिर की छाया स्पष्ट दिखाई देती है। काल को लेकर वराहमिहिर का सबसे बड़ा योगदान यह है कि उन्होंने उसे जीवन से जोड़ा। उनके लिए काल केवल पंचांग या गणना की वस्तु नहीं, बल्कि वह शक्ति है जो प्रकृति और मानव समाज को एक लय में बाँधती है। वे मानते हैं कि जो व्यक्ति काल की गति को समझ लेता है, वह प्रकृति के संकेतों को भी समझ सकता है। यही कारण है कि उनकी रचनाओं में खगोल के साथ-साथ कृषि, वास्तु, जल-विज्ञान और सामाजिक व्यवहार के नियम भी मिलते हैं। वराहमिहिर की भाषा सरल और व्यावहारिक है। वे जटिल गणनाओं को भी स्पष्ट शब्दों में प्रस्तुत करते हैं और जहाँ आवश्यक हो, वहाँ उदाहरण देते हैं। यही कारण है कि उनके ग्रंथ केवल विद्वानों तक सीमित नहीं रहे, बल्कि लोकजीवन में भी प्रचलित हुए। पंचांग-निर्माण, पर्व-निर्धारण और ऋतु-ज्ञान इन सभी में उनका प्रभाव आज तक बना हुआ है। वराहमिहिर भारतीय परंपरा में उस सेतु के समान हैं, जो आकाश और पृथ्वी, विज्ञान और दर्शन, गणना और अनुभव सबको जोड़ता है। उनके लिए दिन और काल केवल माप की इकाइयाँ नहीं, बल्कि जीवन की लय हैं। उनकी रचनाएँ आज भी यह सिखाती हैं कि काल को समझना केवल भविष्य जानने का साधन नहीं, बल्कि प्रकृति और जीवन के साथ सामंजस्य स्थापित करने का मार्ग है। यदि भारतीय खगोल और काल-दर्शन को एक समग्र दृष्टि से समझना हो, तो वराहमिहिर का अध्ययन अनिवार्य है, क्योंकि उनके यहाँ काल न तो भय का कारण है और न ही केवल नियति, बल्कि वह चेतना है जो सृष्टि को निरंतर गतिमान रखती है। बृहत्संहिता का आधुनिक वैज्ञानिक मूल्यांकन

भारतीय ज्ञान-परंपरा में बृहत्संहिता एक ऐसा ग्रंथ है, जिसे लंबे समय तक केवल ज्योतिष, शगुन और फलादेश की दृष्टि से देखा गया, किंतु जब इसका अध्ययन आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण से किया जाता है, तब यह स्पष्ट होता है कि यह कृति अपने युग की प्रकृति-विज्ञान संबंधी समझ का एक व्यापक और सुव्यवस्थित रूप प्रस्तुत करती है। वराहमिहिर किसी भी प्राकृतिक घटना को अलग-थलग नहीं देखते, बल्कि उसे काल, दिशा, स्थान और परिवेश के साथ जोड़कर समझाते हैं। वर्षा-वर्णन इसका प्रमुख उदाहरण है। वे बादलों के प्रकार, वायु की दिशा, ऋतु-चक्र और आकाशीय स्थितियों के आधार पर वर्षा की संभावना पर विचार करते हैं। आधुनिक मौसम-विज्ञान भी इन्हीं तत्वों को ध्यान में रखकर वर्षा और जलवायु का अध्ययन करता है। यद्यपि आज उपकरण और गणनाएँ अधिक विकसित हैं, फिर भी मूल विचार वही है। प्रकृति में होने वाले परिवर्तनों को संकेतों के माध्यम से समझना। भूकंप संबंधी वर्णन बृहत्संहिता का एक और महत्वपूर्ण पक्ष है। वराहमिहिर भूकंप को दैवी क्रोध या अलौकिक घटना नहीं मानते, बल्कि पृथ्वी के भीतर होने वाली हलचलों से जोड़ते हैं। वे यह भी बताते हैं कि किस कालखंड में, किस दिशा में और किन प्राकृतिक संकेतों के साथ भूकंप की संभावना बढ़ जाती है। यह दृष्टिकोण कारण और परिणाम के सिद्धांत पर आधारित है, जो आधुनिक भूविज्ञान की सोच के निकट दिखाई देता है। यद्यपि उनके पास पृथ्वी के भीतर की संरचना को जानने के साधन नहीं थे, फिर भी उनका निष्कर्ष अनुभव और अवलोकन पर आधारित था।

वनस्पति और कृषि से जुड़े अध्यायों में बृहत्संहिता का वैज्ञानिक पक्ष और स्पष्ट हो जाता है। वराहमिहिर भूमि के रंग, गंध, बनावट और उस पर उगने वाली वनस्पतियों के आधार पर बताते हैं कि किस प्रकार की भूमि में कौन-सी फसल या वृक्ष सफल होंगे। यह विचार आज के कृषि-विज्ञान और मृदा-विज्ञान के मूल सिद्धांतों से मेल खाता है। आधुनिक काल में इन बातों की पुष्टि प्रयोग और आंकड़ों से की जाती है, जबकि प्राचीन काल में यह ज्ञान दीर्घकालीन अनुभव से विकसित हुआ था। जल-स्रोतों की पहचान के संदर्भ में बृहत्संहिता का महत्व विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वराहमिहिर बताते हैं कि भूमि की ढाल, मिट्टी का स्वरूप और कुछ विशेष वृक्षों तथा वनस्पतियों की उपस्थिति से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि भूमि के भीतर जल उपलब्ध है या नहीं। आज भी भूजल की खोज में भूमि और वनस्पति के संकेतों को महत्व दिया जाता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि बृहत्संहिता में वर्णित ज्ञान केवल सैद्धांतिक नहीं, बल्कि व्यावहारिक जीवन से जुड़ा हुआ था। खगोल और काल-गणना के विषय में बृहत्संहिता की वैज्ञानिकता और भी सशक्त रूप में सामने आती है। वराहमिहिर ग्रहों, नक्षत्रों, सूर्य और चंद्र की गति का वर्णन करते समय गणना और प्रत्यक्ष निरीक्षण दोनों का सहारा लेते हैं। वे यह स्वीकार करते हैं कि आकाशीय घटनाओं का पृथ्वी के जीवन पर प्रभाव पड़ता है, किंतु यह प्रभाव रहस्यमय नहीं, बल्कि प्राकृतिक नियमों के अंतर्गत होता है। ऋतुओं का परिवर्तन, दिन-रात का क्रम और समय की गणना ये सभी सूर्य और पृथ्वी की गति से जुड़े हुए हैं। आधुनिक विज्ञान भी इन बातों को स्वीकार करता है, यद्यपि उसकी व्याख्या और विधि अधिक सूक्ष्म हो चुकी है। बृहत्संहिता में अनेक स्थानों पर शगुन और फलादेश का उल्लेख मिलता है, जो आज के वैज्ञानिक मानकों पर खरे नहीं उतरते। किंतु इन अंशों को उस युग की सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में समझना आवश्यक है। प्राचीन समाज में निर्णय-प्रक्रिया में प्रकृति के संकेतों और प्रतीकों को महत्व दिया जाता था। इन प्रतीकों को यदि सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के रूप में देखा जाए, तो वे ग्रंथ के वैज्ञानिक पक्ष को नकारते नहीं, बल्कि उस समय की समग्र सोच को उजागर करते हैं। आधुनिक वैज्ञानिक मूल्यांकन यह स्पष्ट करता है कि बृहत्संहिता को न तो पूर्ण रूप से आधुनिक विज्ञान का ग्रंथ कहा जा सकता है और न ही उसे अंधविश्वास की श्रेणी में रखा जाना उचित है। यह एक ऐसा ग्रंथ है, जिसमें प्राचीन भारतीय वैज्ञानिक चेतना अपने प्रारंभिक, अनुभवजन्य और समग्र रूप में प्रकट होती है। इसमें प्रकृति के प्रति गहरा सम्मान, निरीक्षण की प्रवृत्ति और तर्क की भावना स्पष्ट दिखाई देती है। आज जब विज्ञान फिर से पर्यावरण, जलवायु और संतुलित जीवन की ओर ध्यान केंद्रित कर रहा है, तब बृहत्संहिता यह स्मरण कराती है कि प्रकृति को समझने का मार्ग केवल यंत्रों और गणनाओं से नहीं, बल्कि सूक्ष्म दृष्टि, दीर्घ अनुभव और प्रकृति के साथ सामंजस्य से भी होकर जाता है।

काल और गणित की अविच्छिन्न धारा

भूगोलमध्यगः सूर्यः समकाले समे दिने। छायाभेदेन विज्ञेयो देशकालविभागतः।।

"जब सूर्य पृथ्वी के मध्य भाग में समान काल और समान दिन पर स्थित होता है, तब उसकी छाया के भेद से देश और काल का विभाजन जाना जाता है।
अर्थात् सूर्य की स्थिति और छाया के आधार पर ही स्थान (देश) और समय (काल) का निर्धारण संभव है।"

ब्रह्मगुप्त ज्ञान-परंपरा के उन विरल आचार्यों में हैं जिनका चिंतन किसी एक शास्त्र की सीमा में बँधा हुआ नहीं था। उनके लिए गणित, खगोल, ज्योतिष और काल ये सब अलग-अलग विषय नहीं, बल्कि एक ही व्यापक बौद्धिक प्रवाह के विविध आयाम थे। सातवीं शताब्दी का भारत राजनीतिक और सांस्कृतिक परिवर्तन के दौर से गुजर रहा था, किंतु ज्ञान की परंपरा अपनी निरंतरता बनाए हुए थी। इसी परंपरा में ब्रह्मगुप्त का प्रादुर्भाव हुआ, जिन्होंने उज्जयिनी की खगोलीय परंपरा को न केवल आगे बढ़ाया, बल्कि उसे वैश्विक ज्ञान-इतिहास में स्थायी स्थान दिलाया। उज्जयिनी प्राचीन भारत में काल-गणना और खगोल अध्ययन का प्रमुख केंद्र रही है। यह नगर केवल धार्मिक या व्यापारिक दृष्टि से ही नहीं, बल्कि वैज्ञानिक चिंतन के लिए भी महत्वपूर्ण था। ब्रह्मगुप्त इसी परंपरा के प्रतिनिधि थे। उनका प्रसिद्ध ग्रंथ ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त केवल खगोलशास्त्र का ग्रंथ नहीं, बल्कि गणितीय तर्क, काल-निर्धारण और भौतिक जगत की समझ का एक समग्र दस्तावेज है। इसमें संख्याओं के व्यवहार से लेकर ग्रहों की गति तक, हर विषय में एक गहरी वैज्ञानिक चेतना दिखाई देती है।

गणित के क्षेत्र में ब्रह्मगुप्त का सबसे क्रांतिकारी योगदान शून्य की अवधारणा को स्पष्ट और सुदृढ़ रूप देना है। उनसे पहले भी भारत में शून्य का प्रयोग संकेत रूप में मिलता है, किंतु ब्रह्मगुप्त ने पहली बार शून्य को एक स्वतंत्र संख्या के रूप में परिभाषित किया और उसके साथ गणितीय क्रियाओं के नियम बताए। उन्होंने स्पष्ट किया कि किसी संख्या में शून्य जोड़ने या घटाने से वह संख्या अपरिवर्तित रहती है। यह दृष्टि दशमलव संख्या-पद्धति की आत्मा है, जिसने आगे चलकर संपूर्ण विश्व के गणित को नई दिशा दी। शून्य के साथ-साथ ऋणात्मक और धनात्मक संख्याओं के नियमों का प्रतिपादन ब्रह्मगुप्त की एक और महान उपलब्धि है। जिस युग में संख्याएँ मुख्यतः गणना और मापन तक सीमित थीं, उस समय ऋण और धन को गणितीय रूप से परिभाषित करना बीजगणितीय सोच का प्रमाण था। ऊपर उद्धृत श्लोक इसी विचार का सार है। यह न केवल सूत्रात्मक है, बल्कि अत्यंत स्पष्ट और तार्किक भी है। इससे यह सिद्ध होता है कि भारतीय गणित उस समय अमूर्त संकल्पनाओं को समझने और व्यक्त करने में सक्षम था। ब्रह्मगुप्त का गणित केवल संख्याओं तक सीमित नहीं था। उन्होंने द्विघात समीकरणों के हल प्रस्तुत किए और उनके सामान्य रूपों को समझाया। यह कार्य बीजगणित के विकास में एक महत्वपूर्ण चरण था। इसके अतिरिक्त, त्रिभुज, आयत, वर्ग और चतुर्भुज के क्षेत्रफल से संबंधित सूत्रों को उन्होंने सुव्यवस्थित किया। विशेष रूप से चतुर्भुज के क्षेत्रफल का सूत्र जिसे आज ब्रह्मगुप्त सूत्र के नाम से जाना जाता है। उनकी गणितीय प्रतिभा का उत्कृष्ट उदाहरण है। यह सूत्र दर्शाता है कि वे केवल सैद्धांतिक गणितज्ञ नहीं थे, बल्कि व्यावहारिक समस्याओं के समाधान में भी रुचि रखते थे। वृत्त, जीवा और व्यास से संबंधित उनकी गणनाएँ खगोलशास्त्र से गहराई से जुड़ी हुई हैं। ग्रहों की दूरी, उनकी कक्षाएँ और आकाशीय माप इन सभी के लिए सटीक गणित आवश्यक था। ब्रह्मगुप्त ने इस आवश्यकता को समझते हुए गणित को खगोल के अनुकूल ढाला। यही कारण है कि उनका गणित काल-गणना का सशक्त आधार बन सका।

काल-गणना के क्षेत्र में ब्रह्मगुप्त का योगदान और भी व्यापक तथा गहन है। भारतीय परंपरा में काल को केवल रेखीय नहीं, बल्कि चक्रात्मक माना गया है। तिथि, पक्ष, मास, ऋतु और संवत्सर ये सभी काल के विभिन्न स्तर हैं। ब्रह्मगुप्त ने इन सभी की गणना के लिए गणितीय विधियाँ प्रस्तुत कीं। ग्रहों की औसत गति और स्पष्ट गति के बीच अंतर को समझाते हुए उन्होंने बताया कि कैसे गणना के माध्यम से वास्तविक स्थिति के निकट पहुँचा जा सकता है। इससे पंचांग-निर्माण अधिक सटीक और विश्वसनीय हुआ।

ग्रहणों की गणना में भी ब्रह्मगुप्त का योगदान उल्लेखनीय है। सूर्य और चंद्र ग्रहणों को दैवी या रहस्यमय घटना मानने के बजाय उन्होंने उन्हें ग्रहों की स्थिति और छाया के परिणाम के रूप में समझाया। यह दृष्टि वैज्ञानिक चेतना का परिचायक है। ग्रहणों के समय, अवधि और दिशा की गणना के उनके सूत्र उस युग में अत्यंत उन्नत माने जाते थे। ब्रह्मगुप्त का पृथ्वी के विषय में दृष्टिकोण भी विशेष महत्व रखता है। उन्होंने पृथ्वी को गोल बताया और यह विचार प्रस्तुत किया कि वस्तुएँ पृथ्वी के केंद्र की ओर गिरती हैं। यह कथन काल और खगोल की उनकी समझ को और गहराई देता है। यदि पृथ्वी गोल है और उसकी अपनी गति है, तो समय की गणना भी स्थिर नहीं रह सकती। इस प्रकार ब्रह्मगुप्त के लिए काल केवल पंचांग की तिथियों का क्रम नहीं था, बल्कि गति, परिवर्तन और गणितीय नियमों से जुड़ा हुआ एक सजीव तत्व था। उनके चिंतन में काल और गणित के बीच गहरा अंतर्संबंध दिखाई देता है। संख्या के बिना काल की गणना संभव नहीं और काल के बिना गणित निरर्थक है। यह भावना उनके पूरे कार्य में प्रवाहित होती है। ग्रहों की गति को उन्होंने संख्याओं में बाँधा और संख्याओं को काल के संदर्भ में अर्थ दिया। यही कारण है कि उनका गणित केवल अमूर्त नहीं, बल्कि काल सापेक्ष है। ब्रह्मगुप्त का प्रभाव उनके जीवनकाल तक सीमित नहीं रहा। उनके ग्रंथों का अरबी भाषा में अनुवाद हुआ और इस्लामी जगत के विद्वानों ने उनसे गहन रूप से अध्ययन किया। अल-ख्वारिज़्मी जैसे विद्वानों के माध्यम से उनके गणितीय विचार यूरोप तक पहुँचे। शून्य, ऋणात्मक संख्याएँ और बीजगणितीय सोच इन सभी ने आधुनिक गणित के विकास में निर्णायक भूमिका निभाई। इस प्रकार ब्रह्मगुप्त भारतीय ज्ञान-परंपरा के ऐसे सेतु बने, जिसने पूर्व और पश्चिम को जोड़ दिया। ब्रह्मगुप्त का लेखन शैली में अत्यंत संक्षिप्त और सूत्रात्मक है। ब्रह्मगुप्त के काल चिंतन को यदि उनके समकालीन आचार्यों की पृष्ठभूमि में देखा जाए, तो भारतीय वैज्ञानिक परंपरा की वह सूक्ष्म बौद्धिक धारा स्पष्ट होती है जिसमें काल केवल दार्शनिक अवधारणा नहीं, बल्कि गणनीय, मापनीय और खगोलीय घटनाओं से नियंत्रित तत्व के रूप में प्रतिष्ठित है। सातवीं शताब्दी का भारत खगोल और गणित के क्षेत्र में अत्यंत उर्वर काल था, जहाँ एक ही परंपरा के भीतर भिन्न-भिन्न दृष्टियाँ विकसित हो रही थीं। ब्रह्मगुप्त से ठीक पहले और कुछ अंशों में उनके समकालीन माने जाने वाले आर्यभट ने काल-गणना को गणितीय कठोरता प्रदान की थी। आर्यभट के यहाँ काल मुख्यतः ग्रहों की गति और पृथ्वी के घूर्णन से जुड़ा हुआ है। उन्होंने स्पष्ट किया कि दिन-रात का कारण पृथ्वी का स्वयं घूमना है और समय की गणना इसी गति पर आधारित है। आर्यभट के काल-बोध में गणितीय अमूर्तन अधिक है; वे काल को एक निरंतर प्रवाह के रूप में देखते हैं, जिसे संख्याओं और कोणों में बाँधा जा सकता है। ब्रह्मगुप्त इस परंपरा को स्वीकार करते हुए भी उसमें व्यावहारिक आयाम जोड़ते हैं। उनके लिए काल पंचांग, तिथि और ग्रहण-निर्धारण से सीधे जुड़ा है। वराहमिहिर का काल चिंतन अपेक्षाकृत भिन्न स्वर लिए हुए है। वराहमिहिर के यहाँ काल केवल खगोलीय नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और प्राकृतिक संकेतों से भी जुड़ा है। बृहत्संहिता में वे ऋतुओं, वर्षा, मौसम और सामाजिक जीवन को काल के साथ जोड़ते हैं। उनके यहाँ समय एक ऐसा तत्व है जो प्रकृति, समाज और ब्रह्मांड को एक साथ बाँधता है। इसके विपरीत ब्रह्मगुप्त का दृष्टिकोण अधिक गणितप्रधान है; वे काल को सूत्रों, गणनाओं और मापन की कसौटी पर परखते हैं। जहाँ वराहमिहिर संकेतों और लक्षणों से काल को समझते हैं, वहीं ब्रह्मगुप्त संख्याओं और गणितीय विधियों से।

ब्रह्मगुप्त के समकालीन या निकटवर्ती परंपरा में भास्कर प्रथम का उल्लेख भी आवश्यक है। भास्कर प्रथम आर्यभट परंपरा के प्रमुख व्याख्याकार थे। उनके यहाँ काल-गणना आर्यभटीय सिद्धांतों की व्याख्या और पुष्टि के रूप में सामने आती है। भास्कर प्रथम काल को गणितीय मॉडल के रूप में प्रस्तुत करते हैं, किंतु उसमें नवीन सूत्रों का विस्तार अपेक्षाकृत कम है। इसके विपरीत ब्रह्मगुप्त न केवल पूर्ववर्ती सिद्धांतों की समीक्षा करते हैं, बल्कि उनसे असहमति प्रकट करते हुए नए गणितीय समाधान भी प्रस्तुत करते हैं। यह आलोचनात्मक दृष्टि उनके काल-चिंतन को अधिक स्वतंत्र और मौलिक बनाती है। ब्रह्मगुप्त की विशेषता यह है कि वे काल को गणित और खगोल के बीच सेतु के रूप में देखते हैं। उनके लिए काल न तो केवल दार्शनिक चक्र है और न ही मात्र ग्रहों की गति का परिणाम, बल्कि एक ऐसी गणनीय वास्तविकता है जिसे सुधारी जा सकने वाली गणनाओं के माध्यम से अधिक सटीक बनाया जा सकता है। उन्होंने ग्रहों की औसत और स्पष्ट गति में अंतर बताकर यह स्पष्ट किया कि काल-निर्धारण में त्रुटि संभव है और उसे गणितीय संशोधन द्वारा सुधारा जा सकता है। यह विचार उनके समकालीनों में अपेक्षाकृत अधिक विकसित रूप में दिखाई देता है। तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाए तो आर्यभट काल को गति और गणित के मूल सिद्धांतों से बाँधते हैं, वराहमिहिर उसे प्रकृति और समाज से जोड़ते हैं, भास्कर प्रथम उसे परंपरा की व्याख्या के रूप में आगे बढ़ाते हैं, जबकि ब्रह्मगुप्त काल को सुधार योग्य, गणनीय और व्यावहारिक विज्ञान के रूप में स्थापित करते हैं। यही कारण है कि भारतीय काल-गणना की परंपरा में ब्रह्मगुप्त एक ऐसे आचार्य के रूप में उभरते हैं, जिन्होंने समकालीन विचारों को आत्मसात कर उन्हें नई वैज्ञानिक स्पष्टता दी। समग्र रूप में ब्रह्मगुप्त का योगदान केवल गणित या खगोल तक सीमित नहीं है। वे भारतीय वैज्ञानिक चिंतन की उस परंपरा के प्रतिनिधि हैं, जिसमें काल को ब्रह्मांडीय व्यवस्था का मूल तत्व माना गया है। उनके लिए समय कोई अमूर्त कल्पना नहीं, बल्कि गणनीय, मापनीय और नियमबद्ध सत्य था। गणित उस सत्य को समझने का माध्यम था। इस प्रकार ब्रह्मगुप्त का कार्य काल और गणित की एक अविच्छिन्न, प्रवाहमान धारा के रूप में सामने आता है। यह धारा संख्याओं से आरंभ होकर आकाश तक जाती है और आकाश से लौटकर मानव जीवन के समय-बोध को अर्थ देती है। भारतीय ज्ञान-परंपरा में उनका स्थान इसलिए अद्वितीय है, क्योंकि उन्होंने समय को समझने के लिए संख्या दी और संख्या को अर्थ देने के लिए समय।

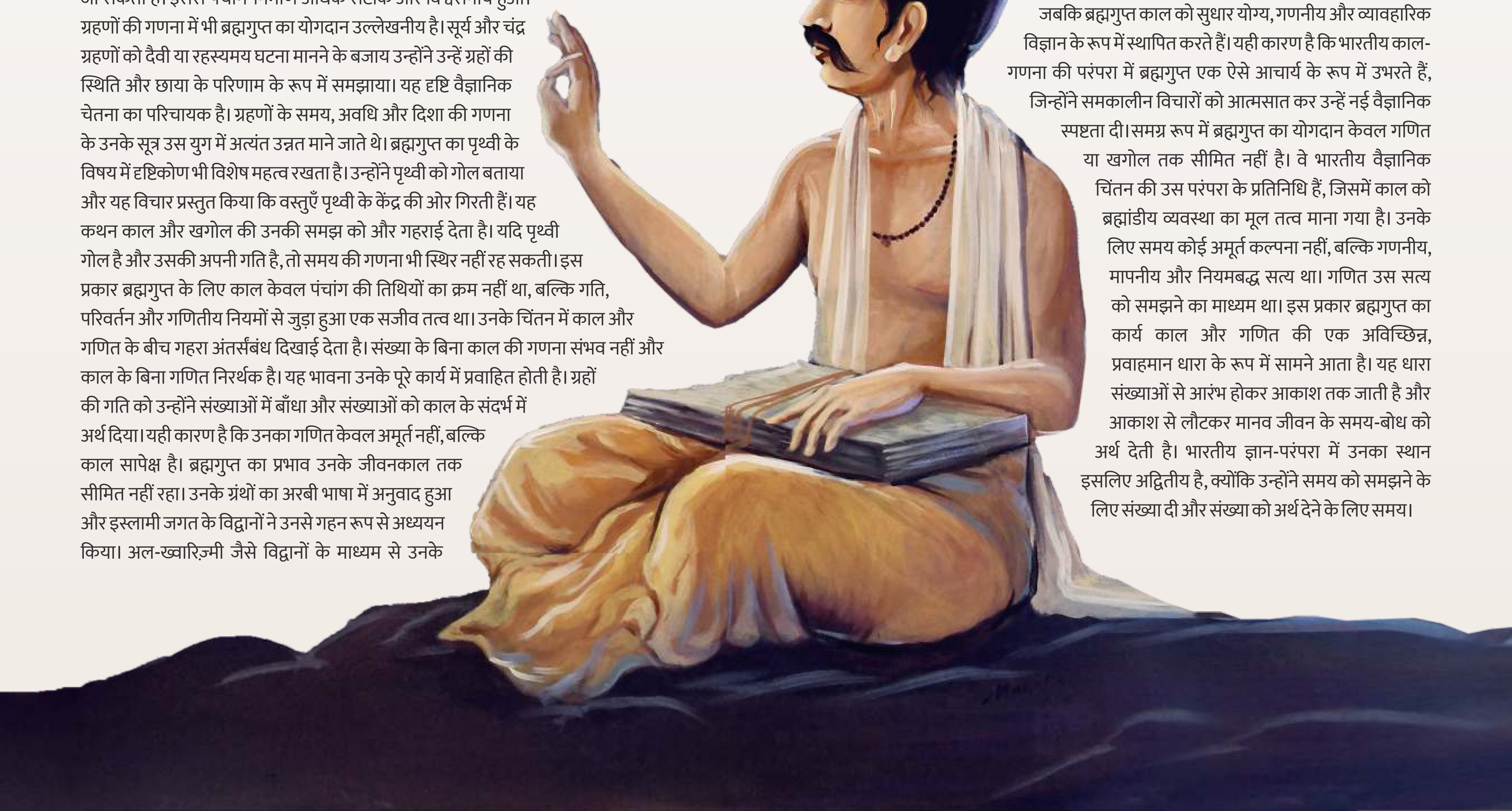

काल और गति का गणितीय बोध

गतिश्च कालश्च परस्पराश्रितौ विना गतिं नास्ति हि कालकल्पना। तस्मात् ग्रहाणां गतितत्त्ववेदनात् प्रबुध्यते कालविचारनिर्णयः॥ (सिद्धान्तशिरोमणि)

“गति और काल एक-दूसरे पर आश्रित हैं। गति के बिना काल की कल्पना ही संभव नहीं है। अतः ग्रहों की गति के वास्तविक तत्त्व को जानने से ही काल का सही विचार और निर्णय संभव होता है।”

भारतीय गणित-खगोल परंपरा में भास्कराचार्य का स्थान अत्यंत विशिष्ट है। वे केवल सूत्रों के रचनाकार नहीं थे, बल्कि काल, समय, गति और आकाशीय घटनाओं को एक जीवंत बौद्धिक तंत्र में पिरोने वाले मनीषी थे। उनके लिए ‘काल’ कोई अमूर्त अवधारणा नहीं थी, बल्कि गणना, निरीक्षण और तर्क से निरंतर परिष्कृत होने वाली एक सजीव सत्ता थी, जो पृथ्वी की गति, ग्रहों की चाल और मानव जीवन की लय तीनों को एक साथ जोड़ती है। इसी दृष्टि से उनका योगदान भारतीय विज्ञान के इतिहास में आज भी प्रासंगिक और प्रेरक दिखाई देता है। भास्कराचार्य का कालखंड वह समय था जब उज्जैन जैसे नगर गणित और खगोल के जीवंत केंद्र थे। यहाँ की परंपरा में समय-गणना केवल पंचांग बनाने तक सीमित नहीं थी, बल्कि वह कृषि, अनुष्ठान, सामाजिक जीवन और दार्शनिक चिंतन से गहराई से जुड़ी हुई थी। इस सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में भास्कराचार्य ने काल को समझने के लिए गणितीय सूक्ष्मता और खगोलीय यथार्थ दोनों का सहारा लिया। उनके लिए दिन-रात्रि, तिथि, नक्षत्र, योग, करण, संवत्सर ये सब अलग-अलग इकाइयाँ नहीं, बल्कि एक समग्र समय-प्रणाली के घटक थे। उनका महान ग्रंथ सिद्धान्तशिरोमणि चार भागों में विभक्त है, जिनमें से ‘गोलाध्याय’ और ‘ग्रहगणिताध्याय’ विशेष रूप से काल-सम्बन्धी प्रश्नों को स्पष्ट करते हैं। यहाँ समय को स्थिर नहीं, बल्कि गतिमान माना गया है। ऐसी गतिमान सत्ता जो ग्रहों की कोणीय गति, पृथ्वी के घूर्णन और सूर्य के वार्षिक पथ से निरंतर प्रभावित होती रहती है। भास्कराचार्य ने यह दिखाया कि समय-गणना तभी शुद्ध हो सकती है जब हम आकाशीय पिंडों की वास्तविक चाल को समझें, न कि केवल परंपरागत मान्यताओं पर निर्भर रहें। दिन और रात्रि की लंबाई के परिवर्तन पर उनके विचार विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उन्होंने स्पष्ट किया कि वर्ष भर में दिन-रात्रि की अवधि समान नहीं रहती, बल्कि सूर्य के उत्तरायण-दक्षिणायण गमन के साथ बदलती रहती है। इस परिवर्तन को गणितीय रूप से व्यक्त करने के लिए उन्होंने त्रिकोणमितीय अवधारणाओं का सहारा लिया, जिससे समय-मापन अधिक सूक्ष्म और यथार्थ बन सका। यह दृष्टि आज के आधुनिक खगोल में प्रयुक्त सौर-समय की अवधारणा से आश्चर्यजनक रूप से मेल खाती है। काल और गति के संबंध पर भास्कराचार्य का चिंतन अत्यंत गहन है। वे कहते हैं कि बिना गति के समय की कल्पना अधूरी है। ग्रहों की चाल जितनी जटिल है, समय की गणना उतनी ही सावधानी से करनी पड़ती है। इसी संदर्भ में उन्होंने सापेक्ष गति के विचार को स्पष्ट किया यदि दो ग्रह अलग-अलग वेग से चल रहे हों, तो उनके संयोग या विप्रयोग का समय कैसे निकाला जाए। यह समस्या केवल खगोल की नहीं, बल्कि समय-गणना की भी है, क्योंकि किसी घटना का ‘कब’ घटित होना उसी सापेक्षता पर निर्भर करता है। यहाँ भास्कराचार्य का गणित एक दार्शनिक गहराई भी प्राप्त करता है।

तिथि-गणना के क्षेत्र में उनका योगदान विशेष महत्व रखता है। भारतीय पंचांग परंपरा में तिथि चंद्र-सूर्य की सापेक्ष स्थिति पर आधारित होती है। भास्कराचार्य ने तिथि-क्षय और तिथि-वृद्धि जैसे जटिल प्रश्नों को स्पष्ट गणितीय आधार दिया। उन्होंने दिखाया कि कैसे चंद्रमा की असमान गति के कारण कभी-कभी एक ही तिथि दो सूर्योदयों में आ सकती है, या कोई तिथि लुप्त भी हो सकती है। यह सूक्ष्म विवेचन समय-निर्धारण को व्यवहारिक जीवन के लिए अधिक विश्वसनीय बनाता है।

नक्षत्र-काल की अवधारणा में भी उनका योगदान गहरा है। नक्षत्र केवल ज्योतिषीय प्रतीक नहीं, बल्कि समय-मापन की इकाइयाँ हैं ऐसा उनका दृष्टिकोण था। चंद्रमा का एक नक्षत्र से दूसरे नक्षत्र में गमन समय की एक निश्चित मात्रा को दर्शाता है। भास्कराचार्य ने इस गमन-काल को गणितीय सूत्रों में बाँधकर नक्षत्र-आधारित समय-निर्धारण को अधिक सटीक बनाया। इससे न केवल धार्मिक अनुष्ठानों का समय निश्चित हुआ, बल्कि खगोलीय अवलोकनों की विश्वसनीयता भी बढ़ी। संवत्सर और युग-काल की चर्चा में वे परंपरा और तर्क दोनों को साथ लेकर चलते हैं। उन्होंने स्वीकार किया कि युग-चक्र भारतीय सांस्कृतिक स्मृति का अभिन्न अंग हैं, परंतु साथ ही यह भी स्पष्ट किया कि दीर्घकालीन गणनाओं में छोटे-छोटे त्रुटि-संचय कैसे बड़ी विसंगतियाँ पैदा कर सकते हैं। इसीलिए वे समय-समय पर गणनाओं के संशोधन पर बल देते हैं। यह वैज्ञानिक चेतना कि किसी भी समय-मॉडल को अंतिम नहीं माना जा सकता। उनके चिंतन की आधुनिकता को दर्शाती है। भास्कराचार्य के यहाँ ‘काल’ केवल बाह्य घटनाओं का मापक नहीं, बल्कि गणितीय तर्क की कसौटी भी है। उनके गणितीय ग्रंथ लीलावती और बीजगणित में समय-सम्बन्धी प्रश्न अनेक उदाहरणों के माध्यम से आते हैं। जैसे यात्राओं का समय, कार्य-समाप्ति की अवधि, या विभिन्न गतियों के समन्वय से मिलने वाला समय। इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि उनके लिए काल-बोध एक सैद्धांतिक विषय नहीं, बल्कि दैनिक जीवन से जुड़ा व्यावहारिक ज्ञान था।

उनकी एक अत्यंत महत्वपूर्ण अंतर्दृष्टि यह है कि समय-गणना में शून्य की भूमिका निर्णायक है। मध्यकालीन भारतीय गणित में शून्य केवल संख्या नहीं, बल्कि गणना की धुरी था। भास्कराचार्य ने शून्य के साथ गणनाओं में आने वाली जटिलताओं पर विचार करते हुए यह स्पष्ट किया कि समय-मापन में भी ‘शून्य-क्षण’ जैसे संक्रांति या अमावस्या विशेष ध्यान की मांग करता है। यह सूक्ष्मता उन्हें केवल परंपरावादी नहीं, बल्कि नवाचारी भी सिद्ध करती है। खगोलिक उपकरणों और अवलोकन-पद्धतियों के संदर्भ में भी उनका काल-चिंतन व्यावहारिक धरातल पर उतरता है। सूर्यघटी, जलघटी और छाया-मापन जैसे साधनों से प्राप्त समय-मान को वे गणितीय सूत्रों से जोड़ते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि उनके लिए समय-ज्ञान प्रयोग और सिद्धांत दोनों के संतुलन से उत्पन्न होता है। यही संतुलन भारतीय विज्ञान की परंपरा की एक बड़ी विशेषता है, और भास्कराचार्य इसके श्रेष्ठ प्रतिनिधि हैं। दार्शनिक स्तर पर भास्कराचार्य का काल-बोध नियति और पुरुषार्थ दोनों को स्थान देता है। ग्रहों की गति से उत्पन्न समय-चक्र मनुष्य के जीवन को प्रभावित करते हैं, परंतु मनुष्य की बुद्धि जो गणित और ज्योतिष का सहारा लेती है उसे उन प्रभावों को समझने और संतुलित करने की क्षमता भी देती है। इस प्रकार समय उनके यहाँ बंधन नहीं, बल्कि ज्ञान का माध्यम बन जाता है। भास्कराचार्य के काल चिंतन का एक कम चर्चित, किंतु अत्यंत महत्त्वपूर्ण पक्ष उनकी सूक्ष्म सुधारात्मक दृष्टि है। वे पूर्ववर्ती सिद्धांतों को श्रद्धा के साथ स्वीकार तो करते हैं, पर उन्हें ज्यों-का-त्यों अंतिम सत्य नहीं मानते। समय-गणना में होने वाली सूक्ष्म त्रुटियों को वे गंभीरता से लेते हैं और यह स्पष्ट करते हैं कि यदि गणनाओं में निरंतर संशोधन न किया जाए, तो दीर्घकाल में पंचांग और खगोलीय पूर्वानुमान वास्तविक आकाशीय स्थिति से भटक सकते हैं। इस दृष्टि से उनका चिंतन परंपरा के भीतर रहते हुए भी वैज्ञानिक आत्मालोचन का उत्कृष्ट उदाहरण है। काल और खगोल के संबंध में उनका एक महत्त्वपूर्ण योगदान अयन-गति और विषुव बिंदुओं की व्याख्या से जुड़ा है। भास्कराचार्य यह समझते थे कि उत्तरायण और दक्षिणायण केवल धार्मिक पर्वों के सूचक नहीं हैं, बल्कि ये पृथ्वी-सूर्य संबंध से उत्पन्न वास्तविक खगोलीय अवस्थाएँ हैं, जिनसे ऋतु, दिन-रात्रि की अवधि और कृषि-चक्र प्रभावित होते हैं। उन्होंने यह दिखाया कि अयन परिवर्तन के साथ समय-मान में सूक्ष्म अंतर आते हैं, जिन्हें अनदेखा करने पर ऋतु-निर्धारण में गड़बड़ी हो सकती है। इस प्रकार समय उनके यहाँ प्रकृति के साथ संवाद का माध्यम बन जाता है। उनका काल-बोध ऋतु-चक्र से भी गहराई से जुड़ा हुआ है। भास्कराचार्य ने ऋतुओं को केवल सांस्कृतिक विभाजन नहीं माना, बल्कि सूर्य की वार्षिक गति का प्रत्यक्ष परिणाम बताया। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि ऋतुओं की लंबाई समान नहीं होती और यह असमानता समय-गणना में विशेष सावधानी की मांग करती है। इस संदर्भ में उनका चिंतन भारतीय कृषि-आधारित समाज के लिए अत्यंत उपयोगी था, क्योंकि बीज-वपन, कटाई और जल-प्रबंधन सभी समय की शुद्ध समझ पर निर्भर करते थे। काल और गणित के अंतर्संबंध को वे अनुपात और प्रगति के सिद्धांतों से भी जोड़ते हैं। समय को वे ऐसी मात्रा मानते हैं, जो निरंतर बढ़ती हुई प्रगति में प्रवाहित होती है। इसी कारण उनके गणितीय उदाहरणों में समय अक्सर एक चल राशि के रूप में उपस्थित होता है, न कि स्थिर मान के रूप में। इससे यह स्पष्ट होता है कि वे समय को ‘घटित होने की प्रक्रिया’ के रूप में देखते थे, न कि केवल मापन की इकाई के रूप में। यह दृष्टि भारतीय बौद्धिक परंपरा में एक गहरी दार्शनिक परिपक्वता का संकेत देती है। भास्कराचार्य का काल-चिंतन स्थानीय समय की अवधारणा को भी महत्व देता है। वे जानते थे कि अलग-अलग स्थानों पर सूर्य के उदय-अस्त का समय भिन्न होता है, और इसलिए एक ही घटना का समय हर स्थान पर समान नहीं हो सकता। यह विचार आज के आधुनिक समय-क्षेत्रों की अवधारणा से भले भिन्न हो, पर उसके मूल में वही समझ निहित है कि समय सार्वभौमिक होते हुए भी स्थान-सापेक्ष होता है। मध्यकालीन संदर्भ में यह एक अत्यंत उन्नत और यथार्थवादी सोच थी। काल के साथ-साथ वे क्षण, व मुहूर्त जैसी सूक्ष्म समय-इकाइयों पर भी विचार करते हैं। उनके लिए बड़े कालखंडों की शुद्धता तभी संभव है, जब छोटी इकाइयों की गणना सटीक हो। इसीलिए उन्होंने सूक्ष्म समय-खंडों के परस्पर संबंध को गणितीय रूप से स्पष्ट किया। यह सूक्ष्मता दर्शाती है कि उनका चिंतन केवल व्यापक दार्शनिक स्तर पर नहीं, बल्कि अत्यंत बारीक गणनात्मक स्तर पर भी उतना ही सशक्त था। भास्कराचार्य के काल-दर्शन में अनुभव और गणना का सुंदर समन्वय दिखाई देता है। वे केवल ग्रंथों में लिखी बातों पर निर्भर नहीं रहते, बल्कि प्रत्यक्ष अवलोकन को भी समान महत्व देते हैं। यदि गणना और अनुभव में विरोध हो, तो वे अनुभव को अनदेखा नहीं करते, बल्कि गणना की पद्धति पर पुनर्विचार करते हैं। यही वैज्ञानिक मानसिकता उन्हें अपने समय से आगे का आचार्य बनाती है। दार्शनिक दृष्टि से देखें तो उनके यहाँ काल न तो पूर्णतः नियतिवादी है और न ही मनुष्य-नियंत्रित। ग्रहों की गति से उत्पन्न समय-चक्र अपने नियमों से चलते हैं, पर मनुष्य की बुद्धि उन नियमों को समझकर अपने जीवन को अधिक संतुलित बना सकती है। इस प्रकार समय उनके यहाँ भय या बंधन का कारण नहीं, बल्कि ज्ञान और विवेक का अवसर बन जाता है। भास्कराचार्य का काल-सम्बन्धी योगदान भारतीय विज्ञान को केवल सूत्र और तालिकाएँ नहीं देता, बल्कि समय को समझने की एक परिपक्व दृष्टि भी प्रदान करता है। उनके लिए काल आकाशीय गति, गणितीय तर्क, प्राकृतिक ऋतु और मानवीय जीवन इन सभी का साझा सूत्र है। यही समग्रता उनके चिंतन को आज भी जीवंत और प्रासंगिक बनाती है, और यही कारण है कि भारतीय बौद्धिक परंपरा में उनका स्थान एक कालजयी आचार्य के रूप में सुरक्षित है। भास्कराचार्य का योगदान काल और समय की भारतीय अवधारणा को एक वैज्ञानिक, गणितीय और दार्शनिक गहराई प्रदान करता है। उन्होंने दिखाया कि समय को समझना केवल घड़ियों का काम नहीं, बल्कि आकाश और पृथ्वी, गणित और अनुभव, परंपरा और नवाचार इन सबके संवाद से संभव होता है। उनकी यह दृष्टि आज भी उतनी ही अर्थवान है, क्योंकि आधुनिक विज्ञान भी समय को एक स्थिर इकाई नहीं, बल्कि सापेक्ष और गतिशील सत्ता के रूप में देखता है। इसी कारण भास्कराचार्य का काल-चिंतन भारतीय बौद्धिक इतिहास में एक उज्ज्वल शिखर की तरह आज भी आलोकित है।

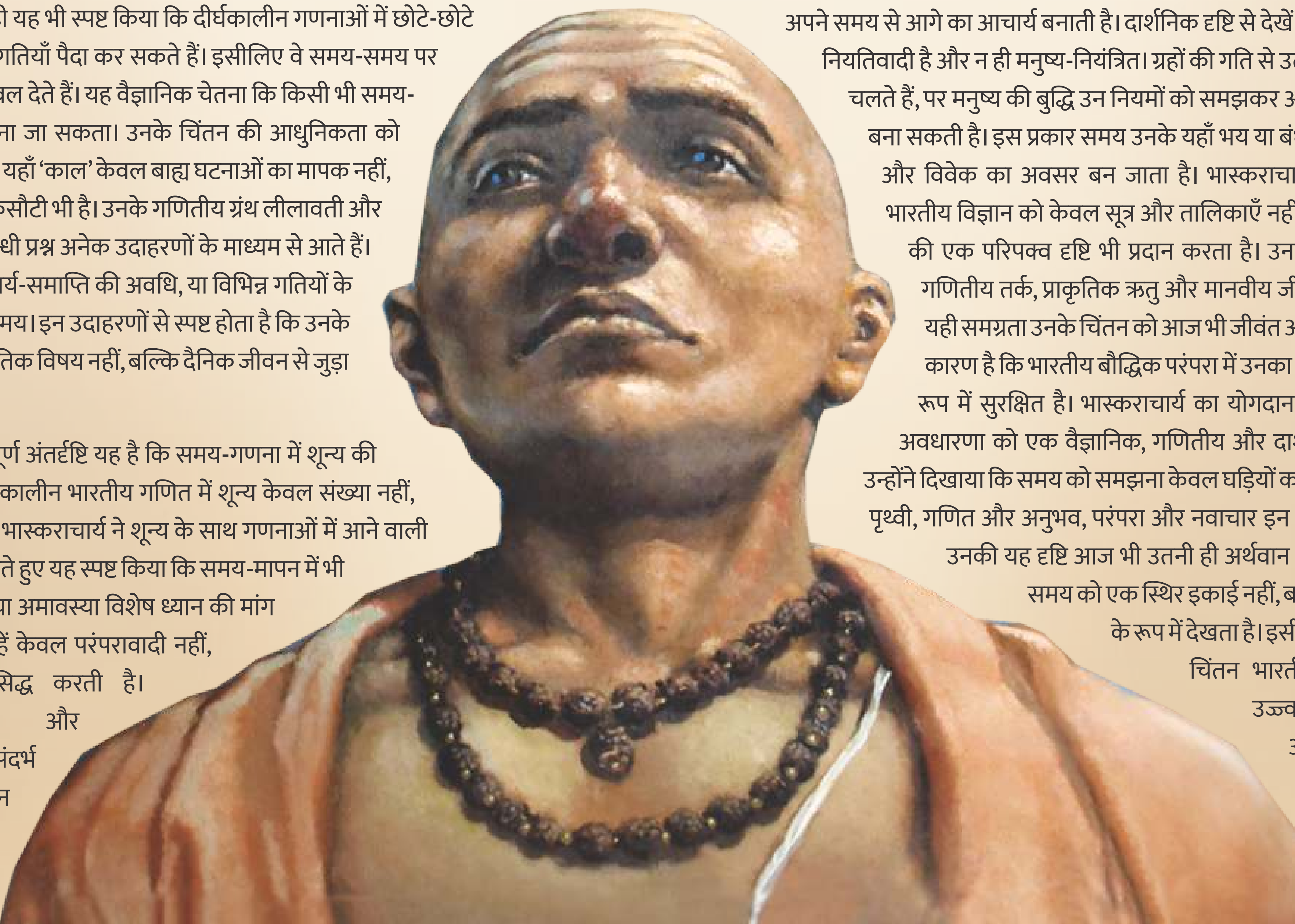

काल-दृष्टि और वैदिक समय-बोध

कालः कर्मफलो दाता कालः सर्वस्य कारणम्। काल एव जगत् सर्वं कालातीतं न किञ्चन॥ (योगवशिष्ठ)
“काल ही कर्मों के फल को देने वाला है, काल ही सबका कारण है। यह समस्त जगत काल के भीतर स्थित है; काल से परे कुछ भी नहीं है।”

वैदिक परंपरा में वशिष्ठ का नाम केवल एक ऋषि के रूप में नहीं, बल्कि ऐसे द्रष्टा के रूप में उभरता है जिन्होंने प्रकृति, काल और सूर्य की गति को एक ही बौद्धिक सूत्र में पिरोकर देखा। वशिष्ठ को वैदिक समाज में गुरु, मंत्रद्रष्टा और राजपुरोहित के रूप में तो स्मरण किया ही जाता है, पर उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण यह है कि उनके चिंतन में काल कोई अमूर्त दार्शनिक कल्पना नहीं, बल्कि सूर्य, ऋतु, दिवस और संवत्सर के नियमित क्रम से जुड़ा हुआ एक सजीव अनुभव है। वैदिक युग में काल-गणना किसी यांत्रिक घड़ी पर आधारित नहीं थी, बल्कि आकाश में चल रही खगोलीय लय का प्रत्यक्ष पाठ थी, और वशिष्ठ जैसे ऋषियों ने उसी लय को शब्द, मंत्र और परंपरा के माध्यम से समाज तक पहुँचाया। वेदों में काल का अनुभव मुख्यतः सूर्य की गति से जुड़ा है। सूर्य उदय और अस्त के माध्यम से दिवस और रात्रि का विभाजन करता है, उसकी उत्तरायण दक्षिणायण गति ऋतुओं का क्रम निर्धारित करती है और उसका वार्षिक परिभ्रमण संवत्सर की अवधारणा को जन्म देता है। वशिष्ठ के मंत्रों और उनसे संबद्ध वैदिक परंपरा में सूर्य को केवल प्रकाशदाता नहीं, बल्कि काल का नियंता माना गया है। सूर्य की किरणों के साथ समय बहता है। यह भाव वैदिक चेतना में गहरे पैठा हुआ है। इसीलिए वशिष्ठ के चिंतन में सूर्य और काल अलग-अलग विषय नहीं, बल्कि एक ही सच्चाई के दो रूप हैं।

वशिष्ठ से जुड़ी वैदिक ऋचाओं में प्रकृति के नियमित चक्रों का सूक्ष्म अवलोकन दिखाई देता है। ऋतु-परिवर्तन, वर्षा का आगमन, फसलों का पकना और शीत-उष्ण का क्रम ये सब केवल प्राकृतिक घटनाएँ नहीं, बल्कि काल की गति के संकेत हैं। वशिष्ठ इस गति को देवत्व से जोड़ते हैं, जिससे काल केवल गणितीय माप न रहकर धार्मिक और सांस्कृतिक अर्थ भी ग्रहण कर लेता है। यही कारण है कि वैदिक काल-गणना में यज्ञ, व्रत और अनुष्ठान निश्चित समयों पर ही संपन्न होते थे; समय की शुद्धता को ही कर्म की शुद्धता माना गया।

सूर्य की गति के संदर्भ में वशिष्ठ का ज्ञान अत्यंत व्यावहारिक था। वे यह समझते थे कि सूर्य की आकाशीय स्थिति बदलने के साथ दिन की लंबाई घटती-बढ़ती है, ऋतुएँ परिवर्तित होती हैं और मानव जीवन की गतिविधियाँ भी उसी के अनुसार ढलती हैं। उत्तरायण को प्रकाश और वृद्धि का समय माना गया, जबकि दक्षिणायण को संकोच और विश्राम का। यह वर्गीकरण केवल धार्मिक प्रतीक नहीं, बल्कि सूर्य के पथ के दीर्घकालिक निरीक्षण का परिणाम था। वशिष्ठ की परंपरा में यह ज्ञान गुरु-शिष्य परंपरा से पीढ़ी-दर-पीढ़ी संप्रेषित होता रहा। काल गणना के संदर्भ में वशिष्ठ की दृष्टि बहुस्तरीय थी। एक ओर वे अहोरात्र, पक्ष और मास जैसे लघु समय-खंडों को पहचानते हैं, तो दूसरी ओर संवत्सर और युग जैसी दीर्घ अवधारणाओं की ओर संकेत करते हैं। वैदिक समाज में महीनों का निर्धारण चंद्र-गति से होता था, पर सूर्य-वर्ष को सर्वोच्च मान्यता प्राप्त थी। वशिष्ठ के चिंतन में सूर्य और चंद्र का यह समन्वय दिखाई देता है, जो आगे चलकर भारतीय पंचांग परंपरा का आधार बना। यह समन्वय बताता है कि वशिष्ठ का खगोलीय ज्ञान केवल सैद्धांतिक नहीं, बल्कि पंचांग निर्माण जैसी व्यावहारिक आवश्यकताओं से भी जुड़ा था। वशिष्ठ के काल-बोध में समय रेखीय नहीं, चक्रीय है। सूर्य प्रतिदिन उदय होता है, प्रतिवर्ष वही पथ पुनः तय करता है, और युगों के चक्र में सृष्टि का विस्तार और संकोच होता रहता है। यह चक्रीय दृष्टि वैदिक जीवन-दर्शन की मूल आत्मा है। इसी कारण मृत्यु और जन्म को भी काल के इसी चक्र का अंग माना गया। सूर्य की निरंतर गति इस चक्र का प्रत्यक्ष प्रतीक बन जाती है। वशिष्ठ इस प्रतीक को केवल दार्शनिक रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक जीवन की संरचना में भी उतारते हैं। वैदिक युग में खगोल-ज्ञान आधुनिक अर्थों में गणितीय खगोलशास्त्र नहीं था, पर उसका अवलोकन अत्यंत सूक्ष्म और व्यवस्थित था। वशिष्ठ जैसे ऋषि आकाश को केवल देखकर नहीं, बल्कि लंबे समय तक परिवर्तनों को याद रखकर, उनकी तुलना करके निष्कर्ष निकालते थे। सूर्य के उत्तर दक्षिण विचलन, विषुव के आस-पास दिन-रात्रि की समानता, और संक्रांति के समय दिशा-परिवर्तन ये सभी तथ्य वैदिक परंपरा में सुरक्षित रहे। वशिष्ठ की भूमिका इसमें उस अनुभवी पर्यवेक्षक की थी, जिसने प्रकृति को बार-बार पढ़ा और उसे मंत्रों में रूपांतरित किया। वशिष्ठ के अनुसार काल का अनुभव सबसे पहले आकाश में घटित होता है। सूर्य की दैनिक, मासिक और वार्षिक गतियाँ मनुष्य को समय का बोध कराती हैं। यह बोध केवल “कितना समय बीता” का नहीं, बल्कि “किस समय क्या उचित है” का भी है। वशिष्ठ की परंपरा में समय का मूल्य उसकी उपयुक्तता से तय होता है। यज्ञ, अध्ययन, कृषि और विश्राम इन सबके लिए अलग-अलग काल निश्चित हैं। इस प्रकार समय नैतिक और सामाजिक अनुशासन का उपकरण बन जाता है। काल गणना का यह ज्ञान सामाजिक अनुशासन से भी जुड़ा था। कृषि, पशुपालन और यज्ञ तीनों सूर्य और ऋतु पर निर्भर थे। वशिष्ठ की परंपरा में यह स्पष्ट था कि यदि समय की पहचान में त्रुटि हुई, तो कर्मफल भी प्रभावित होगा। इसीलिए सूर्य की गति का सही ज्ञान आवश्यक माना गया। यही कारण है कि वशिष्ठ को केवल आध्यात्मिक गुरु नहीं, बल्कि काल-ज्ञाता भी कहा जा सकता है। वशिष्ठ की दृष्टि में सूर्य केवल बाह्य आकाशीय पिंड नहीं, बल्कि आंतरिक चेतना का भी प्रतीक है। जैसे सूर्य आकाश में गति करता है, वैसे ही चेतना काल के भीतर यात्रा करती है। यह सूक्ष्म दार्शनिक बोध वैदिक मंत्रों में निहित है। काल यहाँ बंधन नहीं, बल्कि व्यवस्था है ऐसी व्यवस्था जो सृष्टि को लय में रखती है। सूर्य इस लय का दृश्य रूप है। इस प्रकार वशिष्ठ का खगोलीय ज्ञान आध्यात्मिक अनुभूति से अलग नहीं, बल्कि उसी का विस्तार है। आधुनिक दृष्टि से देखने पर वशिष्ठ का काल-ज्ञान आदिम खगोलशास्त्र का उदाहरण प्रतीत हो सकता है, पर वास्तव में यह दीर्घकालिक प्रेक्षण और सांस्कृतिक स्मृति का परिणाम था। बिना किसी उपकरण के सूर्य की गति को समझना, उसे काल-खंडों में विभाजित करना और समाज की दिनचर्या से जोड़ना यह कार्य सहज नहीं था। वशिष्ठ की परंपरा ने यह कर दिखाया। आगे चलकर यही बीज भारतीय ज्योतिष और खगोलशास्त्र के विकसित रूपों में फले-फूले, जहाँ गणना अधिक सूक्ष्म और सूत्रबद्ध हो गई।

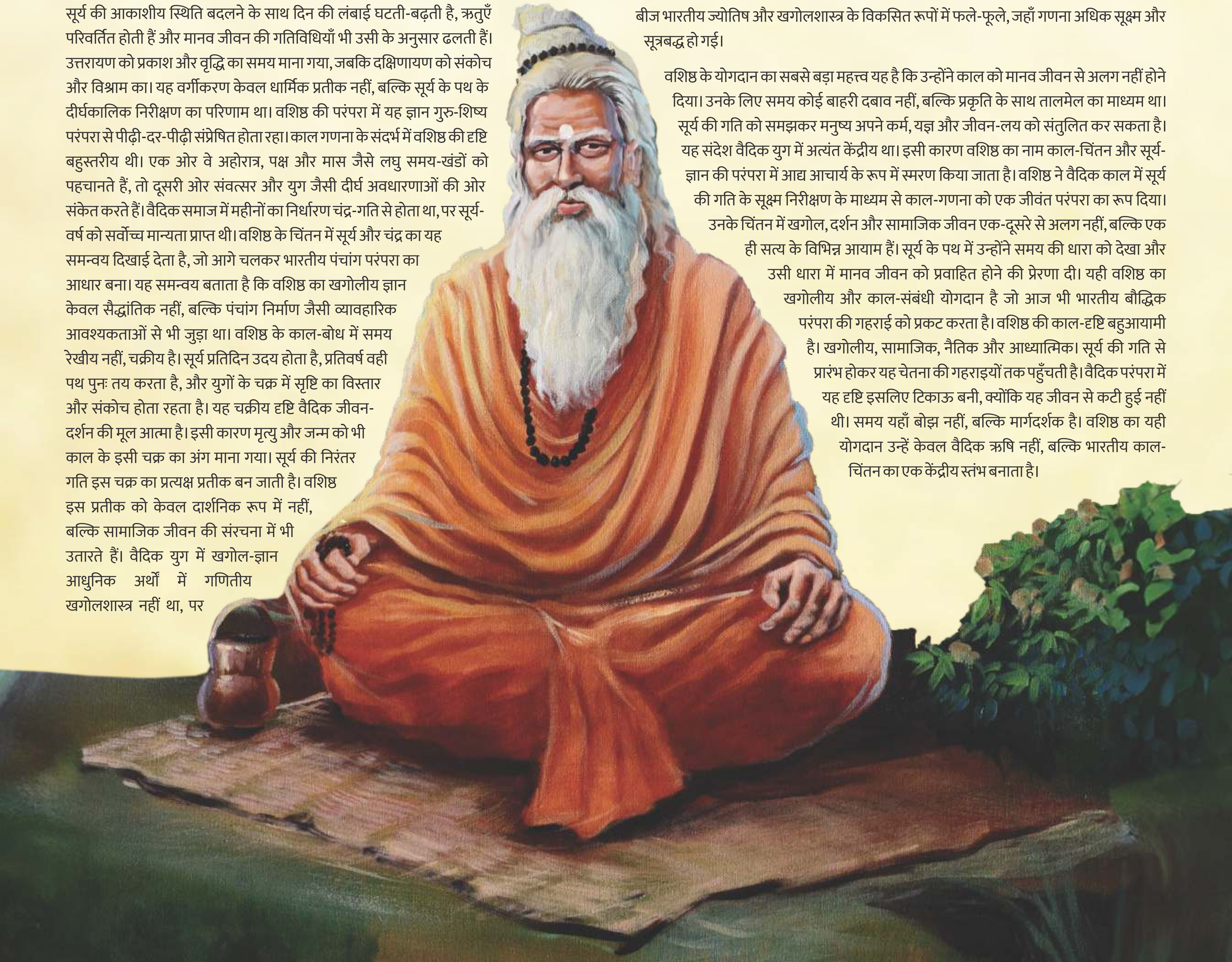

वशिष्ठ के योगदान का सबसे बड़ा महत्त्व यह है कि उन्होंने काल को मानव जीवन से अलग नहीं होने दिया। उनके लिए समय कोई बाहरी दबाव नहीं, बल्कि प्रकृति के साथ तालमेल का माध्यम था। सूर्य की गति को समझकर मनुष्य अपने कर्म, यज्ञ और जीवन-लय को संतुलित कर सकता है। यह संदेश वैदिक युग में अत्यंत केंद्रीय था। इसी कारण वशिष्ठ का नाम काल-चिंतन और सूर्य-ज्ञान की परंपरा में आद्य आचार्य के रूप में स्मरण किया जाता है। वशिष्ठ ने वैदिक काल में सूर्य की गति के सूक्ष्म निरीक्षण के माध्यम से काल-गणना को एक जीवंत परंपरा का रूप दिया। उनके चिंतन में खगोल, दर्शन और सामाजिक जीवन एक-दूसरे से अलग नहीं, बल्कि एक ही सत्य के विभिन्न आयाम हैं। सूर्य के पथ में उन्होंने समय की धारा को देखा और उसी धारा में मानव जीवन को प्रवाहित होने की प्रेरणा दी। यही वशिष्ठ का खगोलीय और काल-संबंधी योगदान है जो आज भी भारतीय बौद्धिक परंपरा की गहराई को प्रकट करता है। वशिष्ठ की काल-दृष्टि बहुआयामी है। खगोलीय, सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक। सूर्य की गति से प्रारंभ होकर यह चेतना की गहराइयों तक पहुँचती है। वैदिक परंपरा में यह दृष्टि इसलिए टिकाऊ बनी, क्योंकि यह जीवन से कटी हुई नहीं थी। समय यहाँ बोझ नहीं, बल्कि मार्गदर्शक है। वशिष्ठ का यही योगदान उन्हें केवल वैदिक ऋषि नहीं, बल्कि भारतीय काल-चिंतन का एक केंद्रीय स्तंभ बनाता है।

खगोल-द्रष्टा और संस्कृति सेतु

अगस्त्यो भगवान् ऋषिः दक्षिणापथसंश्रयः। वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञः ब्रह्मविद्याविशारदः।।

“अगस्त्य ऐसे महान ऋषि हैं जिनका आश्रय दक्षिण दिशा में है। वे वेदों और वेदांगों के तत्त्वों के पूर्ण ज्ञाता हैं और ब्रह्मविद्या तथा उच्च ज्ञान में पूर्णतः निष्णात हैं।”

भारतीय बौद्धिक परंपरा में काल केवल समय की गणना नहीं, बल्कि ब्रह्मांड, प्रकृति और मानव जीवन के बीच सामंजस्य का सूक्ष्म विज्ञान है। यहाँ समय को न तो मात्र रेखीय प्रवाह के रूप में देखा गया और न ही केवल संख्यात्मक इकाइयों में बाँधा गया, बल्कि उसे अनुभव, निरीक्षण और नियमबद्ध चक्रों के माध्यम से समझने का प्रयास किया गया। इसी व्यापक दृष्टि के भीतर काल गणना की जो परंपरा विकसित हुई, उसमें अगस्त्य ऋषि का योगदान विशेष रूप से महत्वपूर्ण माना जाता है। अगस्त्य ऋषि को वैदिक ऋषि, खगोल-द्रष्टा और सांस्कृतिक सेतु इन तीनों रूपों में देखा जा सकता है। वैदिक युग में मानव जीवन प्रकृति पर अत्यधिक निर्भर था। कृषि, पशुपालन, अनुष्ठान, यात्राएँ और सामाजिक गतिविधियाँ सभी का समय निर्धारण सूर्य, चंद्रमा और नक्षत्रों की गति पर आधारित था। इस कालखंड में समय का ज्ञान केवल सुविधा के लिए नहीं, बल्कि जीवन-संरक्षण के लिए आवश्यक था। ऋषियों ने आकाशीय घटनाओं का दीर्घकालिक निरीक्षण किया और यह समझा कि प्रकृति अराजक नहीं, बल्कि नियमों से संचालित है। इन्हीं नियमों की पहचान से काल गणना की आधारशिला रखी गई। अगस्त्य ऋषि इसी परंपरा के ऐसे प्रतिनिधि हैं, जिन्होंने आकाश और पृथ्वी के संबंध को व्यावहारिक जीवन से जोड़ा।

अगस्त्य ऋषि का नाम विशेष रूप से एक तारे से जुड़ता है, जिसे भारतीय परंपरा में अगस्त्य तारा कहा गया। इस तारे का आकाश में निश्चित समय पर प्रकट होना और पुनः अदृश्य होना केवल खगोलीय घटना नहीं था, बल्कि ऋतु परिवर्तन और वार्षिक चक्र का सूचक माना गया। यह तारा विशेष रूप से दक्षिण दिशा में दिखाई देता है, इसलिए इसका महत्व दक्षिण भारत में अधिक रहा। समुद्री यात्राओं, वर्षा-पूर्व अनुमान और कृषि कार्यों के निर्धारण में इस तारे की स्थिति को संकेतक के रूप में प्रयोग किया गया। इससे स्पष्ट होता है कि अगस्त्य से जुड़ी खगोल-परंपरा केवल सैद्धांतिक नहीं, बल्कि पूर्णतः व्यवहारिक थी।भारतीय काल गणना की एक मूलभूत विशेषता उसका चक्रीय स्वरूप है। समय को यहाँ निरंतर आगे बढ़ने वाली रेखा के रूप में नहीं, बल्कि आवर्तनशील चक्र के रूप में समझा गया। दिन और रात्रि, शुक्ल और कृष्ण पक्ष, ऋतुएँ, संवत्सर और युग सभी एक निश्चित क्रम में लौटते हैं। अगस्त्य ऋषि की परंपरा में यह चक्रीय दृष्टि स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। दक्षिण भारत में ऋतु-चक्र, विशेष रूप से मानसून, जीवन का आधार है। वर्षा का समय, फसल बोने और काटने का काल तथा धार्मिक अनुष्ठानों की तिथियाँ सभी का निर्धारण इसी चक्रीय काल-बोध से होता है। परंपरा के अनुसार, अगस्त्य ऋषि ने उत्तर भारत की वैदिक ज्ञान-परंपरा को दक्षिण भारत तक पहुँचाया। यह स्थानांतरण केवल भौगोलिक नहीं, बल्कि वैचारिक भी था। उत्तर भारत में विकसित वैदिक काल गणना जब दक्षिण की भौगोलिक परिस्थितियों से जुड़ी, तो उसमें नए व्यावहारिक आयाम जुड़े। समुद्र, पर्वत, वर्षा और उष्ण जलवायु इन सबने काल निर्धारण की पद्धतियों को और अधिक परिष्कृत किया। इस प्रकार अगस्त्य को केवल ऋषि नहीं, बल्कि काल-ज्ञान के संवाहक के रूप में देखा जाता है।

अगस्त्य से जुड़े पौराणिक आख्यान भी काल-बोध की गहराई को संकेतात्मक रूप से व्यक्त करते हैं। समुद्र का जल पी लेने की कथा को यदि प्रतीकात्मक रूप में देखें, तो यह प्रकृति की अनियंत्रित शक्तियों को समझकर उन्हें संतुलित करने का प्रयास प्रतीत होता है। इसी प्रकार विंध्य पर्वत को रोकने का प्रसंग यह दर्शाता है कि प्रकृति की असंतुलित प्रवृत्तियों को नियम में बाँधना ही ऋषि का उद्देश्य था। काल गणना भी इसी संतुलन की खोज का एक वैज्ञानिक रूप है जहाँ अनियमित प्रतीत होने वाली घटनाओं में क्रम और पूर्वानुमेयता खोजी जाती है। भारतीय पंचांग प्रणाली काल गणना का एक परिपक्व रूप है। इसके पाँच अंग तिथि, वार, नक्षत्र, योग और करण समय को विभिन्न स्तरों पर विभाजित करते हैं। इनमें नक्षत्र का विशेष महत्व है, क्योंकि वे आकाशीय स्थिरता का प्रतीक हैं। अगस्त्य परंपरा नक्षत्रीय निरीक्षण को केंद्र में रखती है। नक्षत्रों की नियमित गति से न केवल मास और ऋतु का ज्ञान होता है, बल्कि दीर्घकालिक समय-चक्र की भी समझ विकसित होती है। अगस्त्य तारा इसी स्थिरता का एक उदाहरण है, जो हर वर्ष लगभग एक ही काल में दिखाई देता है। दार्शनिक दृष्टि से अगस्त्य ऋषि का काल-बोध वैदिक ऋत की अवधारणा से जुड़ा हुआ है। ऋत वह सार्वभौमिक नियम है, जिसके अंतर्गत सूर्य उदित होता है, ऋतुएँ बदलती हैं और जीवन का क्रम चलता है। काल इस ऋत का अनुभवजन्य रूप है। समय का सही ज्ञान मनुष्य को प्रकृति के साथ सामंजस्य में रखता है, जबकि गलत काल-बोध जीवन में असंतुलन उत्पन्न करता है। इसीलिए भारतीय परंपरा में शुभ-अशुभ काल, मुहूर्त और तिथि का इतना महत्व है। अगस्त्य ऋषि का योगदान यह भी दर्शाता है कि भारतीय काल गणना केवल पुरोहितीय या धार्मिक व्यवस्था तक सीमित नहीं थी। इसका उपयोग सामाजिक, आर्थिक और वैज्ञानिक क्षेत्रों में भी हुआ। कृषि-आधारित समाज में सही समय पर बुआई और कटाई जीवन और मृत्यु का प्रश्न हो सकता था। समुद्री यात्राओं में तारा-आधारित काल ज्ञान दिशा और सुरक्षा का आधार था। अनुष्ठानों में सही तिथि का चयन सामाजिक व्यवस्था को स्थिर रखता था। इन सभी क्षेत्रों में अगस्त्य परंपरा का अप्रत्यक्ष प्रभाव दिखाई देता है।

खगोलशास्त्रीय दृष्टि से देखें तो अगस्त्य परंपरा प्रेक्षण और स्मृति पर आधारित थी। यंत्रों और आधुनिक गणनाओं के अभाव में ऋषियों ने दीर्घकालिक निरीक्षण से निष्कर्ष निकाले। पीढ़ी दर पीढ़ी संचित यह ज्ञान काल गणना की विश्वसनीयता का आधार बना। यह प्रक्रिया आधुनिक विज्ञान की उस पद्धति से मेल खाती है, जिसमें निरंतर अवलोकन और परीक्षण से सिद्धांत विकसित किए जाते हैं। अगस्त्य ऋषि को भारतीय ज्ञान-परंपरा में एक सेतु के रूप में देखा जा सकता है। जहाँ वैदिक दर्शन, खगोल निरीक्षण और सामाजिक व्यवहार एक-दूसरे से जुड़ते हैं। उनका काल-बोध यह सिखाता है कि समय को समझना केवल गणना का विषय नहीं, बल्कि जीवन को प्रकृति के साथ संतुलित करने का माध्यम है। यही कारण है कि अगस्त्य की परंपरा केवल अतीत की स्मृति नहीं, बल्कि आज भी पंचांग,व उत्सव के रूप में जीवित है। दक्षिण भारत की बौद्धिक और सांस्कृतिक परंपरा में अगस्त्य ऋषि का स्थान केवल एक वैदिक ऋषि का नहीं, बल्कि काल-बोध के व्यवहारिक प्रवर्तक का माना जाता है। उत्तर भारत में विकसित वैदिक समय-परंपरा जब दक्षिण की भिन्न भौगोलिक, जलवायु और सामाजिक परिस्थितियों से जुड़ी, तो उसमें जिन परिवर्तनों और विशेष प्रयोगों का समावेश हुआ, उनका श्रेय अगस्त्य परंपरा को दिया जाता है। यहाँ काल गणना किसी दार्शनिक विमर्श तक सीमित न रहकर जीवन-व्यवस्था का प्रत्यक्ष उपकरण बन गई। दक्षिण भारत में प्रकृति का सबसे प्रभावशाली तत्व मानसून है। वर्षा का आगमन, उसकी तीव्रता और अवधि यही कृषि, जल-संग्रह और जनजीवन की दिशा तय करते हैं। अगस्त्य से जुड़ी परंपरा में काल गणना का प्रमुख उद्देश्य ऋतु-परिवर्तन की सटीक पहचान था। दक्षिण दिशा में आकाशीय घटनाओं का निरीक्षण कर वर्षा-पूर्व संकेतों को समझना एक विशेष विद्या के रूप में विकसित हुआ। इस संदर्भ में अगस्त्य तारे का उदय और अस्त होना केवल खगोलीय जिज्ञासा नहीं, बल्कि वर्षा-चक्र के संकेतक के रूप में देखा गया।

दक्षिण भारतीय समाज में समुद्र का महत्व अत्यधिक रहा है। व्यापार, मत्स्य-जीवन और दूरस्थ यात्राएँ समुद्र पर निर्भर थीं। यहाँ काल गणना का एक महत्वपूर्ण पक्ष समुद्री समय-बोध था। किस काल में यात्रा सुरक्षित है और किस समय समुद्र उग्र रहता है। अगस्त्य परंपरा में आकाशीय संकेतों से इन कालखंडों की पहचान की जाती थी। तारा-आधारित दिशा-ज्ञान और समय-निर्धारण ने दक्षिण भारत को समुद्री सभ्यता के रूप में सुदृढ़ किया। अगस्त्य को दक्षिण भारतीय परंपरा में संस्कृति-स्थापक भी माना जाता है। कहा जाता है कि उन्होंने वैदिक ज्ञान को स्थानीय भाषाओं और परंपराओं के अनुरूप ढाला। इसी प्रक्रिया में काल गणना भी स्थानीय जीवन के अनुसार ढली। उत्तर भारत की अपेक्षा दक्षिण में सूर्य की गति और ऋतुओं का अनुभव भिन्न था। यहाँ दिन-रात्रि की अवधि, वर्षा का समय और कृषि-चक्र अलग रूप में प्रकट होते हैं। अगस्त्य परंपरा ने इन भिन्नताओं को स्वीकार कर काल-निर्धारण को लचीला और व्यावहारिक बनाया। दक्षिण भारत के उत्सव और अनुष्ठान भी इस काल-बोध को प्रतिबिंबित करते हैं। पर्व केवल धार्मिक तिथि नहीं, बल्कि ऋतु और कृषि-चक्र से जुड़े होते हैं। बीज बोने, फसल काटने और वर्षा के स्वागत से जुड़े अनुष्ठानों में काल की सटीक पहचान अनिवार्य थी। अगस्त्य परंपरा में नक्षत्र और ऋतु के मेल से इन कालखंडों को निर्धारित किया गया, जिससे सामाजिक जीवन में स्थिरता बनी रही। अगस्त्य से जुड़े पौराणिक प्रसंगों को दक्षिण भारत में विशेष अर्थ के साथ देखा गया। समुद्र और पर्वत से संबंधित कथाएँ यहाँ प्रकृति के प्रत्यक्ष अनुभव से जुड़ जाती हैं।

ये कथाएँ संकेत देती हैं कि काल गणना केवल आकाश की ओर देखने से नहीं, बल्कि पृथ्वी के व्यवहार को समझने से भी विकसित हुई। दक्षिण भारत में पर्वत, नदियाँ और समुद्र तीनों का समन्वय काल-बोध का आधार बना। काल गणना के संदर्भ में अगस्त्य परंपरा की एक विशेषता यह है कि वह दीर्घकालिक स्मृति पर आधारित थी। पीढ़ियों तक एकत्रित अनुभवों से यह समझ विकसित हुई कि कौन-सा संकेत किस परिवर्तन की सूचना देता है। यह ज्ञान ग्रंथों के साथ-साथ परंपरा और व्यवहार में भी संचित रहा। इसी कारण दक्षिण भारत में पंचांग केवल विद्वानों का विषय नहीं, बल्कि सामान्य जनजीवन का हिस्सा बना। दक्षिण भारत में अगस्त्य ऋषि का काल गणना संबंधी योगदान एक स्थानीय-वैश्विक समन्वय का उदाहरण है। उन्होंने वैदिक काल-बोध को दक्षिण की भौगोलिक सच्चाइयों से जोड़कर उसे अधिक उपयोगी और जीवनोपयोगी बनाया। उनका कार्य यह दर्शाता है कि भारतीय समय-परंपरा एकरूप नहीं, बल्कि स्थान और प्रकृति के अनुसार विकसित होने वाली जीवंत प्रणाली थी। काल गणना और अगस्त्य ऋषि का संबंध भारतीय बौद्धिक इतिहास में एक गहन और बहुआयामी विषय है। यह संबंध यह स्पष्ट करता है कि प्राचीन भारत में समय का अध्ययन न तो केवल दर्शन था और न ही केवल विज्ञान, बल्कि दोनों का समन्वित रूप था। अगस्त्य ऋषि की परंपरा हमें यह समझने में सहायता करती है कि काल का ज्ञान अंततः मानव और प्रकृति के बीच सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास है। एक ऐसा प्रयास जो आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना सहस्राब्दियों पहले था।

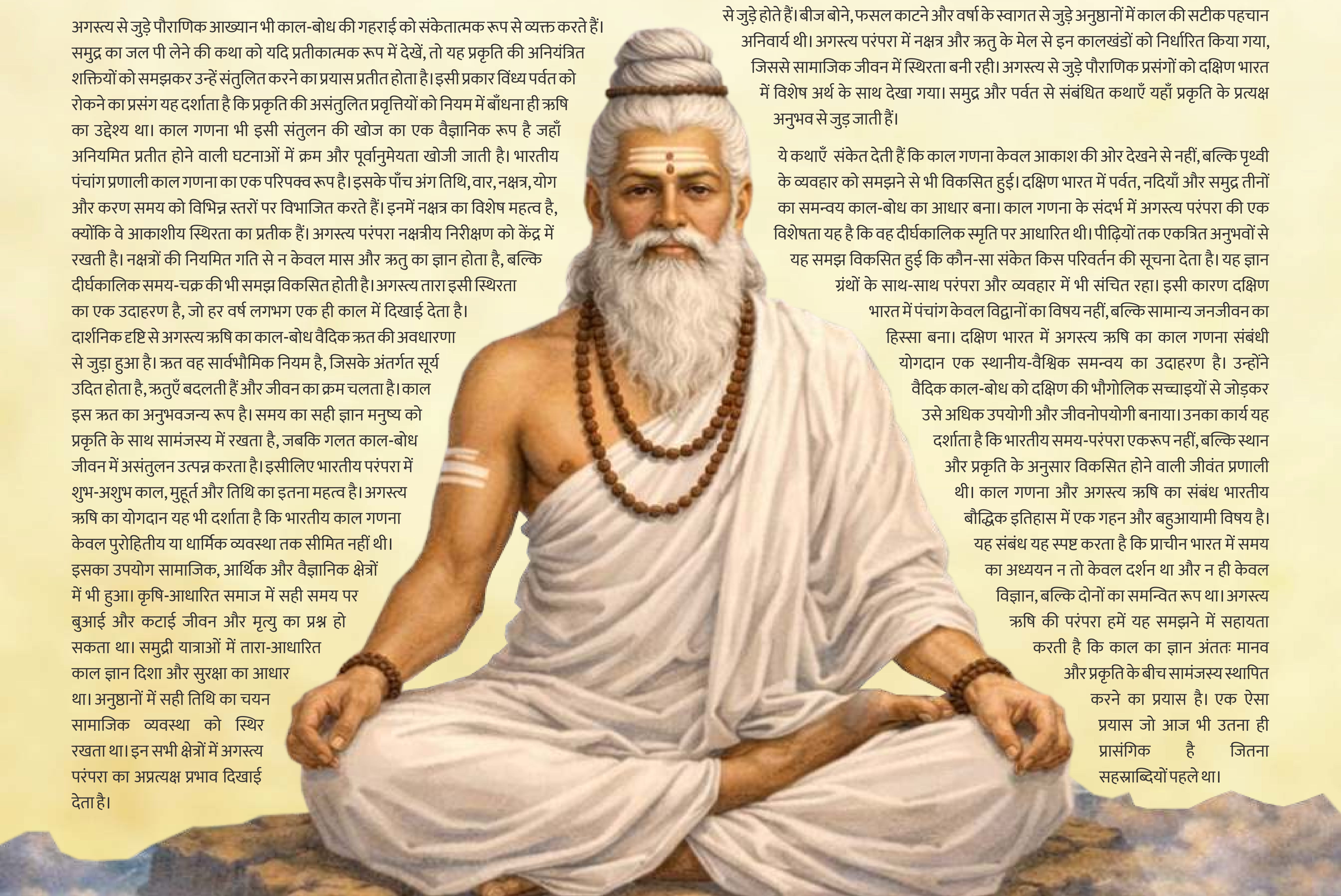

प्राचीन सनातन साहित्य से प्रेरणा

अल-फ़ज़ारी: (8वीं सदी ईस्वी, इराक़)

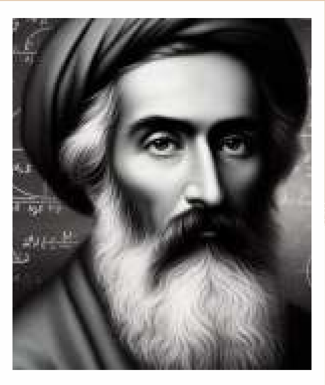

अल-फ़ज़ारी का नाम इस्लामी खगोल-विज्ञान के इतिहास में एक निर्णायक मोड़ का प्रतीक है। वे उन प्रारंभिक मुस्लिम खगोलविदों में अग्रगण्य माने जाते हैं जिन्होंने भारतीय खगोलिक परंपरा को केवल सुना या उद्धृत ही नहीं किया, बल्कि उसे प्रत्यक्ष रूप से अपनाया, समझा और अरबी वैज्ञानिक ढाँचे में रूपांतरित किया। यह वही समय था जब बग़दाद ज्ञान-विनिमय का केंद्र बन रहा था और विभिन्न सभ्यताओं भारतीय, ईरानी, यूनानी के विद्वान एक साझा वैज्ञानिक भाषा की तलाश में एकत्र हो रहे थे। अल-फ़ज़ारी की सक्रियता का काल खलीफ़ा अल-मंसूर के शासन से जुड़ा है। अल-मंसूर ने राज्य-संरक्षण में विद्या को प्रोत्साहन दिया और दूर-दूर से विद्वानों को आमंत्रित किया। इसी क्रम में भारत से पंडितों और खगोलज्ञों को बग़दाद बुलाया गया। उनके साथ आए संस्कृत खगोल ग्रंथ, विशेषतः सिद्धांत परंपरा के ग्रंथ, दरबार के विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत किए गए। अल-फ़ज़ारी ने इन ग्रंथों की विषय-वस्तु को समझने, उनकी वैज्ञानिक भाषा को ग्रहण करने और अरबी अनुवाद की प्रक्रिया का नेतृत्व करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। यह कार्य मात्र भाषांतरण नहीं था; यह एक वैज्ञानिक संवाद था, जिसमें भारतीय गणनात्मक परंपराओं को इस्लामी खगोल की आवश्यकताओं के अनुरूप ढाला गया। भारतीय सिद्धांत परंपरा का मूल स्वर गणितीय सटीकता और काल गणना है। अल-फ़ज़ारी इसी विशेषता से सर्वाधिक प्रभावित दिखाई देते हैं। भारतीय खगोल में काल को दिन, तिथि, पक्ष, मास, ऋतु, अयन और संवत्सर के सूक्ष्म विभाजनों के माध्यम से समझा जाता है। सूर्य और चंद्र की गति के आधार पर तिथि-निर्धारण, नक्षत्र-आधारित गणनाएँ और दीर्घकालीन चक्रों की संकल्पना ये सभी बातें अल-फ़ज़ारी के कार्य में स्पष्ट झलकती हैं। उन्होंने भारतीय पद्धति से प्रेरित होकर सूर्य और चंद्र ग्रहण की गणना के सूत्रों को व्यवस्थित किया। ग्रहण की तिथियाँ, अवधि, आरंभ समाप्ति और दृश्यता से संबंधित गणनाएँ उस समय के लिए अत्यंत उन्नत थीं और इनमें भारतीय ज्योतिष-खगोल की गणितीय परंपरा की छाप स्पष्ट दिखती है। इसी के साथ अल-फ़ज़ारी ने ग्रहों की सारणियाँ (ज़ीज़) तैयार कीं। ये सारणियाँ ग्रहों की दीर्घांश–अक्षांश स्थिति, उनकी औसत और वास्तविक गति तथा काल-निर्धारण के नियमों को संहिताबद्ध करती थीं। भारतीय परंपरा में प्रचलित सूर्य-सिद्धांतात्मक गणनाएँ जैसे औसत गति से वास्तविक स्थिति निकालना अल-फ़ज़ारी की ज़ीज़ में रूपांतरित रूप में दिखाई देती हैं। इन सारणियों का व्यावहारिक उपयोग केवल विद्वानों तक सीमित नहीं था; वे कैलेंडर-निर्माण, धार्मिक समय-निर्धारण और खगोलीय अवलोकन में व्यापक रूप से प्रयुक्त हुईं। इस प्रकार भारतीय गणना पद्धति इस्लामी समाज के दैनिक जीवन और धार्मिक-अनुष्ठानों के समय-निर्धारण में भी समाहित हो गई। अल-फ़ज़ारी के कार्यों का एक और महत्त्वपूर्ण पक्ष उपकरणों और प्रेक्षण-पद्धति से जुड़ा है। भारतीय खगोल में गणना के साथ-साथ प्रेक्षण का संतुलन पाया जाता है। इस दृष्टि से, अल-फ़ज़ारी ने खगोलीय गणनाओं को प्रेक्षण-संगत बनाने पर बल दिया। यद्यपि इस काल के उपकरण अपेक्षाकृत सरल थे, फिर भी गणना प्रेक्षण के सामंजस्य ने आगे चलकर इस्लामी खगोल में वेधशाला परंपरा को जन्म देने में भूमिका निभाई। अल-फ़ज़ारी का प्रभाव उनके जीवनकाल से आगे भी दूर तक गया। उनके द्वारा तैयार की गई भारतीय-आधारित खगोल परंपरा ने बाद के महान खगोलविदों के लिए आधारभूमि बनाई। विशेष रूप से अल-ख्वारिज़्मी की ज़ीज़ अल-सिंधहिंद उसी परंपरा की विकसित कड़ी मानी जाती है। अल-ख्वारिज़्मी ने दशमलव गणना, शून्य की अवधारणा और त्रिकोणमितीय सारणियों को आगे बढ़ाया। ये सभी तत्व भारतीय खगोल-गणित से प्रेरित थे, जिनका प्रथम व्यवस्थित प्रवेश अल-फ़ज़ारी के माध्यम से ही संभव हुआ। यदि व्यापक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखा जाए, तो अल-फ़ज़ारी का योगदान सभ्यताओं के बीच ज्ञान-संक्रमण का आदर्श उदाहरण है। उन्होंने न तो भारतीय परंपरा को अपरिवर्तित रूप में स्वीकार किया और न ही उसे नकारा; बल्कि उसे समझकर, तर्कसंगत रूप से परखा और इस्लामी वैज्ञानिक परंपरा के अनुरूप ढाल दिया। यही कारण है कि उनके कार्यों ने आगे चलकर यूरोप तक पहुँचने वाली खगोलीय धारा को भी अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित किया, क्योंकि अरबी ग्रंथों के माध्यम से ही भारतीय खगोल का एक परिष्कृत रूप लैटिन जगत में पहुँचा। इस प्रकार अल-फ़ज़ारी को भारतीय खगोल और इस्लामी खगोल के प्रथम संगठित संवाहक के रूप में देखा जा सकता है। उनका कार्य यह सिद्ध करता है कि विज्ञान की प्रगति किसी एक सभ्यता की बपौती नहीं होती, बल्कि संवाद, स्वीकार और रूपांतरण से आगे बढ़ती है। भारतीय काल-गणना, ग्रह-गति और गणितीय सूत्रों से प्रेरित होकर अल-फ़ज़ारी ने जिस परंपरा की नींव रखी, वही आगे चलकर इस्लामी खगोल-विज्ञान की पहचान बनी और विश्व-विज्ञान के इतिहास में स्थायी स्थान प्राप्त कर गई।

अल-फ़ज़ारी के कार्यों का प्रभाव केवल ग्रंथों और सारणियों तक सीमित नहीं रहा, बल्कि उसने इस्लामी खगोल-विज्ञान की वैचारिक दिशा भी निर्धारित की। भारतीय परंपरा से प्रेरित होकर उन्होंने यह स्पष्ट किया कि खगोल-विज्ञान केवल दार्शनिक कल्पना नहीं, बल्कि गणना, प्रेक्षण और काल-निर्धारण का सुव्यवस्थित विज्ञान है। यही दृष्टि आगे चलकर अब्बासी काल की विद्वत् संस्कृति की पहचान बनी। भारतीय खगोल में काल को एक चक्रीय और गणनात्मक सत्ता के रूप में देखा जाता है। युग, संवत्सर, अयन और मास के माध्यम से। अल-फ़ज़ारी ने इसी दृष्टिकोण को अपनाते हुए खगोलीय गणनाओं को दीर्घकालिक चक्रों से जोड़ा। इससे ग्रहों की गति को केवल तात्कालिक नहीं, बल्कि दीर्घकालिक समय-क्रम में समझने की परंपरा विकसित हुई। यह विशेषता बाद के इस्लामी खगोलविदों के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुई। उनके द्वारा स्थापित भारतीय-आधारित पद्धति ने यह भी सिद्ध किया कि ज्ञान का प्रवाह एक दिशा में नहीं होता। बहुत सारे प्राचीन इतिहासकार मानते हैं कि भारत से आया खगोलिक ज्ञान बग़दाद और फिर वहीं से आगे मध्य एशिया तथा यूरोप की ओर प्रवाहित हुआ।

काल चिंतन पर केप्लर का खगोल दृष्टिकोण

योहान्स केप्लर (1571 ईस्वी, जर्मनी)

योहान्स केप्लर का नाम यूरोपीय खगोल इतिहास में केवल ग्रहों की गति के नियमों तक सीमित नहीं है। वे ऐसे विचारक थे जिन्होंने आकाशीय संरचना, समय की दीर्घता और ग्रहगति की नियमितता को एक समग्र ब्रह्मांडीय व्यवस्था के रूप में समझने का प्रयास किया। उनका चिंतन उस काल में विकसित हुआ जब यूरोप खगोल विद्या के क्षेत्र में गणितीय अनुशासन की ओर बढ़ रहा था, किंतु समय और काल-गणना की दार्शनिक गहराई अभी भी सीमित थी। इसी संदर्भ में केप्लर की दृष्टि भारतीय सनातन खगोल परंपरा से आश्चर्यजनक रूप से साम्य रखती है, यद्यपि यह साम्य प्रत्यक्ष उद्धरणों के रूप में नहीं, बल्कि अवधारणात्मक और संरचनात्मक स्तर पर दिखाई देता है।

केप्लर का जन्म जर्मनी में हुआ और उनका जीवन संघर्ष, रोग तथा आर्थिक कठिनाइयों से भरा रहा। इसके बावजूद उन्होंने आकाशीय पिंडों की गति को केवल दृष्टिगत घटनाओं के रूप में नहीं देखा, बल्कि उन्हें दीर्घकालिक नियमों से जोड़ने का साहसिक प्रयास किया। उनके लिए ग्रह केवल घूमते हुए पिंड नहीं थे, बल्कि एक सुव्यवस्थित ब्रह्मांडीय लय के वाहक थे। यह दृष्टि भारतीय सनातन खगोल परंपरा से मेल खाती है, जहाँ ग्रहों की गति को ऋतु, संवत्सर, युग और महायुग जैसी दीर्घकालिक अवधारणाओं से जोड़ा गया है।

केप्लर का सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान यह है कि उन्होंने ग्रहों की गति को चक्रात्मक न मानकर दीर्घकालिक नियमों के अधीन बताया। किंतु यहाँ यह ध्यान देना आवश्यक है कि चक्रात्मकता का त्याग भारतीय दृष्टि से विरोध नहीं है। भारतीय पंचांग परंपरा में भी ग्रहों की गति को चक्र के भीतर परिवर्तनशील माना गया है। ग्रहों के भ्रमण में समानता के साथ-साथ सूक्ष्म असमानताएँ स्वीकार की गई हैं, जिन्हें अयन, भोगांश और ग्रहगति के संशोधन के रूप में समझा गया है। केप्लर ने भी इसी प्रकार यह स्वीकार किया कि ग्रहों की गति पूर्ण वृत्त नहीं, बल्कि एक व्यवस्थित किंतु परिवर्तनशील मार्ग पर चलती है। यह विचार भारतीय खगोल परंपरा की सूक्ष्म गणनात्मक चेतना से साम्य रखता है। भारतीय सनातन पंचांग में समय केवल तिथि और मास तक सीमित नहीं रहता। उसमें ग्रहों की स्थिति, नक्षत्र, अयन और संवत्सर का समन्वय होता है। यह समन्वय दीर्घकालिक गणनाओं पर आधारित है, जिसमें ग्रहों की गति को अनेक वर्षों और युगों के संदर्भ में देखा जाता है। केप्लर ने भी ग्रहों की गति को अल्पकालिक प्रेक्षण से परे जाकर समझने का प्रयास किया। उन्होंने यह स्वीकार किया कि वास्तविक नियम तभी प्रकट होते हैं जब ग्रहों की गति को लंबे कालखंड में देखा जाए। यह दृष्टि भारतीय काल-गणना की उस परंपरा से मेल खाती है जिसमें समय को लघु नहीं, बल्कि दीर्घ दृष्टि से समझा जाता है। केप्लर के चिंतन में कलमण्डल की अवधारणा विशेष रूप से उल्लेखनीय है। आकाश को उन्होंने केवल बिखरे हुए तारों का समूह नहीं माना, बल्कि एक सुव्यवस्थित मंडल के रूप में देखा, जिसमें ग्रह, सूर्य और नक्षत्र एक निश्चित क्रम में स्थित हैं। भारतीय खगोल परंपरा में भी कलमण्डल या खगोलीय मंडल की अवधारणा अत्यंत प्राचीन है। नक्षत्र-मंडल, राशि-मंडल और ग्रह-मंडल के माध्यम से आकाश को एक संरचित व्यवस्था के रूप में समझा गया है। केप्लर का यह विचार कि ग्रहों की गति किसी आंतरिक ब्रह्मांडीय नियम के अधीन है, भारतीय मनीषियों की उस धारणा से साम्य रखता है, जिसमें ब्रह्मांड को ऋत और धर्म के नियमों से संचालित माना गया है। यह भी ध्यान देने योग्य है कि केप्लर का चिंतन पूर्णतः यांत्रिक नहीं था। उन्होंने ग्रहों की गति में एक प्रकार की जीवंतता और उद्देश्य देखा। यद्यपि उनकी भाषा यूरोपीय दार्शनिक परंपरा से प्रभावित थी, फिर भी उनका मूल भाव यह था कि ब्रह्मांड अराजक नहीं, बल्कि अर्थपूर्ण और नियमबद्ध है। भारतीय सनातन खगोल दृष्टि में भी ग्रहों को केवल भौतिक पिंड नहीं माना गया, बल्कि उन्हें काल और कर्म से जुड़ी शक्तियों के प्रतीक के रूप में देखा गया है। इस प्रकार दोनों परंपराओं में ग्रहगति केवल गणना का विषय नहीं, बल्कि ब्रह्मांडीय व्यवस्था की अभिव्यक्ति है।

केप्लर के समय तक यूरोप में भारतीय पंचांग परंपरा का प्रत्यक्ष ज्ञान सीमित था, किंतु अरबी विद्वानों के माध्यम से भारतीय खगोल गणनाएँ पहले ही पश्चिम तक पहुँच चुकी थीं। संवत्सर, अयन और ग्रहों की दीर्घकालिक गति संबंधी अनेक अवधारणाएँ इसी माध्यम से यूरोप में प्रचलित हुईं। केप्लर ने जिन खगोलीय सारणियों और गणनात्मक पद्धतियों का उपयोग किया, उनमें अप्रत्यक्ष रूप से वही दीर्घकालिक दृष्टि निहित थी, जो भारतीय काल-गणना की विशेषता है। इस कारण यह कहा जा सकता है कि केप्लर भारतीय सनातन पंचांग परंपरा से प्रत्यक्ष नहीं, बल्कि परोक्ष रूप से प्रभावित थे। भारतीय काल-दृष्टि का एक मूल तत्व यह है कि समय स्थिर नहीं, प्रवाही है, और यह प्रवाह ग्रहों की गति से जुड़ा हुआ है। केप्लर ने भी ग्रहों की गति को समय की कुंजी माना। उन्होंने यह स्वीकार किया कि यदि ग्रहों की गति को ठीक से समझ लिया जाए, तो समय की संरचना अपने आप स्पष्ट हो जाती है। यह विचार भारतीय पंचांग की उस आधारभूत मान्यता से मेल खाता है, जिसमें ग्रहस्थिति के बिना तिथि, वार और मास का निर्धारण असंभव माना गया है। केप्लर का योगदान इस दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है कि उन्होंने खगोल विद्या को केवल तत्कालीन उपयोगिता से ऊपर उठाकर दीर्घकालिक मानव ज्ञान के संदर्भ में रखा। उन्होंने यह माना कि आकाश का अध्ययन केवल वर्तमान पीढ़ी के लिए नहीं, बल्कि भविष्य के लिए भी एक स्मृति का निर्माण करता है। भारतीय सनातन परंपरा में भी यही भाव दिखाई देता है, जहाँ खगोल ज्ञान को गुरु-शिष्य परंपरा के माध्यम से पीढ़ी दर पीढ़ी सुरक्षित रखा गया। केप्लर को केवल यूरोपीय वैज्ञानिक परंपरा का प्रतिनिधि मानना अधूरा होगा। वे उस वैश्विक खगोल चेतना के एक महत्वपूर्ण सूत्रधार थे, जिसमें भारतीय सनातन पंचांग और काल-गणना की दीर्घकालिक दृष्टि अप्रत्यक्ष रूप से प्रवाहित होती रही। उनके कार्य यह प्रमाणित करते हैं कि ग्रहों की गति और समय की संरचना को समझने का प्रयास किसी एक सभ्यता की सीमा में नहीं बँधा, बल्कि यह मानव चिंतन की साझा विरासत है। भारतीय और यूरोपीय खगोल दृष्टियों के इस मौन संवाद में केप्लर का स्थान विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि उन्होंने आकाश को देखने का ऐसा मार्ग प्रशस्त किया जिसमें गणना, काल और ब्रह्मांड एक अविभाज्य इकाई के रूप में सामने आते हैं।

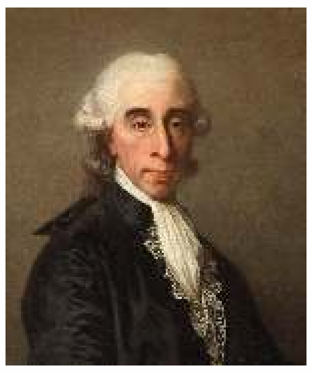

भारतीय सनातन कालबोध

ज्याँ-सिल्वैं बैयी, खगोलविद् (1736–1793 ईस्वी, फ्रांस)

अठारहवीं शताब्दी का यूरोप बौद्धिक संक्रमण के दौर से गुजर रहा था। एक ओर गणित और खगोल के क्षेत्र में नवीन दृष्टियाँ विकसित हो चुकी थीं, वहीं दूसरी ओर समय, इतिहास और सृष्टि की समझ अब भी सीमित, रेखीय और एकांगी ढाँचे में बंधी हुई थी। इसी पृष्ठभूमि में **ज्याँ-सिल्वैं बैयी** का उदय हुआ, जो केवल आकाशीय पिंडों के अध्येता नहीं थे, बल्कि समय, सभ्यता और ज्ञान की उत्पत्ति पर गहन चिंतन करने वाले विचारक भी थे। उनका महत्व इस कारण विशेष है कि उन्होंने भारतीय सनातन खगोल-परंपरा को मिथक या कल्पना कहकर अस्वीकार नहीं किया, बल्कि उसे एक सुसंगत, प्राचीन और वैज्ञानिक बौद्धिक परंपरा के रूप में समझने का प्रयास किया। बैयी का मूल कार्यक्षेत्र खगोल-प्रेक्षण था, किंतु उनकी स्थायी पहचान खगोल-इतिहास के गंभीर अध्येता के रूप में बनी। उनका यह स्पष्ट मत था कि खगोल विद्या केवल ग्रहों की गति ज्ञात करने का साधन नहीं है, बल्कि यह मानव सभ्यता की स्मृति को सुरक्षित रखने वाला माध्यम है। किसी भी संस्कृति में ग्रहों, नक्षत्रों और कालचक्र की गणना उस सभ्यता की बौद्धिक परिपक्वता का प्रमाण होती है। इसी दृष्टि से बैयी ने विभिन्न प्राचीन सभ्यताओं की खगोलीय परंपराओं का तुलनात्मक अध्ययन किया। इस अध्ययन में भारतीय सनातन परंपरा उनके सामने एक विशिष्ट और स्वतंत्र धारा के रूप में उभरकर आई।

भारतीय खगोल-ग्रंथों और ज्योतिषीय सिद्धांतों का अध्ययन करते समय बैयी पहली बार ऐसी काल-अवधारणा से परिचित हुए जो यूरोपीय ऐतिहासिक सोच से सर्वथा भिन्न थी। भारतीय परंपरा में समय को सीधी रेखा की भाँति नहीं, बल्कि चक्र के रूप में समझा गया है। युग, महायुग, कल्प और मन्वंतर जैसी संकल्पनाएँ इस बात का प्रमाण हैं कि भारतीय मनीषियों ने समय को अनादि और अनंत माना। यह दृष्टि केवल धार्मिक कल्पना नहीं थी, बल्कि आकाशीय प्रेक्षणों पर आधारित एक सुव्यवस्थित खगोलीय संरचना थी। बैयी ने अनुभव किया कि इतनी दीर्घकालिक और गणितीय रूप से संगठित काल-व्यवस्था बिना सहस्राब्दियों के निरंतर प्रेक्षण के संभव नहीं हो सकती। अपने प्रसिद्ध खगोल-इतिहास संबंधी ग्रंथ में बैयी ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया कि भारतीयों के पास अत्यंत प्राचीन और सटीक खगोलीय ज्ञान था। उन्होंने यह भी कहा कि भारतीय काल-गणना को यूनानी या मिस्री परंपरा की छाया मानना तर्कसंगत नहीं है। उनके अनुसार भारतीय खगोल विद्या किसी बाह्य प्रभाव की नकल नहीं, बल्कि एक स्वतंत्र और स्वायत्त बौद्धिक परंपरा का परिणाम है। यह स्वीकारोक्ति उस समय के यूरोप के लिए अत्यंत असाधारण थी, क्योंकि वहाँ यह धारणा प्रचलित थी कि समस्त प्राचीन विज्ञान का मूल स्रोत यूनान ही है।

बैयी विशेष रूप से भारतीय नक्षत्र-पद्धति और ग्रहों की आवर्ती गति की गणना से प्रभावित हुए। उन्होंने देखा कि भारतीय खगोल ग्रंथों में ग्रहों की चाल को केवल दैनिक या वार्षिक स्तर पर नहीं, बल्कि दीर्घकालिक चक्रों के संदर्भ में समझा गया है। यह दृष्टि तभी संभव है जब किसी सभ्यता ने पीढ़ी दर पीढ़ी आकाश का धैर्यपूर्वक और व्यवस्थित अध्ययन किया हो। भारतीय काल-गणना में निहित यह दीर्घकालिक चेतना बैयी को इस निष्कर्ष तक ले गई कि भारत की खगोलीय परंपरा अत्यंत प्राचीन रही होगी। भारतीय सनातन परंपरा में समय केवल मापन की इकाई नहीं, बल्कि ब्रह्मांडीय नियमों का प्रतिबिंब है। सृष्टि, स्थिति और प्रलय को एक निरंतर चक्र के रूप में देखा गया है। बैयी ने अनुभव किया कि यह चक्रीय दृष्टि आकाशीय पिंडों की निरंतर पुनरावृत्ति से उत्पन्न हुई है। ग्रहों और नक्षत्रों की गति ने भारतीय मनीषियों को यह बोध कराया कि ब्रह्मांड में कोई अंतिम बिंदु नहीं, केवल परिवर्तनशील प्रवाह है। इस प्रकार भारतीय काल-दृष्टि दार्शनिक होते हुए भी गहन खगोलीय अनुभव पर आधारित है। बैयी ने यह साहसिक संकेत भी दिया कि भारतीय काल-गणना संभवतः किसी अत्यंत प्राचीन सभ्यता की स्मृति को संजोए हुए है। उनके अनुसार युगों और कल्पों में प्रयुक्त विशाल संख्याएँ किसी आकस्मिक कल्पना का परिणाम नहीं हो सकतीं। यद्यपि इस मत पर बाद के विद्वानों ने मतभेद व्यक्त किए, फिर भी यह निर्विवाद रहा कि बैयी ने भारतीय खगोल-परंपरा को गंभीरता और सम्मान के साथ देखा। यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि बैयी भारतीय परंपरा के अंध-समर्थक नहीं थे। उन्होंने आलोचनात्मक और विवेकपूर्ण दृष्टि से भारतीय गणनाओं का परीक्षण किया। उनका मत था कि यदि ये गणनाएँ असत्य होतीं, तो उनमें आंतरिक विरोधाभास अवश्य मिलते। किंतु उन्होंने पाया कि ग्रहों की गति, अयन, संवत्सर और नक्षत्रों से संबंधित भारतीय गणनाएँ आश्चर्यजनक रूप से संगत हैं। यह संगति ही उनके लिए भारतीय खगोल-ज्ञान की प्रामाणिकता का सबसे बड़ा प्रमाण बनी। बैयी की दृष्टि उस समय के यूरोप में एक वैचारिक चुनौती बनकर उभरी। जहाँ अधिकांश विद्वान भारतीय ज्ञान को पौराणिक मानकर उपेक्षित कर देते थे, वहीं बैयी ने यह स्पष्ट किया कि भारतीय सनातन खगोल-परंपरा को उसकी अपनी सांस्कृतिक और खगोलीय पृष्ठभूमि में समझना आवश्यक है। उन्होंने यूरोपीय दृष्टि को विस्तृत करने का आग्रह किया और यह दिखाया कि समय की समझ किसी एक सभ्यता की बपौती नहीं है। समग्र रूप से कहा जा सकता है कि ज्याँ-सिल्वैं बैयी उन प्रारंभिक यूरोपीय विद्वानों में हैं जिन्होंने भारतीय सनातन खगोल-परंपरा को वैज्ञानिक गरिमा के साथ स्वीकार किया। उन्होंने यह स्थापित किया कि भारत की काल-दृष्टि केवल प्राचीन ही नहीं, बल्कि सुसंगत और गहन खगोलीय चिंतन पर आधारित है। उनका कार्य पूर्व और पश्चिम के बीच एक सेतु के रूप में कार्य करता है और यह स्मरण कराता है कि भारतीय मनीषा ने समय और ब्रह्मांड को समझने में मानव चिंतन को अत्यंत ऊँचाई तक पहुँचाया है।

ज्याँ-सिल्वैं बैयी की विद्वत्ता का वास्तविक स्वरूप उनकी लिखित कृतियों में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। वे केवल सिद्धांत प्रस्तुत करने वाले विचारक नहीं थे, बल्कि प्राचीन खगोलीय परंपराओं के क्रमबद्ध इतिहासकार भी थे। उनकी प्रमुख रचना "प्राचीन खगोल विद्या का इतिहास" मानी जाती है, जिसमें उन्होंने मानव सभ्यता के आरंभिक काल से लेकर ज्ञात ऐतिहासिक युगों तक खगोल-ज्ञान के विकास का अनुशीलन किया। इस ग्रंथ में उन्होंने यह दर्शाने का प्रयास किया कि खगोल विद्या किसी एक क्षेत्र या जाति की देन नहीं, बल्कि दीर्घकालिक वैश्विक अनुभव का परिणाम है। एक अन्य महत्त्वपूर्ण कृति "भारत और प्राचीन एशिया की खगोल परंपराएँ" के माध्यम से बैयी ने यह प्रतिपादित किया कि भारतीय खगोल-ज्ञान केवल धार्मिक या ज्योतिषीय आस्था तक सीमित नहीं था, बल्कि उसमें गणना, प्रेक्षण और दीर्घकालिक कालबोध की स्पष्ट परंपरा विद्यमान थी। इस ग्रंथ में उन्होंने भारतीय युग-प्रणाली, नक्षत्र-विभाजन और ग्रहों की आवर्ती गति पर विशेष ध्यान दिया और यह दिखाया कि इन अवधारणाओं में आंतरिक तार्किक संगति है। बैयी की एक अन्य उल्लेखनीय रचना "खगोल विद्या और मानव इतिहास" है, जिसमें उन्होंने यह विचार प्रस्तुत किया कि खगोलीय ज्ञान सभ्यताओं के उत्थान और पतन का मौन साक्षी होता है। उनके अनुसार जब कोई संस्कृति आकाशीय नियमों को समझने में सक्षम होती है, तभी वह समय की दीर्घ धारा को पहचान पाती है। इसी संदर्भ में उन्होंने भारतीय सनातन परंपरा को विशेष स्थान दिया, क्योंकि वहाँ समय को केवल ऐतिहासिक घटनाओं से नहीं, बल्कि ब्रह्मांडीय गति से जोड़ा गया था। इन कृतियों के माध्यम से बैयी ने यूरोप में प्रचलित उस धारणा को चुनौती दी, जिसके अनुसार प्राचीन ज्ञान का एकमात्र स्रोत यूनान था। उनके कार्यों का सबसे बड़ा महत्व यह है कि उन्होंने भारतीय खगोल-परंपरा को विचारणीय और अध्ययनयोग्य विषय के रूप में स्थापित किया। इस प्रकार बैयी की पुस्तकों ने न केवल खगोल-इतिहास को समृद्ध किया, बल्कि भारतीय सनातन खगोल-दृष्टि को वैश्विक विमर्श में प्रतिष्ठा भी प्रदान की।

[kkfyn bCu cjed

[kkfyn bCu cjed vCcklh [kyhQk d nkj ¼8oh 'krkCnh½ e ,d çe[k Qkjlh e=h vkj ç'kkld FkA og cjedh ifjokj l Fk] tk ck) /ke l bLyke viuku oky ,d 'kfDr'kkyh ifjokj d :i e tkuk tkrk gA dgk tkrk g fd mUgku cxnkn 'kgj d fodkl e vge ;kxnku fn;k Fkk] ftl vy&elju viuh jkt/kkuh cuk;k FkkA

[kkfyn bCu cjed ने अब्बासी साम्राज्य के प्रशासन में एक सुव्यवस्थित प्रणाली स्थापित की और उनके योगदान को इस्लामी इतिहास में महत्वपूर्ण माना जाता है। इस्लाम में धर्मांतरण और नई इस्लामी दुनिया के केंद्र में अपनी जगह के बावजूद, खालिद इब्न बरमक अपनी बौद्ध जड़ों को कभी नहीं भूले। वह और उनके बच्चे बौद्ध धर्म में विशेष रुचि दिखाते रहे। कृषि और कीमिया से लेकर खगोल विज्ञान और ज्योतिष तक, औषधि विज्ञान और गणित से लेकर चिकित्सा और वास्तुकला तक के विषयों पर संस्कृत पांडुलिपियों को इकट्ठा करने का जुनून। उन्होंने इस काम में वे सभी संसाधन झोंक दिए जो शक्तिशाली अब्बासिद साम्राज्य ने उनके लिए रखे थे। इस तरह खालिद ने अनुवाद का काम जारी रखा जो उनके नौ पूर्वजों की पहचान थी, लेकिन बहुत बड़े पैमाने पर। बगदाद में बरमाकिद शासन का युग उस समय से मेल खाता था जिसे कुछ विद्वानों ने 'शुरुआती इस्लाम का भारतीय चरण' कहा है। समय के साथ, बगदाद के विद्वान सितारों के रहस्य को जानने के लिए यूनानियों की ओर रुख करेंगे, लेकिन शुरुआत में, बरमाकिद के तहत, अरब खगोलशास्त्री ज्ञान के लिए भारत के खगोलविदों और उनके संस्कृत ग्रंथों की ओर देखते थे। विद्वान अल–बिरूनी के अनुसार, 'उन्होंने टॉलेमी से पहले ब्रह्मगुप्त से सीखा था।' इस मामले में, अब्बासिड्स संभवतः चीनी तांग दरबार के मॉडल से प्रभावित थे, जो उस समय खलीफाओं की पूर्वी सीमा पर प्रमुख शक्ति थी। महारानी वू ज़ेटियन के समय से ही चीनी सरकार ने भारतीय विद्वत्ता, विशेष रूप से खगोल विज्ञान को विशेष रूप से उच्च दर्जा दिया था। यह संभवतः वही था जिसका अनुकरण अल–मंसूर कर रहा था जब उसने और बरमाकिड्स ने दक्षिण एशिया के आसपास से अपने दरबार के भारतीय बुद्धिजीवियों को आमंत्रित करना शुरू किया। ग्यारहवीं शताब्दी के स्पेन में लिखे गए एक बहुत बाद के विवरण के अनुसार, यह एक यहूदी दूत था जिसे खालिद ने पहली बार भारत के पवित्र शहर उज्जैन भेजा था। वह जानता था कि उज्जैन हिंदू खगोल विज्ञान का केंद्र है, और इसे खगोलीय माप के लिए संदर्भ बिंदु के रूप में इस्तेमाल किया जाता था, ठीक उसी तरह जैसे आज ग्रीनविच मेरिडियन का उपयोग किया जाता है।

विक्रमादित्य वैदिक घड़ी

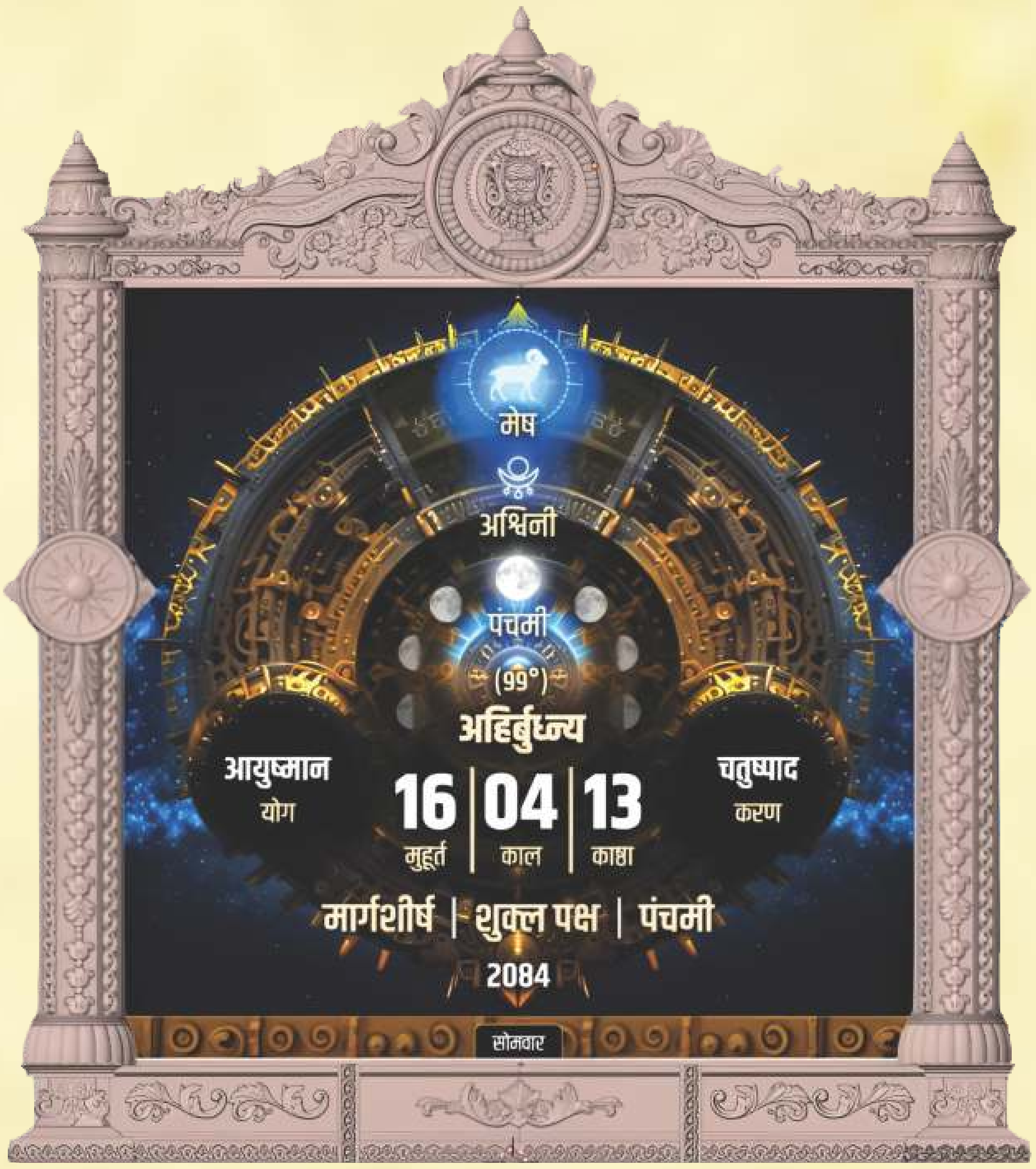

30 Vikramaditya Vedic Clock

विक्रमादित्य वैदिक घड़ी एप

उज्जैन, जो प्राचीन काल से कालगणना का प्रमुख केंद्र रहा है, विगत वर्ष यहाँ विश्व की पहली वैदिक घड़ी स्थापित की गई। यह वैदिक घड़ी भारतीय कालगणना की समृद्ध परंपरा को पुनर्जीवित करने का एक महत्वपूर्ण प्रयास है। विक्रमोत्सव 2025 में विक्रमादित्य वैदिक घड़ी एप का लोकार्पण किया जा रहा है। विक्रमादित्य वैदिक घड़ी भारतीय कालगणना पर आधारित विश्व की पहली घड़ी है। भारतीय कालगणना सर्वाधिक विश्वसनीय पद्धति का पुनरस्थापन विक्रमादित्य वैदिक घड़ी के रूप में उज्जैन में किया गया है। विक्रमादित्य वैदिक घड़ी का लोकार्पण माननीय प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी द्वारा 29 फरवरी 2024 को किया गया। भारतीय कालगणना की इस परंपरा को व्यावहारिक बनाने विक्रमादित्य वैदिक घड़ी का एप भी तैयार किया जा चुका है। यह एप जीपीएस द्वारा संचालित है। जिससे यह किसी भी स्थान पर सूर्योदय के समय को सटीकता से जान पाता है और उसके अनुसार वैदिक समय की गणना करता है। यह एप 180 से अधिक भारतीय एवं वैश्विक भाषाओं में देखा जा सकता है। यह घड़ी सूर्योदय से परिचालित है। अतः जिस स्थान पर जो सूर्योदय का समय होगा उस स्थान की कालगणना तदनुसार होगी। स्टेंडर्ड टाइम भी उसी से जुड़ा रहेगा। इस एप के माध्यम से वैदिक समय, लोकेशन, भारतीय स्टेंडर्ड टाइम, ग्रीन विच मीन टाइम, तापमान, वायु गति, आर्द्रता, भारतीय पंचांग, विक्रम सम्वत, मास, ग्रह स्थिति, योग, भद्रा स्थिति, चंद्र स्थिति, पर्व, शुभाशुभ मुहूर्त, घटी, नक्षत्र, जयंती, व्रत, त्यौहार, चौघडिया, सूर्य ग्रहण, चन्द्रस ग्रहण, आकाशस्था, ग्रह, नक्षत्र, ग्रहों का परिभ्रमण आदि की जानकारी समाहित है।

महाराजा विक्रमादित्य शोधपीठ

BHARAT VIKRAM यूट्यूब चैनल

विक्रमादित्य, उनके युग, भारत उत्कर्ष,
नवजागरण और भारत विद्या पर एकाग्र

सम्राट विक्रमादित्य और तीन दुराचारी भाग - 2
लोक कथाओं एवं जन श्रुतियों पर आधारित

एपिसोड - 107
कहां नष्ट हो रही हैं प्राचीन सभ्यता की निशानियां ?
देखिये भारत विक्रम पर

मालवा के मार्तंड मंजरी
राजा भोज
एपिसोड - 25

भारत विक्रम
Podcast
With
श्रीराम तिवारी
निदेशक
महाराजा विक्रमादित्य शोधपीठ

वीर भारत न्यास

VEER BHARAT यूट्यूब चैनल

युगयुगीन भारत के कालजयी महानायकों
की गौरवगाथा पर केन्द्रित

भाग-47
EPISODE-47
महादेव

भाग - 4
महाराज दशरथ

वीर भारत
PODCAST
श्रीराम तिवारी जी से
EPISODE-1

दिन का चौघड़िया

समय	रविवार	सोमवार	मंगलवार	बुधवार	गुरुवार	शुक्रवार	शनिवार
6 से 7:30 तक	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चर	काल
7:30 से 9 तक	चर	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ
9 से 10:30 तक	लाभ	शुभ	चर	काल	उद्वेग	अमृत	रोग
10:30 से 12 तक	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चर	काल	उद्वेग
12 से 1:30 तक	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चर
1:30 से 3 तक	शुभ	चर	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ
3 से 4:30 तक	रोग	लाभ	शुभ	चर	काल	उद्वेग	अमृत
4:30 से 6 तक	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चर	काल

रात का चौघड़िया

समय	रविवार	सोमवार	मंगलवार	बुधवार	गुरुवार	शुक्रवार	शनिवार
6 से 7:30 तक	शुभ	चर	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ
7:30 से 9 तक	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चर	काल	उद्वेग
9 से 10:30 तक	चर	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ
10:30 से 12 तक	रोग	लाभ	शुभ	चर	काल	उद्वेग	अमृत
12 से 1:30 तक	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चर
1:30 से 3 तक	लाभ	शुभ	चर	काल	उद्वेग	अमृत	रोग
3 से 4:30 तक	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चर	काल
4:30 से 6 तक	शुभ	चर	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ

चौघड़िया - चौघड़िया वैदिक ज्योतिषीय समय गाइड है जो 24 घंटे के शुभ मुहूर्त के बारे में जानकारी देता है। यह प्रत्येक दिन और रात को 8 बराबर अवधि में विभाजित करता है। सूर्योदय से सूर्यास्त तक के समय को दिन का समय चौघड़िया कहा जाता है और सूर्यास्त से लेकर अगले दिन के सूर्योदय तक के समय को रात का चौघड़िया कहा जाता है।

चौघड़िया का अर्थ

चौघड़िया का अर्थ चार घड़ी से है जिसमें कुल 96 मिनट होते हैं। हिंदी शब्दों से व्युत्पन्न, चौघड़िया में 'चै', का अर्थ चार है और 'घड़ी' का अर्थ है समय अवधि। इसे 'चतुर्षिका मुहूर्त' के रूप में भी जाना जाता है। ज्योतिषीय दृष्टि से अच्छे और बुरे सात चौघड़िया हैं। वो हैंः

उदवेग - चौघड़िया में, उदवेग पहला मुहूर्त है जो कि सूर्य ग्रह द्वारा शासित है। इस घड़ी को अशुभ माना जाता है। हालांकि, उदवेग में सरकार से संबंधित कार्य करने से फलदायक परिणाम मिलते हैं।

लाभ - लाभ दूसरा चौघड़िया है जो बुध ग्रह द्वारा शासित है। यह समय शुभ माना जाता है और किसी भी व्यावसायिक या शैक्षिक संबंधित कार्य को शुरू करने के लिए बहुत उपयुक्त है।

चर - शुक्र द्वारा शासित, चर तीसरा चौघड़िया है जिसे यात्रा के प्रयोजनों के लिए शुभ मुहूर्त माना जाता है।

रोग- चौघड़िया का चैथा मुहूर्त रोग, मंगल ग्रह द्वारा शासित है। इस अशुभ मुहूर्त में व्यक्ति को कोई भी शुभ काम शुरू नहीं करना चाहिए और न ही चिकित्सकीय परामर्श लेना चाहिए। इस अवधि में युद्ध और शत्रु से संघर्ष होता है।

शुभ- शुभ चौघड़िया बृहस्पति ग्रह द्वारा शासित है और किसी भी कार्य को करने के लिए बहुत ही शुभ माना जाता है। इस दौरान विवाह, पूजा, यज्ञ और अन्य धार्मिक गतिविधियां की जानी चाहिए।

काल - काल एक अशुभ चौघड़िया है जो कि शनि ग्रह द्वारा शासित है। धन संचय के लिए, इस अवधि को शुभ मुहूर्त या फलदायी समय माना जाता है।

अमृत - चौघड़िया के इस अंतिम मुहूर्त पर चंद्रमा ग्रह का शासन होता है। यह दिन का सबसे शुभ समय है। इस अवधि में किया गया कोई भी काम सकारात्मक परिणाम देता है।

महाराजा विक्रमादित्य शोधपीठ

बहुविध पुस्तकमाला

विक्रमादित्य, उनके युग, भारत उत्कर्ष,
नवजागरण और भारत विद्या पर एकाग्र

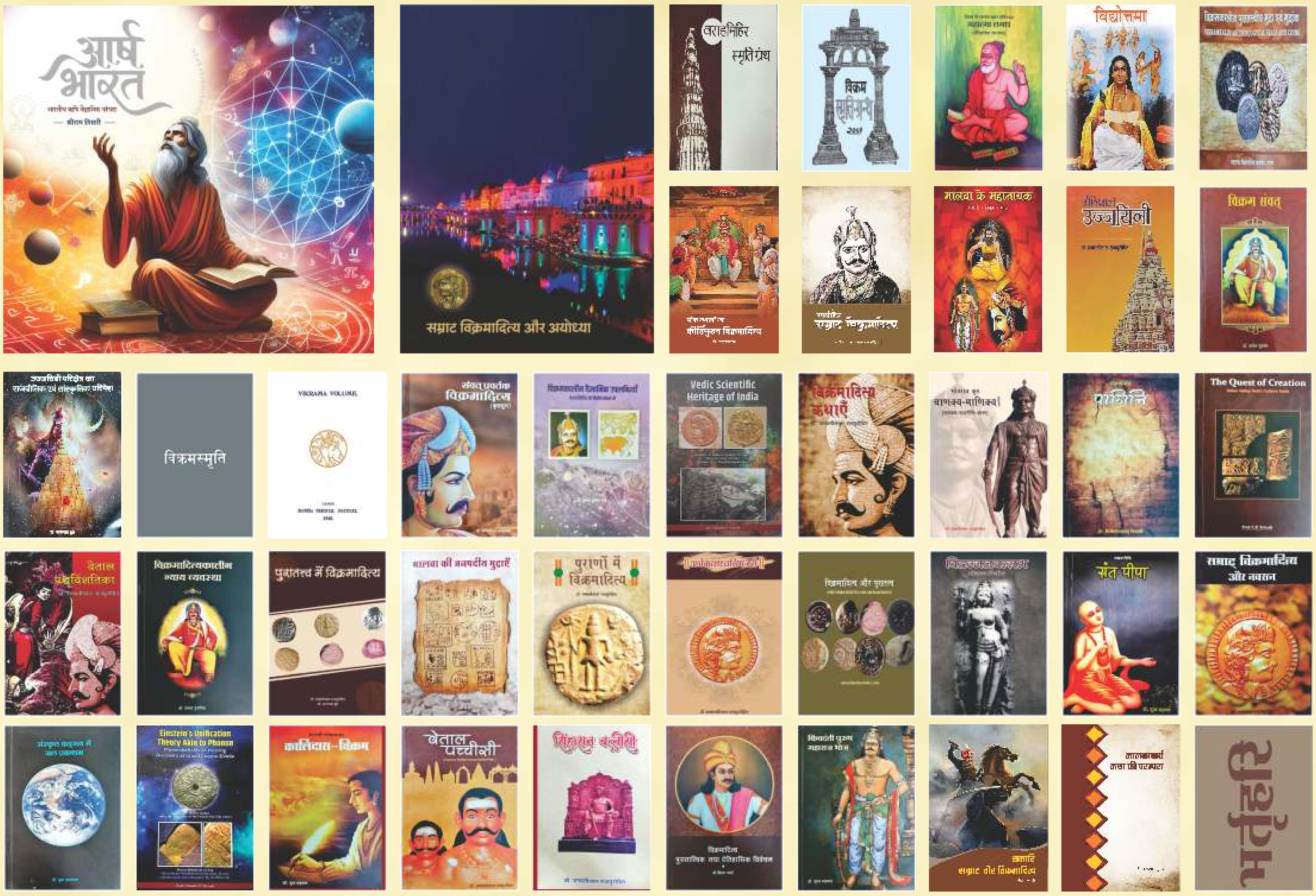
आर्ष भारत
सम्राट विक्रमादित्य और अयोध्या
वराहमिहिर स्मृति ग्रंथ
विक्रम स्मृतिग्रंथ
विद्योत्तमा
मालवा के महानायक
उज्जयिनी
विक्रम संवत्
विक्रमस्मृति
VIKRAMA VOLUME
Vedic Scientific Heritage of India
विक्रमादित्य कथाएँ
The Quest of Creation
बेताल पंचविंशतिका
विक्रमादित्यकालीन न्याय व्यवस्था
पुरातत्त्व में विक्रमादित्य
मालवा की जनपदीय मुद्राएँ
पुराणों में विक्रमादित्य
संत पीपा
सम्राट विक्रमादित्य और नवरत्न
Einstein's Unification Theory Akin to Phonon
कालिदास-विक्रम
बेताल पच्चीसी
सिंहासन बत्तीसी

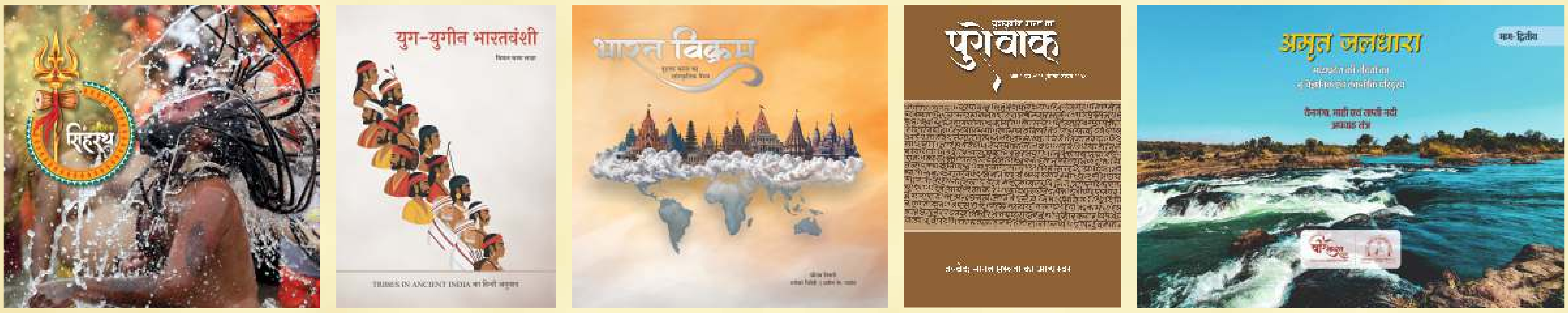
सिंहस्थ
युग-युगीन भारतवंशी
भारत विक्रम
पुरोवाक
अमृत जलधारा

शिप्रा अमरता का आह्वान
अमृत जलधारा
अमृत जलधारा
अमृत जलधारा

अवंतिका
भारत में भाषा आलोक
सभ्यता की साँस
सदानीरा
जल धरा

लोक में वेदान्त
पुरोवाक
जल स्रोत एवं जल संवर्धन
श्रीकृष्णचरितमानस
पृथ्वी पानी का देश है

युगयुगीन भारत के
कालजयी महानायकों की
गौरवगाथा पर केन्द्रित

वीर भारत न्यास

सम्राट विक्रमादित्य सम्मान

अंतरराष्ट्रीय सम्मान | राष्ट्रीय सम्मान | शिखर सम्मान

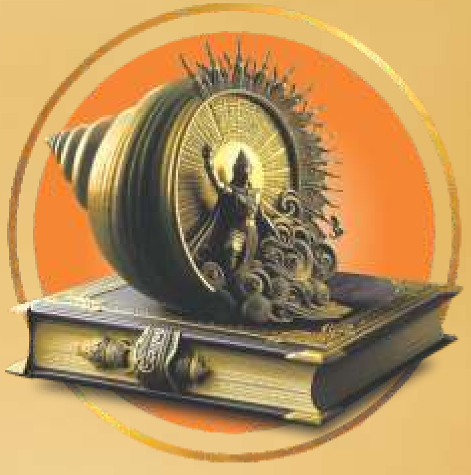

अंतरराष्ट्रीय सम्मान

सम्मान निधि- **एक करोड़ एक लाख**

सम्राट विक्रमादित्य के बहुविध गुणों न्याय, दानशीलता, सुशासन, खगोल एवं ज्योतिष विज्ञान, कला, शौर्य, राजनय, आध्यात्म, युग निर्माण, विश्व मानव कल्याण, समाज अभ्युदय, अंतर्राष्ट्रीय भाई-चारा, सर्वधर्म समन्वय, भारतीय संस्कृति के उत्थान, सामाजिक नवोन्मेष, भारतीय दर्शन, धर्म, परम्परा, वेदांत के व्यापक प्रचार-प्रसार, रचनात्मक एवं जनकल्याणकारी कार्य के क्षेत्र में श्रेष्ठतम उपलब्धियों एवं उल्लेखनीय योगदान करने वाले भारत सहित दुनियाभर में सक्रिय साधनारत कोई भी व्यक्ति / संस्थाओं के लिए।

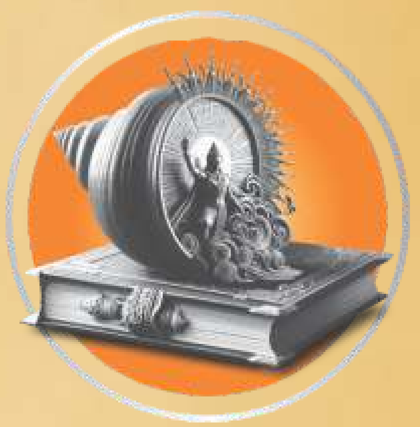

राष्ट्रीय सम्मान

सम्मान निधि - **इक्कीस लाख**

सम्राट विक्रमादित्य के बहुविध गुणों न्याय, दानशीलता, वीरता, सुशासन, खगोल एवं ज्योतिष विज्ञान, कला, शौर्य, प्राच्य वांग्मय, राजनय, आध्यात्मिक क्षेत्र, रचनात्मक एवं जनकल्याणकारी कार्य के क्षेत्र में श्रेष्ठतम उपलब्धियों एवं उल्लेखनीय योगदान करने वाले राष्ट्रीय स्तर पर सक्रिय साधनारत व्यक्ति / संस्थाओं के लिए।

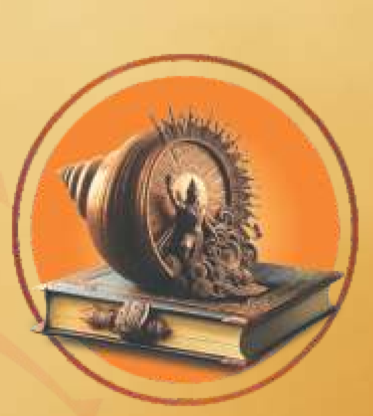

शिखर सम्मान (तीन)

सम्मान निधि - **पाँच लाख**

सम्राट विक्रमादित्य के बहुविध गुणों- न्याय- विधि, खगोल एवं ज्योतिष विज्ञान, कला, शौर्य, प्राच्य वांग्मय, राजनय, आध्यात्मिक क्षेत्र, रचनात्मक एवं जनकल्याणकारी कार्य के क्षेत्र में श्रेष्ठतम उपलब्धियों एवं उल्लेखनीय योगदान करने वाले मध्यप्रदेश में सक्रिय साधनारत व्यक्ति / संस्थाओं के लिए।

महाराजा विक्रमादित्य शोधपीठ
संस्कृति विभाग, मध्यप्रदेश शासन

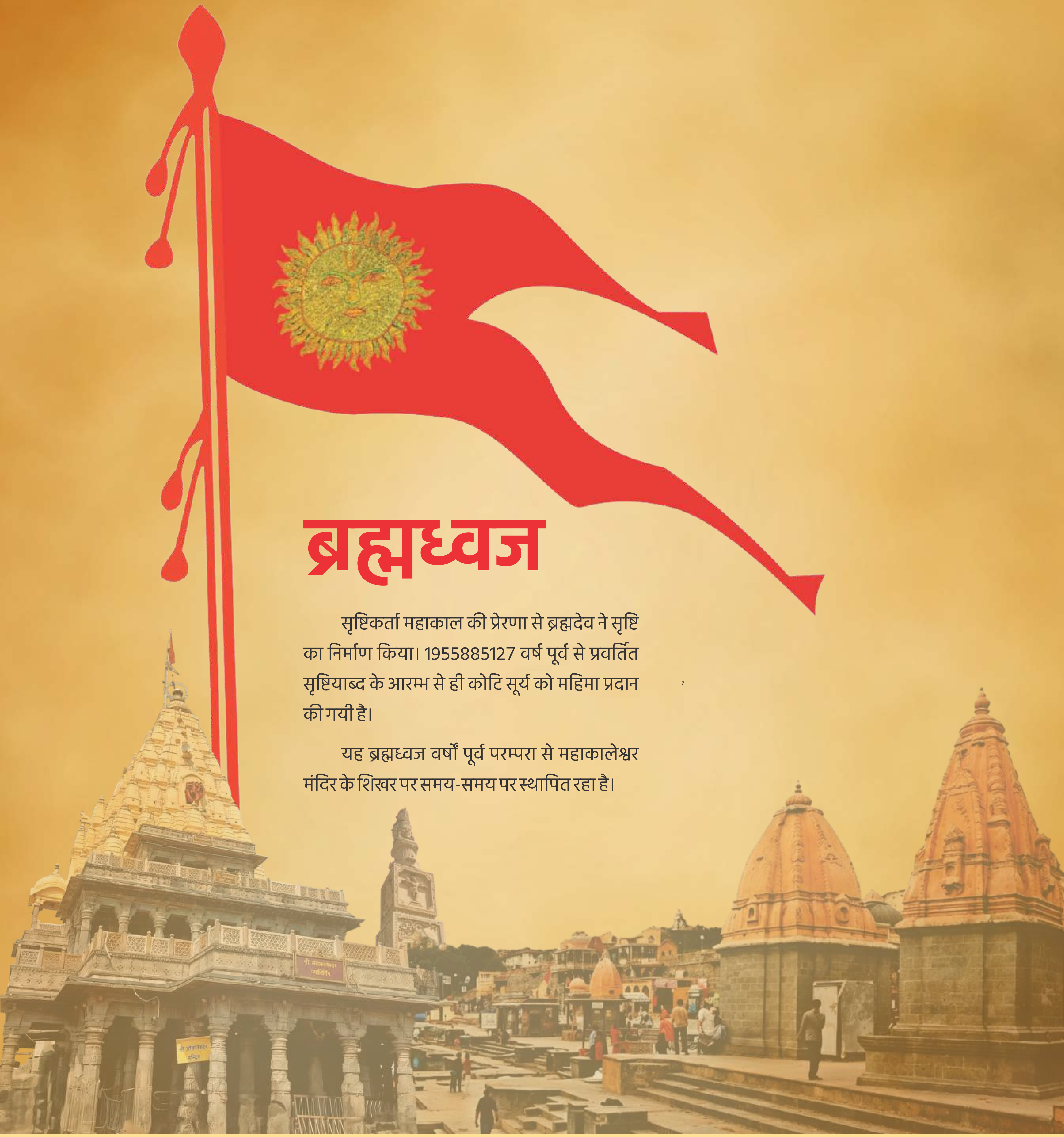

ब्रह्मध्वज

सृष्टिकर्ता महाकाल की प्रेरणा से ब्रह्मदेव ने सृष्टि का निर्माण किया। 1955885127 वर्ष पूर्व से प्रवर्तित सृष्टियाब्द के आरम्भ से ही कोटि सूर्य को महिमा प्रदान की गयी है।

यह ब्रह्मध्वज वर्षों पूर्व परम्परा से महाकालेश्वर मंदिर के शिखर पर समय-समय पर स्थापित रहा है।

महाराजा विक्रमादित्य शोधपीठ
स्वराज संस्थान संचालनालय, संस्कृति विभाग
मध्यप्रदेश शासन का प्रकाशन
बिड़ला भवन, देवास रोड, उज्जैन-456010 दूरभाषः 0734-2521499